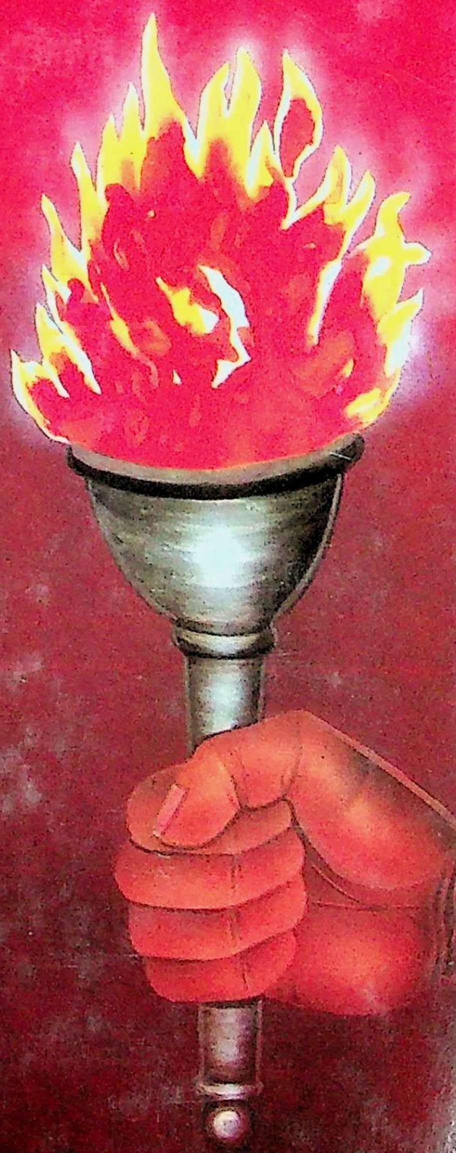
क्रांतिकारी कोश



इस श्रमसिद्ध व प्रज्ञापुष्ट ग्रंथ **क्रांतिकारी कोश** में भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के इतिहास को पूरी प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। सामान्यतया भारतीय स्वातंत्र्य आंदोलन का काल १८५७ से १९४२ ई. तक माना जाता है; किंतु प्रस्तुत ग्रंथ में इसकी काल-सीमा १७५७ ई. (प्लासी युद्ध) से लेकर १९६१ ई. (गोवा मुक्ति) तक निर्धारित की गई है। लगभग दो सौ वर्ष की इस क्रांति-यात्रा में उद्‌भट प्रतिभा, अदम्य साहस और त्याग-तपस्या की हजारों प्रतिमाएँ साकार हुईं। इनके अलावा राष्ट्रभक्त कवि, लेखक, कलाकार, विद्वान् और साधक भी इसी के परिणाम-पुष्प हैं।

पाँच खंडों में विभक्त पंद्रह सौ से अधिक पृष्ठों का यह ग्रंथ क्रांतिकारियों का प्रामाणिक इतिवृत्त प्रस्तुत करता है। क्रांतिकारियों का परिचय अकारादि क्रम से रखा गया है। लेखक को जिन लगभग साढ़े चार सौ क्रांतिकारियों के फोटो मिल सके, उनके रेखाचित्र दिए गए हैं। किसी भी क्रांतिकारी का परिचय ढूँढ़ने की सुविधा हेतु पाँचवें खंड के अंत में विस्तृत एवं संयुक्त सूची (सभी खंडों की) भी दी गई है।

भविष्य में इस विषय पर कोई भी लेखन इस प्रामाणिक संदर्भ ग्रंथ की सहायता के बिना अधूरा ही रहेगा।

A3 → R3

(3)





क्रांतिकारी कोश

तृतीय खंड



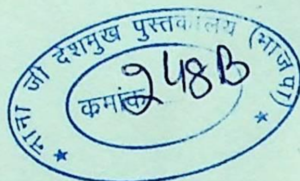
क्रांतिकारी कोश

तृतीय खंड

श्रीकृष्ण 'सरल'



प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
ISO 9001 : 2000 प्रकाशक



प्रकाशक • **प्रभात प्रकाशन**
४/१९ आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-११०००२
संस्करण • २०१२

मुद्रक • भानु प्रिंटर्स, दिल्ली
मूल्य • चार सौ रुपए (तृतीय खंड)
दो हजार रुपए
(पाँच खंडों का सेट)

KRANTIKARI KOSH (Encyclopaedia of Indian Freedom Fighters)
by Shrikrishna 'Saral'
Published by Prabhat Prakashan, 4/19 Asaf Ali Road, New Delhi-2
Vol III Rs. 400.00 ISBN 81-7315-234-9
Set of five Vols. Rs. 2000.00 ISBN 81-7315-237-3
e-mail: prabhatbooks@gmail.com

अनुक्रम

(भगतसिंह तथा चंद्रशेखर आजाद युग के क्रांतिकारी)

क्रांतिकारी कोश के पाँचों खंडों की संयुक्त सूची
(प्रत्येक क्रांतिकारी अकारादि क्रम से)
के लिए देखें—
'क्रांतिकारी कोश : पंचम खंड' के अंत में।

★ अजयकुमार घोष

उसकी उम्र उस समय लगभग सोलह-सत्रह वर्ष की रही होगी; पर अपने सुडौल शरीर के कारण वह अधिक उम्र का लगता था। उस तेजवंत युवक का नाम अजयकुमार घोष था। वह कानपुर में एक व्यायामशाला चला रहा था।


अजयकुमार घोष

कानपुर उन दिनों क्रांतिकारियों का गढ़ बना हुआ था। कुछ क्रांतिकारी ऐसे थे, जो किसी विशेष दल के रूप में संगठित हो चुके थे और कुछ व्यक्तिगत रूप से क्रांति कार्य करते रहते थे। अजयकुमार घोष को किसी दल की तलाश थी। शीघ्र ही उसका संबंध पंजाब से आए हुए एक क्रांतिकारी युवक भगतसिंह से हो गया। भगतसिंह ने अजयकुमार को परामर्श दिया कि जब तक योजनाबद्ध तरीके से पार्टी का निर्माण न हो, तब तक उसे अध्ययन में रत रहना चाहिए। अजयकुमार घोष इलाहाबाद चला गया और उसने वहाँ के विश्वविद्यालय से बी.एस-सी. की परीक्षा पास कर ली।

जब क्रांतिकारियों का दल 'हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र संघ' नाम से गठित हो गया तो भगतसिंह ने इलाहाबाद पहुँचकर अजयकुमार घोष के साथ संपर्क स्थापित किया और उसे अपने साथ ले आया। सक्रिय क्रांतिकारी होने के नाते अजयकुमार घोष ने उन सभी कार्यों में भाग लिया, जो उसकी पार्टी ने निश्चित किए थे।

भगतसिंह ने जब दिल्ली की असेंबली में बम विस्फोट कर अपनी गिरफ्तारी दी, तब उसे दिल्ली से लाहौर ले जाते समय मार्ग में छुड़ाने की योजना बनी तो

उसमें अजयकुमार घोष भी सम्मिलित किया गया। दुर्भाग्य से वह योजना क्रियान्वित नहीं हो सकी। बाद में अजयकुमार गिरफ्तार कर लिया गया। लाहौर जेल में अधिकारियों के दुर्व्यवहार के विरोध में सभी क्रांतिकारियों ने लंबी भूख हड़ताल की और अजयकुमार घोष ने उसमें बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया।

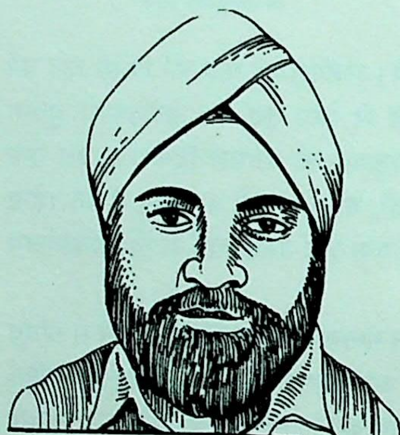
लाहौर षड्यंत्र केस के अंतर्गत अजयकुमार घोष के विरुद्ध कोई आरोप सिद्ध नहीं हो सका और उसे मुक्त कर दिया गया। बाद में एक अन्य मामले में फाँसकर उसे जेल की सजा दी गई।

सन् १९३३ में जेल से मुक्त होने के बाद अजयकुमार घोष ने समाजवादी साहित्य का गहन अध्ययन किया और वह पक्का मार्क्सवादी क्रांतिकारी बन गया।

अजयकुमार घोष का जन्म २० फरवरी, १९०९ को बंगाल के मिहिजाम नामक एक गाँव में हुआ था। उसके पिता डॉ. शचींद्रनाथ घोष भी प्रगतिशील विचारों के व्यक्ति थे।

□

★ अमरीकसिंह ★ गुलाबसिंह ★ जहाँगीरीलाल ★ मलिक कुंदनलाल ★ मलिक नाथूराम ★ रूपचंद


गुलाबसिंह


जहाँगीरीलाल

वह एक तरुण क्रांतिकारी था। हाई स्कूल में पढ़नेवाला एक विद्यार्थी ही तो था। उसके चेहरे पर कमनीयता और कोमलता थी; लेकिन उसके हृदय में उन



मलिक कुंदनलाल



रूपचंद

अरमानों ने जन्म ले लिया था, जो देश के ऊपर अपना सर्वस्व न्योछावर कर देने के लिए तैयार रहते हैं। करतारसिंह सराबा को फाँसी हो चुकी थी और सरदार भगतसिंह फाँसी की प्रतीक्षा कर रहा था।

उस तरुण क्रांतिकारी का नाम गुलाबसिंह था। वह अपने पैतृक गाँव से अभी-अभी ही लाहौर आया था। लाहौर में पहुँचकर उसका यही प्रयत्न रहा कि कुछ स्थापित क्रांतिकारियों के साथ उसका संपर्क हो जाए और वह देश के लिए कुछ कर गुजरे। आखिर उसका संपर्क लाहौर के एक क्रांतिकारी इंद्रपाल के साथ हो गया। इंद्रपाल ने पहले यशपाल के साथ मिलकर वाइसराय लॉर्ड इरविन की ट्रेन को बम से उड़ाने के प्रयत्नों में अच्छी भूमिका का निर्वाह किया था। बाद में उसने लाहौर में अपना स्वयं का संगठन खड़ा कर लिया था। इंद्रपाल ने अपने क्रांतिकारी संगठन को 'आतिशी चक्कर' नाम दिया था। गुलाबसिंह और उसका सगा भाई अमरीकसिंह—दोनों ही 'आतिशी चक्कर' के सदस्य बन गए।

इंद्रपाल और उसके साथियों ने मिलकर बम निर्माण का प्रयत्न किया। गुलाबसिंह ने स्वतंत्र रूप से बम बनाने के प्रयोग किए और उसे देशी बम बनाने में सफलता भी मिली। ये बम टीन के डिब्बे में आतिशबाजी का मसाला भरकर तैयार कर लिये जाते थे और डायनामाइट की तरह उनका उपयोग किया जाता था। अपने आपको 'वैज्ञानिक' कहनेवाला व्यक्ति हंसराज वायरलैस भी इनके दल में सम्मिलित हो गया। वह उन्नत किस्म के बम तो नहीं बना सकता था, पर आतिशबाजी के नमूने के बम के प्रयोगों का उसे अच्छा अभ्यास था।

उन दिनों पंजाब में क्रांतिकारियों की धर-पकड़ चल रही थी। क्रांतिकारी भी यथासंभव पुलिस को दंड देने से चूकते नहीं थे। पुलिस को दंडित करने का

'आतिशी चक्कर' के क्रांतिकारियों ने एक अच्छा तरीका निकाला।

पंजाब के छह नगरों में एक साथ बम विस्फोट की योजना तैयार कर ली गई। ये छह नगर थे—लाहौर, अमृतसर, लायलपुर, गुजराँवाला, शेखूपुरा और रावलपिंडी। प्रत्येक नगर में क्रांतिकारियों ने एक-एक मकान किराए पर लिया। योजना यह थी कि प्रत्येक मकान में एक-एक बम रख दिया जाएगा। पिन के स्थान पर बम में एक पलीता लगाया गया था। इस पलीते को मोमबत्ती के नीचे के सिरे से जोड़ दिया गया था। योजना थी कि मोमबत्ती जला दी जाएगी और जलते-जलते जब बम के पलीते से उसकी लौ का स्पर्श होगा तो पलीता आग पकड़ लेगा तथा बम का विस्फोट हो जाएगा। प्रत्येक मकान के अंदर टूटे-फूटे संदूकों में कुछ पटाखे टाइप के अन्य बम भी रख दिए गए थे, जो पुलिस द्वारा तलाशी लेने की प्रक्रिया में हिलने-डुलने से फट सकते थे।

१९ जून, १९३० को पंजाब के नियत सभी छह नगरों में बम रखकर मोमबत्तियाँ जला दी गईं और क्रांतिकारी लोग वहाँ से भाग निकले। भीषण धमाकों के साथ बमों का विस्फोट हुआ और पुलिस उन मकानों पर पहुँच गई। पुलिस ने उन मकानों की तलाशी ली। क्रांतिकारियों की योजना के अनुसार उन मकानों में रखे अन्य बम भी फटे और पुलिस के दो आदमी मारे गए तथा कुछ घायल हुए। बहुत दौड़-धूप करने पर भी उस समय कोई क्रांतिकारी गिरफ्तार नहीं हो सका। पुलिस को अंततोगत्वा इन क्रांतिकारियों का सुराग मिल गया और उनपर निगरानी रखी जाने लगी। क्रांतिकारियों को भी अपनी गिरफ्तारी का संदेह हो गया और वे लोग इधर-उधर बिखर जाने का प्रयत्न करने लगे।

'आतिशी चक्कर' के कई क्रांतिकारी पुलिस के हाथों में पड़ गए थे। गुलाबसिंह अभी तक उनके हाथ नहीं लगा था। वह २९ अगस्त, सन् १९३० का दिन था। प्रात: लगभग दस बजे वह शहर छोड़ने के इरादे से बाहर खेतों में पहुँच गया। उसका विचार था कि पैदल-पैदल जंगल के रास्ते वह कहीं निकल जाएगा। उसने दो व्यक्तियों को देखा, जो उसकी गतिविधियों पर दृष्टि रखे हुए थे। उनमें से एक ने आवाज दी—

''सरदारजी, जरा ठहरिए। हमें आपसे काम है।''

उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही वे दोनों गुलाबसिंह की ओर लपक पड़े। गुलाबसिंह के पास भागने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं था। उसे भागते देख उन दोनों व्यक्तियों ने सीटियाँ बजाना प्रारंभ कर दिया और देखते-ही-देखते कई लोग इधर-उधर से दौड़ पड़े तथा उसे पकड़ लिया गया। गुलाबसिंह को गिरफ्तार करके वे लोग पुलिस स्टेशन ले गए। उसके पैरों में बेड़ियाँ और हाथों में हथकड़ियाँ

डाल दी गईं। दोपहर को एक थानेदार गुलाबसिंह के पास पहुँचा और उससे पूछताछ प्रारंभ की—

"तुम क्रांतिकारी दल में कब सम्मिलित हुए थे?"

"मैं किसी क्रांतिकारी दल के विषय में नहीं जानता और न मैं किसी दल का सदस्य हूँ।"

"तो फिर तुम क्या करते हो?"

"मैं खालसा विद्यालय का विद्यार्थी हूँ।"

"क्या पुलिस से तुम्हारी कुछ दुश्मनी है?"

"नहीं।"

"तो फिर तुमने पुलिस के आदमियों की जान लेने के लिए पंजाब के छह शहरों में बम क्यों रखे थे?"

"न मैंने कोई बम रखे थे और न मुझे उनके बारे में कोई जानकारी है।"

गुलाबसिंह के उत्तरों से थानेदार बहुत निराश हुआ। उसने कहा—"ठीक है, हम दूसरी तरह से इलाज करेंगे।"

उसे किसी सुनसान स्थान पर ले जाया गया और बड़ी बेरहमी के साथ उसकी पिटाई की गई; पर फिर भी पुलिसवाले उससे कोई भेद नहीं पा सके। पुलिसवालों को यह आश्चर्य था कि जिन यातनाओं से त्रस्त होकर अच्छे-अच्छे अकड़बाज भेद खोल देते थे, उन सभी यातनाओं को यह कोमल किशोर झेल गया और उसने अपने किसी साथी को फँसाने के लिए अपना मुँह नहीं खोला।

पुलिस ने ये हथकंडे सभी गिरफ्तार साथियों के ऊपर आजमाए और उनमें से कुछ कच्चे निकल गए। उन्होंने सारा भेद पुलिस के सामने खोल दिया। उनमें से कुछ मुखबिर भी बन गए।

आखिर 'आतिशी चक्कर' के क्रांतिकारियों पर लाहौर षड्यंत्र केस के अंतर्गत एक पूरक मुकदमा चला। सरकारी पक्ष की ओर से पं. ज्वालाप्रसाद ने मुकदमा पेश किया। क्रांतिकारियों के वकील थे लाला श्यामलाल। लाला श्यामलाल बहुत ही योग्य और देशभक्त व्यक्ति थे। वे उन क्रांतिकारियों को बिलकुल अपने बच्चों की तरह मानते थे।

विशेष ट्रिब्यूनल के सामने दो वर्ष तक मुकदमा चला। इस ट्रिब्यूनल के अध्यक्ष थे मि. ब्लैकर। १३ दिसंबर, १९३३ को मुकदमे का फैसला सुना दिया गया। फैसले के अनुसार, गुलाबसिंह व अमरीकसिंह को फाँसी तथा रूपचंद, जहाँगीरीलाल एवं मलिक कुंदनलाल को आजीवन कारावास और मलिक नाथूराम को सात वर्ष का कठोर कारावास की सजाएँ दी गईं। दस अभियुक्तों को दो वर्ष से

लेकर चार वर्ष तक के कठोर कारावास के दंड दिए गए।

जिन अभियुक्तों को बरी कर दिया गया, वे थे—धर्मवीर, जयप्रकाश, दियानत राय, बंसीलाल और महाराज कृष्ण।

इस मुकदमे में पाँच व्यक्ति मुखबिर बन गए। वे थे—इंद्रपाल, खैरातीलाल, सियाराम, सरनदास और मदनगोपाल। बाद में इंद्रपाल ने अपने बयान बदल दिए और उसने पुलिस के अत्याचारों की अदालत में शिकायत की। अंततः उसे भी मृत्युदंड सुनाया गया।

इस फैसले के विरुद्ध हाई कोर्ट में अपील की गई। हाई कोर्ट के फैसले के अनुसार गुलाबसिंह के भाई अमरीकसिंह को बरी कर दिया गया। गुलाबसिंह और इंद्रपाल के मृत्युदंड को घटाकर उन्हें आजीवन कारावास का दंड सुनाया गया।

गुलाबसिंह सोच रहा था कि यदि फाँसी का दंड हो गया होता तो अच्छा था। वह करतारसिंह सराबा और सरदार भगतसिंह के साथ स्थान पाने के लिए उत्सुक था।

□



★ इंद्रपाल


इंद्रपाल

दिल्ली से मथुरा जानेवाली रेल लाइन के समीप, दिल्ली से लगभग नौ-दस मील के फासले पर एक टूटी-फूटी हुई सराय में एक साधु महाराज धूनी रमाए हुए बैठे थे। उन साधुजी के सिर के बाल और दाढ़ी-मूँछें सभी सफाचट थे। वे गेरुए वस्त्र पहनकर, व्याघ्र-चर्म पर पालथी मारकर बैठे हुए थे। उनके सामने धूनीस्थल में मोटी-मोटी अध-सुलगी लकड़ियों से कुछ धुआँ उठ रहा था। धूनी के पास एक चिलम भी रखी थी। साधु महाराज के पास एक खाली कमंडलु रखा हुआ था। साधु महाराज ध्यानावस्थित स्थिति में थे। उसी समय एक सेठ जैसे व्यक्ति ने उनके पास पहुँच कर जोर से आवाज लगाई—

''साधु महाराज की जय!''

साधु महाराज ने थोड़े से नेत्र खोले और आशीर्वाद दिया—

''खुश रह, बच्चा!''

साधु महाराज और आगंतुक शिष्य दोनों ने ही इधर-उधर झाँककर यह देखना चाहा कि वहाँ उनके अतिरिक्त कोई और तो नहीं है। जब उन्हें यह विश्वास हो गया कि वहाँ और कोई नहीं है तो उनमें धीरे-धीरे बातें होने लगीं। आगंतुक शिष्य ने प्रश्न किया—

''कहिए, महाराज! यहाँ आपको कोई कष्ट तो नहीं है?''

''कष्ट की क्या पूछता है, बच्चा, अभी तो यहाँ कष्ट-ही-कष्ट हैं। सबसे

बड़ा कष्ट तो यह है कि पिछले दो दिन से केवल पानी पर ही गुजारा हो रहा है, खाने को कुछ भी नहीं मिला।''

''क्यों महाराज, क्या आप भिक्षाटन को नहीं गए या गाँववालों ने कुछ दिया ही नहीं?''

''गया तो था, बच्चा, लेकिन जिस घर पर पहली आवाज लगाई, उस घर से सिर्फ एक मुट्ठी-भर आटा ही मिला। दूसरे घर पर जाने में बहुत संकोच हुआ। वह मुट्ठी-भर आटा मैंने गाँववालों के सामने की चींटियों के भिटे पर डाल दिया। एक गाँववाले ने इसका कारण पूछा तो उससे कह दिया कि जब आटा थोड़ा हो तो उससे छोटे प्राणियों का पेट भरना चाहिए। जब आटा ज्यादा होगा तो उससे मैं अपना पेट भरूँगा।''

''तो महाराज, आप दो दिन से भूखे हैं। मुझे बताइए कि मैं आपकी क्या सेवा करूँ?''

साधुजी ने इधर-उधर देखकर अपने शिष्य को गाली देते हुए कहा—

''अबे साले, पूछता ही रहेगा या कुछ खाने के लिए भी लाएगा! साइकिल से दौड़ता हुआ दिल्ली जा और खाने के लिए कुछ ला। भूख के मारे मेरे तो प्राण ही निकले जा रहे हैं।''

बातचीत से स्पष्ट हो गया कि न तो साधु महाराज असली थे और न ही उनका शिष्य। वे दोनों ही क्रांतिकारी थे और किसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु साधु महाराज ने वहाँ धूनी रमाई थी। साधु महाराज का असली नाम इंद्रपाल था और उनके शिष्य का नाम यशपाल था। यशपाल बम विस्फोट से वाइसराय लॉर्ड इरविन की ट्रेन को उड़ाना चाहते थे और दिल्ली के निकट तेहखंड का वह स्थान उन्होंने इस कार्य के लिए उपयुक्त समझा था। उन्होंने लाहौर से अपने क्रांतिकारी साथी इंद्रपाल को बुलाकर टूटी-फूटी सराय में उसे साधु के वेश में टिका दिया था, जिससे वह सवारीगाड़ियों और विशेष रूप से रात के समय मालगाड़ियों के आने-जाने का समय नोट करता रहे; क्योंकि रेलवे टाइम टेबिल में मालगाड़ियों के आने-जाने का समय नहीं रहता। इंद्रपाल को यह काम भी दिया गया था कि वह यह भी देखता रहे कि गश्त देने वहाँ पुलिसवाले कब-कब पहुँचते हैं और कब सूनसान रहता है।

इंद्रपाल लाहौर का एक अच्छा कातिब था। उसका लेखन बहुत अच्छा था और वह उर्दू की किताबत करता था। यशपाल के संपर्क से वह क्रांतिकारी भगवतीचरण बोहरा, सरदार भगतसिंह, चंद्रशेखर आजाद और दल के अन्य क्रांतिकारियों से जुड़ा हुआ था। वह अच्छा क्रांतिकारी सिद्ध हो सकेगा या नहीं,



दियानत राय



जयप्रकाश



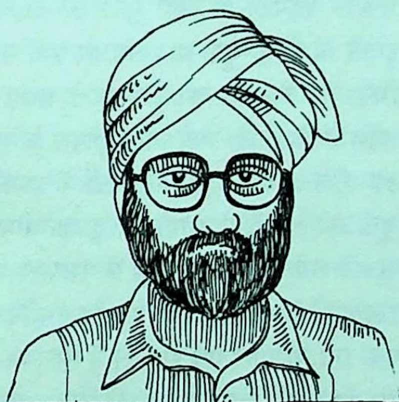
महाराज कृष्ण



भीमसेन



सेवाराम



हरिनाम सिंह

इंद्रपाल द्वारा निर्मित 'आतिशी चक्कर' के क्रांतिकारी

इसके लिए इंद्रपाल ने स्वयं अपने ऊपर कुछ विचित्र प्रयोग किए थे।

इंद्रपाल की मान्यता थी कि नारी का आकर्षण बड़े-बड़े साधु-संन्यासियों और क्रांतिकारियों को विचलित कर देता है। नारी-आकर्षण से वह विचलित होगा या नहीं, इसकी जाँच करने एक रात वह एक वेश्या के पास जा पहुँचा और एक पूरी रात के पैसे उसे पेशगी दे दिए तथा उसके साथ पलंग पर लेटा रहा। उस वेश्या से गपशप लड़ाते हुए उसने पूरी रात निकाल दी और उससे तनिक भी छेड़छाड़ नहीं की। वेश्या के पास इस प्रकार का पहला ही ग्राहक पहुँचा था। वेश्या ने उसे पीर या औलिया समझा और सुबह उसके पैर छूकर सारे पैसे उसे लौटा दिए। अपने संयम पर इंद्रपाल को संतोष हुआ।

इंद्रपाल को यह भी मालूम था कि गिरफ्तार हो जाने पर कुछ क्रांतिकारी पुलिस की यातनाएँ सहन नहीं कर पाते और वे दल के सारे भेद बता देते हैं। गिरफ्तारी के पश्चात् पुलिस की यातनाओं से कहीं मैं तो कच्चा नहीं पड़ जाऊँगा, इसके लिए भी उसने अपनी जाँच करनी चाही। एक बार वह ऐसे स्थान पर पहुँचा, जहाँ रुका हुआ पानी मच्छरों और डाँसों का प्रजनन स्थल बना हुआ था। भैंस जैसा प्राणी भी उन मच्छरों को बरदाश्त नहीं कर पाता था। इंद्रपाल नंगे बदन होकर उस स्थान पर बैठ गया और रात-भर वहाँ बैठा रहा। लाखों मच्छरों ने अपनी समस्त शक्ति के साथ इंद्रपाल के खुले बदन पर चाँदमारी की; लेकिन इंद्रपाल टस-से-मस नहीं हुआ। उसने मच्छरों को भगाने या शरीर को खुजाने के लिए भी हाथ नहीं हिलाया। सुबह होते-होते उसका पूरा बदन ऐसा हो गया था जैसे चेचक निकली हो। स्वयं के द्वारा निर्धारित परीक्षा में वह खरा उतरा।

इंद्रपाल के इन्हीं गुणों को देखकर यशपाल ने उसे साधु के रूप में धूनी रमाने के लिए चुना था। लगभग एक महीने तक भूख और प्यास की चिंता किए बिना वह तेहखंड की टूटी-फूटी सराय में साधु के वेश में धूनी रमाए रहा तथा गाड़ियों के आने-जाने और पुलिस के गश्त लगाने के समय को नोट करता रहा। इस बीच आसपास के गाँववालों में उसकी सिद्धि की धाक जम गई थी और उसकी धूनी की भस्मी से लोगों की दुःख-बीमारियाँ दूर होने लगी थीं तथा उनके भाग्य खुलने लगे थे। इधर दिल्ली में यशपाल और भगवतीचरण रेलवे लाइन के नीचे बम रखने की तैयारियाँ करते रहे और उन्होंने सब तरह की तैयारियाँ पूर्ण कर भी डालीं। एक रात यशपाल एवं इंद्रपाल ने मिलकर रेलवे लाइन के नीचे जमीन खुरचकर बम रख दिए और फिर जमीन को ठीक-ठाक कर दिया। बम में चिनगारी पहुँचाने के लिए बिजली के दो तार उसके अंदर पहुँचाए गए थे और इन दोनों तारों को जमीन के अंदर-अंदर दूर तक पहुँचाकर एक झाड़ी में रखी बैटरी के साथ उनका संबंध

स्थापितं किया गया था।

जो दिन बम विस्फोट के लिए नियत किया गया था, उसके पहले इंद्रपाल को सराय से हटाकर लाहौर भेज दिया गया। उसके स्थान पर एक नए साथी भागराम को यशपाल ने अपने साथ रखा।

२३ दिसंबर, १९२९ को सुबह लगभग छह बजे यशपाल ने बम का विस्फोट कर दिया। वाइसराय की गाड़ी को क्षति तो पहुँची, लेकिन वे स्वयं बाल-बाल बच गए।

इंद्रपाल जब लाहौर पहुँचा तो उसने सोचा कि मुझे किसीके अधीन रहकर कार्य नहीं करना चाहिए। परिणामत: उसने लाहौर के नौजवानों को भरती करके अपना एक नया क्रांतिकारी दल बना डाला और उसका नाम रखा—'आतिशी चक्कर'। इस दल में उसने यशपाल के भाई धर्मपाल को भी लिंया। गुलाबसिंह नाम का एक सिख नौजवान उस दल में विशेष रूप से सक्रिय था।

'आतिशी चक्कर' के सदस्यों ने स्वयं के प्रयत्नों से एक विशेष प्रकार के बम के निर्माण में सफलता प्राप्त की। उन्होंने पटाखे एवं आतिशबाजी के काम आनेवाली सामग्री का उपयोग किया तथा बम के खोल के अंदर कीलें और काँच के टुकड़े आदि भरे। बारूद लगे हुए पलीते का एक सिरा बम के अंदर रहता और दूसरे सिरे को एक मोमबत्ती के साथ जोड़ा जाता था। मोमबत्ती जलते-जलते जब बारूदी पलीते के पास पहुँचती थी तो पलीता आग पकड़ लेता था और भीषण धमाके के साथ बम का विस्फोट हो जाता था।

उन दिनों पंजाब की पुलिस क्रांतिकारियों की धर-पकड़ कर रही थी। पुलिस से बदला लेने के लिए 'आतिशी चक्कर' के क्रांतिकारियों ने एक योजना बना डाली। एक साथ पंजाब के छह नगरों में बम विस्फोट का निर्णय लिया गया। ये नगर थे—लाहौर, अमृतसर, लायलपुर, शेखूपुरा, गुजराँवाला और रावलपिंडी।

१९ जून, १९३० को किराए पर लिये हुए मकानों में बम रख दिए गए और रात के समय विस्फोट हुए। जहाँ बम रखे गए थे वहाँ कुछ संदूकों में पटाखे टाइप के अन्य बम भी रखे गए, जो सामान इधर-उधर करने से ही फट सकते थे। जहाँ-जहाँ बमों का विस्फोट हुआ था, पुलिस वहाँ-वहाँ जाँच करने पहुँची और सामान की तलाशी करते समय संदूकों में रखे गए बम फट गए तथा पुलिस के दो लोगों को जान से हाथ धोना पड़ा।

गिरफ्तारियों के क्रम में 'आतिशी चक्कर' के सभी क्रांतिकारी गिरफ्तार हो गए। उनपर मुकदमे चले और बड़ी कठोर सजाएँ उनको मिलीं।

'आतिशी चक्कर' का नेता इंद्रपाल भी गिरफ्तार हुआ। इस समय तक

उसके जीवन की स्थितियाँ बदल चुकी थीं। उसकी शादी हो चुकी थी। वह इंद्रपाल, जो बड़ी-बड़ी परीक्षाओं में खरा उतरा था, यह सहन नहीं कर सका कि उसके जेल जाने या फाँसी होने के कारण उसकी नव विवाहिता पत्नी का जीवन नरक बन जाए। वह पुलिस का मुखबिर बन गया और उसने क्रांतिकारी दल के सारे भेद पुलिस को दे दिए।

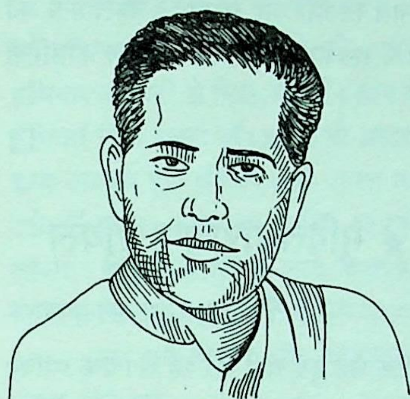
इंद्रपाल की आत्मा उसे कचोटती रही कि उसने अच्छा नहीं किया। उसने निर्णय कर लिया कि मामला अदालत में तो जाने दो, फिर देखा जाएगा। मामला अदालत में पहुँचा तो इंद्रपाल ने अपने बयान बदल दिए। इतना ही नहीं, उसने अदालत में पुलिस का कच्चा चिट्ठा खोलकर रख दिया कि उसने किस-किस क्रांतिकारी को कौन-कौन-सी यातनाएँ दी हैं। अपनी पोल खुल जाने पर पुलिस बहुत बौखलाई और इंद्रपाल उसका कट्टर शत्रु बन गया। पुलिस ने बदला लेने के लिए इंद्रपाल को फँसाने में अपनी सारी शक्ति लगा दी।

जब लाहौर की अदालत ने अपना फैसला सुनाया तो अन्य मुखबिरों को तो बरी कर दिया गया, लेकिन इंद्रपाल को आजीवन कारावास का दंड दिया गया। आजीवन कारावास का दंड भुगतते हुए इंद्रपाल को अफसोस नहीं हुआ। उसे संतोष था कि गलत रास्ते पर कदम रखकर भी वह सही रास्ते पर पहुँच गया।

□



★ कमलनाथ तिवारी


कमलनाथ तिवारी

बिहार के चंपारन जिले के बेतिया स्थान के हाई स्कूल में पढ़नेवाले एक छात्र कमलनाथ तिवारी को हाई स्कूल से निकाल दिया गया और उसके प्रमाण-पत्र पर लिख दिया गया—

'इस विद्यार्थी ने धारा १४४ का उल्लंघन स्वयं किया और अन्य छात्रों को ऐसा करने की प्रेरणा दी।'

अब तो कमलनाथ का भविष्य अंधकारमय हो गया। वह भरती के लिए जहाँ भी जाता, उससे गत विद्यालय छोड़ने का प्रमाण-पत्र माँगा जाता और प्रमाण-पत्र देखकर कोई भी उसे भरती करने के लिए तैयार नहीं होता था। परिवार के लोगों की ओर से वह अलग प्रताड़ित किया जा रहा था।

कमलनाथ का एक मित्र मणिभूषण भट्टाचार्य कलकत्ता में रह रहा था। वह उसीके पास कलकत्ता पहुँच गया और वहाँ के आर्यसमाज मंदिर में रहने लगा। आर्यसमाज मंदिर में वह झाड़ू लगाता, दरियाँ बिछाता और छोटे-मोटे सभी काम करता था। कलकत्ता में उसकी रहने की समस्या भी हल हो गई और विद्यालय प्रवेश की समस्या भी डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी के सहयोग से हल हो गई।

क्रांतिकारी विचारों का होने के कारण कलकत्ता में कमलनाथ का संपर्क कुछ क्रांतिकारियों के साथ हो गया। उन्हीं दिनों सरदार भगतसिंह बम बनाने के काम आनेवाली रासायनिक सामग्री खरीदने कलकत्ता पहुँचे। वे स्वयं वह सामग्री खरीदने के लिए दुकानों पर जाना नहीं चाहते थे। बम के काम आनेवाली रासायनिक

सामग्री खरीदकर लाने का काम कमलनाथ तिवारी को दिया गया। कमलनाथ ने वह दायित्व बहुत जिम्मेदारी के साथ पूरा किया। बमों के लिए गन कॉटन भी कलकत्ता में ही बनाया गया। वह सब सामग्री लेकर भगतसिंह आगरा पहुँच गए।

भगतसिंह के साथ उनके साथी क्रांतिकारी फणींद्रनाथ घोष ने भी काम किया था। फणींद्रनाथ घोष गिरफ्तार होते ही पुलिस का गवाह बन गया और उसने सभी लोगों के पते-ठिकाने बता दिए। पुलिस ने कमलनाथ तिवारी को २८ मई, १९२९ को बेतिया में गिरफ्तार कर लिया।

कमलनाथ तिवारी को गिरफ्तार करके लाहौर षड्यंत्र केस में सम्मिलित करने के लिए लाहौर भेज दिया गया। क्रांतिकारियों द्वारा किए गए ऐतिहासिक अनशन में वे भी सम्मिलित रहे। कमलनाथ तिवारी को आजीवन कालेपानी की सजा दी गई। कुछ दिन उन्हें मुलतान जेल में रखकर कालेपानी की काल कोठरियों में भेज दिया गया।

□

★ कल्याणी देवी शुक्ल ★ मुक्तिनारायण शुक्ल

जयपुर के शुक्ल निवास में दो व्यक्ति बैठे हुए बातें कर रहे थे। एक व्यक्ति औसत कद का था, लेकिन उसका शरीर भरा हुआ और ठोस था। उसका रंग गेहुँआ था और चेहरे पर चेचक के हलके दाग थे। उसकी आँखों में कुछ सम्मोहक शक्ति जैसी थी। दूसरा व्यक्ति गौर वर्ण और लंबे कद का था। शरीर उसका भी भरा हुआ था। उसका व्यक्तित्व पंडिताऊ था। पहले व्यक्ति का नाम चंद्रशेखर आजाद और दूसरे व्यक्ति का नाम मुक्तिनारायण शुक्ल था। मुक्तिनारायण शुक्ल वैसे कानपुर के निवासी थे, पर वे जयपुर जाकर बस गए थे। जयपुर नगर में एक अच्छे वैद्य के रूप में उनकी ख्याति थी। इलाज के सिलसिले में राजमहलों में भी उनका आना-जाना था। वैद्यजी से आजाद का परिचय आजाद के साथी कुंदनलाल गुप्त ने कराया था। आजाद ने वैद्यजी की थाह लेने के उद्देश्य से कहा—

''वैद्यजी, मेरे साथी कुंदनलाल ने आपकी बहुत तारीफ की है और आपको सभी प्रकार से भरोसे का आदमी बताया है। आप तो जानते ही हैं, देश के लिए हम लोग जो काम कर रहे हैं, वह हमारे शुभचिंतकों को भी संकट में डाल सकता है। यदि आप यह अनुभव करें कि बैठे-ठाले संकट क्यों मोल लिया जाए तो आप हम लोगों से मेल-जोल न रखें। इसमें हमें शिकायत होने का कोई प्रश्न ही नहीं है।''

आजाद की यह बात सुनकर वैद्यजी के चेहरे पर कुछ इस प्रकार के भाव उभरे जैसे आजाद की बात उन्हें अच्छी न लगी हो। उनका कथन था—

''देखिए पंडितजी, यदि हम इस रंग में न रँगे होते तो हम आपसे मिलाने के लिए कुंदनलालजी से कहते ही क्यों! जब हमने स्वयं आपको बुलाया है तो इसका मतलब स्पष्ट ही है कि हम आपके साथ कुछ सहयोग करना चाहते हैं। जिस रास्ते पर हमने जानबूझकर कदम रखा है, उसमें यदि कुछ संकट मिलते हैं तो उनके लिए तो हमें तैयार रहना ही चाहिए। अब आप यह बताएँ कि मुझे किस प्रकार आपको सहयोग देना है?''

वैद्यजी की बात सुनकर आजाद को अच्छा लगा। आश्वस्त होकर बोले—

''क्रांतिकारियों को पैसा उतना आवश्यक नहीं, जितने हथियार। हम लोगों को हथियारों के लिए ही पैसे की आवश्यकता होती है। सुना है कि रियासतों में हथियार आसानी से मिल जाते हैं। आप ऐसे व्यक्तियों से मेल-जोल रखिए, जिनसे हथियार मिल सकते हों। हमारे जो आदमी आपके पास आएँगे, उनसे आप संकेत-शब्द अवश्य पूछ लीजिए। जो पहला व्यक्ति आपसे मिलेगा, उसका संकेत-शब्द 'गोली' होगा। जानेवाला व्यक्ति आपको आनेवाले व्यक्ति का संकेत-शब्द बता जाएगा। यदि कोई संकेत-शब्द न बताए तो समझ लीजिए कि वह हमारा नहीं, खुफिया विभाग का आदमी है।''

बातें तय हो गईं और चंद्रशेखर आजाद पं. मुक्तिनारायण शुक्ल से बिदा लेकर चले गए।

कुछ दिन पश्चात् एक महिला वैद्यजी के पास पहुँचीं और उन्होंने कहा कि मुझे पंडितजी ने आपके पास भेजा है। वैद्यजी ने संकेत-शब्द पूछा तो उन्होंने 'गोली' कह दिया। वैद्यजी आश्वस्त हुए और उन्हें अंदर ले गए।

आगंतुक महिला का नाम दुर्गा देवी था। पार्टी के लोग उन्हें 'दुर्गा भाभी' कहते थे। उनके क्रांतिकारी पति श्री भगवतीचरण बोहरा लाहौर में बम का परीक्षण करते समय शहीद हो गए थे। पार्टी में उनका स्थान दुर्गा भाभी ने ले लिया था और दुर्गा का रूप धारण करके उग्र हो उठी थीं। खतरे के बड़े-बड़े काम वे करने लगी थीं। आजाद ने कुछ रिवॉल्वर और कारतूस लाने के लिए उन्हें वैद्यजी के पास भेजा था।

वैद्यजी की पत्नी श्रीमती कल्याणी देवी ने दुर्गा भाभी को राजस्थानी परिधान पहनने और राजस्थानी भाषा बोलने का प्रशिक्षण दिया। जब वे काफी दिन वहाँ रहकर इस कला में पारंगत हो गईं तो मिठाई के कुछ टोकनों के नीचे हथियार और ऊपर मिठाइयाँ रखकर उन्हें बिदा किया। वैद्यजी और उनकी पत्नी रेल में बिठाने भी गए, जिससे आबकारी विभागवाले उनके सामान की तलाशी न लें। वैद्यजी को

सभी लोग जानते थे। उन्होंने एक भरोसेमंद नौकर भी दुर्गा भाभी के साथ कर दिया। घाँघरे-लूँगड़े में सजी-सजाई दुर्गा भाभी हथियार लेकर आजाद के पास दिल्ली जा पहुँचीं। आते समय वे वैद्यजी को 'तमंचा' संकेत-शब्द बता आई थीं।

कुछ दिन बाद गौर वर्ण का तथा कसी हुई देह का एक व्यक्ति वैद्यजी के पास पहुँचा और कहा कि पंडितजी ने मुझे आपके पास भेजा है। वैद्यजी ने संकेत-शब्द पूछा तो उसने 'तमंचा' कह दिया। उससे बात करने में वैद्यजी को कोई संकोच नहीं था।

आगंतुक का नाम विश्वनाथ वैशंपायन था। वह आजाद का बहुत विश्वसनीय साथी था। वैशंपायन ने फरमाइश की कि इस बार आजादजी ने दो राइफलें मँगाई हैं। वैद्यजी ने एक व्यक्ति को राइफलें बेचने के लिए पटाया और शहर के बाहर किसी निर्जन स्थान पर राइफलें देने की बात तय हुई। जब वह व्यक्ति राइफलें लेकर पहुँचा तो विश्वनाथ वैशंपायन को देखकर उसे संदेह हुआ कि यह व्यक्ति राइफल चला भी सकेगा या नहीं। उस व्यक्ति ने आग्रहपूर्वक वैशंपायन के सामने प्रस्ताव रख दिया कि आप दोनों राइफलें चलाकर देख लें। वैशंपायन इस स्थिति से बचना चाहते थे; पर वह व्यक्ति अपने आग्रह पर दृढ़ रहा। आखिर वैशंपायन ने एक वृक्ष के तने को निशाना बनाकर एक राइफल से गोली छोड़ दी। फिर उन्होंने दूसरी राइफल से गोली छोड़ी। वह व्यक्ति वृक्ष के पास यह देखने के लिए गया कि उसके तने में कोई गोली लगी है या नहीं। उसे बहुत आश्चर्य हुआ, जब उसने देखा कि दूसरी गोली ठीक उसी स्थान पर लगी है, जहाँ पहली गोली लगी थी। इतने सच्चे निशाने की उसने बहुत तारीफ की और कुछ कम दामों में दोनों राइफलें बेच दीं।

घर पहुँचकर वैद्यजी ने भी वैशंपायन के निशाने की तारीफ की और इतना अच्छा निशाना लगाने का रहस्य पूछा। वैशंपायन ने बताया कि भैया आजाद ही हम लोगों को निशानेबाजी का अभ्यास कराते रहते हैं। वैद्यजी ने भी इस बात की पुष्टि करते हुए कहा कि भैया आजाद जितने दिन यहाँ रहे, वे हम लोगों को भी एयर पिस्टल से निशाना लगाना सिखाते रहे।

वैशंपायन के सामने समस्या थी कि दो राइफलें, एक रिवॉल्वर और दोनों की कुछ गोलियाँ आजाद के पास कानपुर कैसे ले जाई जाएँ! उन्हें भय था कि यदि जाने पर आबकारी विभागवालों ने संदूकों की तलाशी ली तो संदूकों में से राइफलें निकल पड़ेंगी और सारा खेल बिगड़ जाएगा तथा पकड़े अलग जाएँगे। इस समस्या का हल वैद्यजी की पत्नी श्रीमती कल्याणी देवी ने निकाला। वे बोलीं—

"काहे घबरात हो! हम चलिबे तुम्हार संग और छोटी बिटिया हमरे संग जाई।"

श्रीमती शुक्ल की बात सुनकर वैशंपायन को कुछ आश्चर्य और हैरानी का अनुभव हुआ। वे सोच रहे थे कि परदे में रहनेवाली एक स्त्री इतना बड़ा जोखिम उठाने के लिए क्यों तैयार हो रही है। वैद्यजी ने अपनी पत्नी को हतोत्साहित करने के उद्देश्य से कहा—

''और अगर पुलिस ने तुमको पकड़ लिया तो?''

श्रीमती कल्याणी देवी ने तत्परता के साथ उत्तर दिया—

''तो हमहूँ लाला के संगे जेल जैबे, और का होई!''

वैद्यजी अपनी पत्नी की सूझबूझ और साहस से आश्वस्त हुए। दो नए ट्रंक और एक टिफिन का डिब्बा खरीदा गया। ट्रंकों के अंदर राइफलें और उनके ऊपर श्रीमती शुक्ल तथा उनकी बिटिया के कपड़े रखे गए। टिफिन के हर डिब्बे में नीचे गोलियाँ और ऊपर कलाकंद रखा गया।

जब वे लोग स्टेशन पहुँचे तो आबकारी विभाग के सिपाहियों की दृष्टि इस सामान पर पड़ी। उन लोगों ने वैद्यजी को सलाम किया और पूछा कि ''क्या कहीं बाहर जा रहे हैं?'' वैद्यजी ने परेशानी जाहिर करते हुए वैशंपायन की ओर इशारा करते हुए कहा—

''का बताई, भैया! ई ससुर हमार भैया हैं। कानपुर से पढ़ाई छोड़ भाग आए हैं। अब फिर समझाय-बुझाय भेज रहिन। उनके संगे उनकी भौजी और बिटिया भी जाई।''

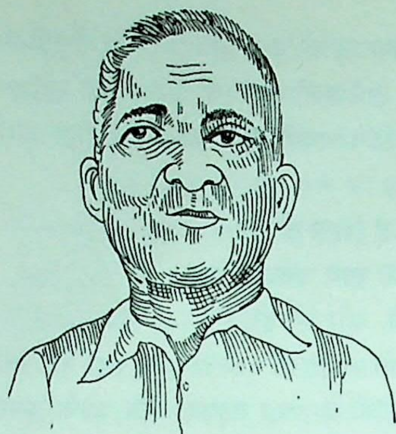
बिना किसी शंका के जब वे लोग रेल में बैठ गए तो श्रीमती शुक्ल ने वैशंपायन को छेड़ते हुए कहा—''लाला, इतनी गारी कबहूँ ना खाए हुइहौ।''

श्रीमती कल्याणी देवी शुक्ल और उनकी बिटिया के कारण वैशंपायन की कानपुर तक की यात्रा निर्विघ्न रही। आजाद उस सामान को पाकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा कि वैद्यजी ने एक बढ़िया पिस्टल मुझको भी दिया है। पूरा ब्योरा सुनकर वे भी श्रीमती कल्याणी देवी के साहस की प्रशंसा किए बिना न रह सके।

□

★ काशीराम

अपने क्रांतिकारी जीवन के प्रारंभ में काशीराम का परिचय भगतसिंह से भी हुआ। उन दिनों भगतसिंह अपना घर छोड़कर दिल्ली में अड्डा जमाए हुए थे और


काशीराम

'अर्जुन' के प्रकाशन में सहयोग दे रहे थे। एक दिन काशीराम ने भगतसिंह को एक पुस्तक पढ़ते हुए देखा। कुछ और भी पुस्तकें उनके पास रखी हुई थीं। एक पुस्तक प्रसिद्ध क्रांतिकारी शचींद्रनाथ सान्याल की लिखी हुई 'बंदी जीवन' थी। काशीराम को अपनी ओर आते हुए देखकर भगतसिंह ने वे पुस्तकें एक अखबार से ढक दीं। काशीराम ने कहा—

"आप जिन पुस्तकों को मुझसे छिपा रहे हैं, उनमें से कुछ पुस्तकें शायद मैंने पढ़ी हैं। 'बंदी जीवन' तो निश्चित रूप से पढ़ी है।"

काशीराम का परिचय प्राप्त करके भगतसिंह ने पूछा—

"क्या इस तरह की पुस्तकें पढ़ना आपको अच्छा लगता है?"

"हाँ, मुझे इस प्रकार की पुस्तकें बहुत अच्छी लगती हैं और मैं उन्हें खोज-खोजकर पढ़ता हूँ।"

"क्या आप स्वयं इस प्रकार के जीवन में विश्वास करते हैं?"

"करता तो हूँ, लेकिन अभी तक कोई ऐसा साथी नहीं मिला, जो इस रास्ते पर मेरा हमराही बन सके।"

"और यदि आपको कोई ऐसा साथी मिल जाए तो क्या आप इस रास्ते पर चलना पसंद करेंगे?"

"निश्चित ही मैं इस रास्ते पर चलना पसंद करूँगा।"

"तो आप प्रतीक्षा कीजिए। शायद आपको कोई ऐसा साथी शीघ्र ही मिल जाए, जो आपका हमराही बन सके।"

इस संक्षिप्त वार्त्ता के पश्चात् भगतसिंह और काशीराम के संबंध स्थापित हो गए और वे संबंध दृढ़तर होते गए। कुछ ही दिनों पश्चात् काशीराम को 'हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र सेना' का सैनिक बना लिया गया और वह चंद्रशेखर आजाद के नेतृत्व में कार्य करने लगा।

चंद्रशेखर आजाद के नेतृत्व में एक विशेषता यह थी कि वे कार्य के अनुसार अपने साथियों का चुनाव करते थे। जब दिल्ली के गाडोदिया स्टोर पर डकैती के लिए उन्हें साथियों की आवश्यकता हुई तो इस कार्य के लिए चुने गए साथियों में

काशीराम को भी चुना गया। वह डकैती कांड बहुत सफलतापूर्वक संपन्न हो गया। उस भाग-दौड़ में काशीराम का एक पैर जख्मी हो गया। घटना के अगले दिन सुबह काशीराम अपने पैर पर मरहम-पट्टी कराने अपने परिचित डॉ. युद्धवीर सिंह के अस्पताल में जा पहुँचे।

गाडोदिया डकैती कांड के समाचार प्रात:काल के समाचार-पत्रों में छप चुके थे। डॉ. युद्धवीर सिंह ने भी वह समाचार पढ़ा था। काशीराम उस कांड में सम्मिलित थे, इसकी कल्पना डॉ. साहब को नहीं हो सकती थी। डॉ. साहब का स्वभाव बहुत विनोदी था और काशीराम के साथ उनके बहुत खुले हुए संबंध थे। जब जख्मी पैर लेकर काशीराम उनके अस्पताल में पहुँचे तो वहाँ काफी मरीज जमा थे। मरीजों में खुफिया विभाग के एक दारोगा भी थे। काशीराम को देखते ही डॉ. युद्धवीर सिंह ने मजाक के लहजे में कहा—

''आइए, काशीरामजी! रात में तो आपने खूब हाथ मारा। हमारा हिस्सा भी लाए हो या नहीं? याद रखना, अगर हमारा हिस्सा नहीं दिया तो तुम्हारी सब पोल खोल दूँगा। यह देखो, खुफिया विभाग के दारोगाजी यहीं बैठे हैं। इनसे कह दूँगा तो अभी हथकड़ियाँ पड़ जाएँगी।''

खुफिया विभाग के दारोगा ने जब यह बात सुनी तो वह खिसियानी हँसी हँसकर रह गया। उसे क्या पता था कि उस घटना का एक सचमुच का अभियुक्त उसके सामने है, जिसे गिरफ्तार करके वे बड़ा इनाम पा सकते हैं।

काशीराम के लिए यह आवश्यक हो गया था कि वे डॉ. साहब के मजाक का कुछ-न-कुछ उत्तर दें। वे बोले—

''हाँ, डॉक्टर साहब! डाका तो डाला और रुपया भी ढेर सारा मिला। डाके के बाद वह रुपया तो आप ही ले आए थे। मैं तो अपना हिस्सा लेने आपके पास आया हूँ। बात हँसी में मत उड़ाइए और हिस्सा मुझे दीजिए।''

काशीराम के इस मजाक पर भी दारोगाजी को हँसना पड़ा। डॉ. साहब ने स्पष्टीकरण देते हुए दारोगाजी को सुनाकर कहा—

''हम लोग पुराने मित्र हैं। आपस में इस प्रकार का मजाक जब तक न हो, हम लोगों को चैन नहीं पड़ता।''

दारोगाजी को भी कुछ हाँ-में-हाँ मिलानी पड़ी। मरहम-पट्टी कराके जब काशीराम चले गए, तब दिल को चैन मिला। वे सोच रहे थे कि दारोगा को शक हो जाता तो मजाक महँगा पड़ता।

चंद्रशेखर आजाद के साथ काशीराम को काम करने के कई अवसर मिले। एक और घटना हो गई, जिसमें आजाद की सूझबूझ को परखने का अवसर

काशीराम को मिला।

एक दिन दिल्ली से कानपुर जाने की आवश्यकता चंद्रशेखर आजाद को पड़ गई। उन्होंने काशीराम को भी अपने साथ ले लिया। उस दिन आजाद एक पुलिस दारोगा की ड्रेस में थे, अर्थात् वे खाकी नेकर और खाकी कमीज पहने हुए थे। कमीज को बाकायदा नेकर के अंदर खोंसा गया था। पैरों में मोजे-जूते भी थे। हाथ में एक मोटी फाइल थी; मानो किसी मामले की तफ्तीश के लिए अपने मुंशी के साथ जा रहे हों। मुंशी बने हुए काशीराम पाजामे के ऊपर खाकी कमीज पहने हुए थे और दारोगाजी का सूटकेस उनके हाथ में था।

दिल्ली से कानपुर के लिए बनारस एक्सप्रेस शाम को चार बजे छूटती थी और वह मथुरा होती हुई कानपुर पहुँचती थी। इंटर क्लास के टिकट लिये गए। डिब्बा बिलकुल खाली पड़ा था। आजाद और काशीराम उसी डिब्बे में जा बैठे। खाली डिब्बे में बैठ जाने के कारण वे एक प्रकार से निश्चिंत थे।

जब गाड़ी चलने लगी तो भागते हुए अन्य चार पुलिस दारोगा उसी डिब्बे में सवार हो गए। उनके साथ कुछ सिपाही भी वरदी में थे। चंद्रशेखर आजाद के लिए उनके साथ दुआ-सलाम करना आवश्यक हो गया। कौन कहाँ का दारोगा है, यह पूछने-ताछने के स्थान पर आजाद ने स्वयं यह बताकर कि मैं अपने मुंशी के साथ कानपुर जा रहा हूँ, उन लोगों से उनके गंतव्य पूछे। एक दारोगा ने बताया कि वह स्वयं भी कानपुर जा रहा है। उनमें से एक इलाहाबाद और अन्य दो बनारस जा रहे थे, यह उन लोगों ने स्वयं बताया।

जो दो दारोगा बनारस जा रहे थे, उन्होंने चंद्रशेखर आजाद का जिक्र छेड़ दिया। शिकायत के लहजे में एक ने कहा—

"यह साला आजाद बहुत चालाक क्रांतिकारी है। कभी-कभी तो वह दिखाई देकर भी ऐसा गायब हो जाता है कि हम लोग उसकी छाया भी नहीं छू पाते। हम लोग उसकी खोज में झाँसी, बनारस व दिल्ली घूमते रहे और पता चला है कि वह फिर बनारस पहुँच गया है। हम लोग उसीकी तलाश में बनारस जा रहे हैं।"

बनारस जानेवाले दूसरे दारोगा ने ताईद करते हुए कहा—

"जब हम लोग बनारस पहुँचेंगे तो हमें रिपोर्ट मिलेगी कि वह कानपुर खिसक गया। हम लोग फिर कानपुर के लिए भागेंगे। बहुत परेशान कर रखा है हमें इस आजाद के बच्चे ने!"

दारोगा लोगों की ये बातें सुनकर चंद्रशेखर आजाद को शक हुआ कि उन लोगों ने उन्हें पहचान लिया है और केवल समय निकालने के लिए वे लोग बातें बना रहे हैं। वे बातें उनको सुनाकर ही की गई थीं, इसी कारण कुछ तो बोलना भी

उनके लिए आवश्यक हो गया था। उन्होंने कहा—

''क्या आप लोगों में से किसीने चंद्रशेखर आजाद को कभी देखा है?''

उन दोनों को स्वीकारना पड़ा कि उन्होंने आजाद को कभी नहीं देखा। आजाद का अगला प्रश्न था—

''जब आप लोगों ने उसे कभी देखा ही नहीं है तो फिर आमना-सामना हो जाने पर भी आप लोग उसे पहचानेंगे कैसे?''

एक दारोगा ने उत्तर दिया—

''उसकी शिनाख्तगी के लिए हम लोगों के पास कोई फोटो भी नहीं है। अलबत्ता मुखबिरों की रिपोर्ट पर ही हम लोगों को निर्भर रहना पड़ेगा।''

ये बातें चल ही रही थीं कि एक दारोगा को नींद आने लगी। ऊपर की बर्थ पर सूटकेस लिये हुए काशीराम बैठे थे। दारोगाजी ने उनसे कहा—

''मुंशीजी, जब आप ऊपर की बर्थ पर स्वयं नहीं सो रहे तो आप मेरी जगह नीचे आ जाइए और ऊपर मुझे सो जाने दीजिए।'' आजाद ने उनकी सिफारिश करते हुए कहा—

''हाँ, मुंशीजी! आप नीचे आ जाइए और दारोगाजी के सोने के लिए ऊपर की बर्थ खाली कर दीजिए।''

काशीराम नीचे उतरे और झटके के साथ सूटकेस को भी नीचे खींच लिया। झटका खाकर वह सूटकेस खुल गया और उसमें से कुछ कारतूस नीचे गिर पड़े। स्थिति बड़ी विषम हो गई थी। आजाद ने उसे सँभालने के लिए काशीराम को पुलिस के लहजे में सुअर, बदमाश और नालायक आदि जाने कितने संबोधन करते हुए कहा—

''जाने किसने तुम्हें पुलिस की नौकरी दिला दी है! मेरा-तुम्हारा साथ नहीं निभ सकता। कानपुर पहुँचते ही मैं तुम्हें लाइन-अटेच करा दूँगा।''

जो दारोगा ऊपर की बर्थ पर सोना चाहता था, उसने आजाद को शांत करने के भाव से कहा—

''दारोगाजी! गलती इनसान से ही होती है। इन्हें माफ कर दीजिए।''

आजाद ने कुछ नरम पड़ते हुए काशीराम की तरफ देखते हुए कहा—

''अब मुँह क्या देख रहे हो! गिरी हुई सारी चीजों को समेटो और उन्हें सूटकेस में भरो। तुम तो जानते ही हो कि ये चीजें हमें गिनकर दी जाती हैं और दस्तखत लिये जाते हैं।''

काशीराम ने डरते-डरते सब कारतूस बटोरे और सूटकेस में रख दिए। अन्य दो थानेदारों ने भी उझककर उन्हें कारतूस बटोरते हुए देखा और अनदेखी कर गए।

सोचा होगा कि दारोगा के सूटकेस में से यदि कारतूस गिरे तो कोई खास बात नहीं।

काशीराम के मन के विषाद को दूर करने के लिए मथुरा स्टेशन आने पर आजाद बोले—''मुंशीजी, क्या हमें भूखों मारोगे? जाओ, कुछ पूड़ियाँ व मिठाई ले आओ और यह ध्यान रखना कि हम लोग अकेले नहीं हैं, हमारे साथ ये दारोगा साहबान और अमला भी है। सभी के लिए सामान लाना।''

यह कहते हुए उन्होंने काशीराम को दस रुपए का नोट दिया। काशीराम सामान ले आए। थोड़ा-बहुत सबने खाया-पिया। गाड़ी चल दी।

जब गाड़ी कानपुर स्टेशन पर पहुँची तो आजाद और काशीराम ने देखा कि लाइन के दोनों तरफ काफी पुलिस है। स्थिति को समझ गए। उतरने में छोड़ी देर की। एक कुली के हाथ पर एक रुपया रखा और सूटकेस किसी अच्छे ताँगे में रखने का निर्देश दिया। डिब्बे से नीचे उतरे और फाटक की तरफ बढ़ चले। फाटक पर भी एक दारोगा मौजूद था। उससे भी दुआ-सलाम हुई और फाटक पार हो गए। ताँगेवाला इंतजार कर रहा था। बैठते ही घोड़ा हवा से बातें करने लगा। अगले चौराहे पर वह ताँगा छोड़कर, कुछ आगे चलकर दूसरा ताँगा किया और अपने गंतव्य पर जा पहुँचे। गंतव्य पर पहुँचकर चैन की साँस ली और काशीराम से बोले—''तुमने गलती करके भी मेरे मुंशी होने का पार्ट बखूबी निभाया है। तुम मेरे साथ ही रहा करो।''

काशीराम के मन का सब विषाद धुल गया। कुछ दिन बाद जब काशीराम ने सुना कि भैया चंद्रशेखर आजाद इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में पुलिस के साथ युद्ध करते हुए शहीद हो गए तो उन्हें लगा जैसे जीवन अब जीने के योग्य नहीं रहा।

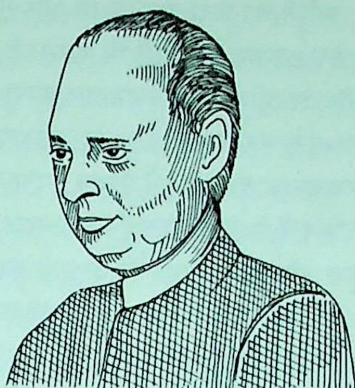
कुछ दिन पश्चात् काशीराम भी गिरफ्तार कर लिये गए और पुलिस ने उन्हें भयंकर क्रांतिकारी की संज्ञा देकर कई जेलों में घुमाया। अपने सात वर्ष के कठोर कारावास के अंतर्गत काशीराम को कानपुर, आगरा, इलाहाबाद, फैजाबाद और लखनऊ की जेलों की हवा खानी पड़ी।

□

★ किरणचंद्र दास ★ यतींद्रनाथ दास

लाहौर जेल में अनशन करते हुए भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त की हालत काफी खराब हो गई। उनके साथी क्रांतिकारियों ने मीटिंग की। मीटिंग का मुद्दा यह था कि क्या हम लोग भी साथी भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त की सहानुभूति में


यतींद्रनाथ दास


किरणचंद्र दास

अनशन प्रारंभ कर दें ? सभी लोगों में जोश था और सभी के दिलों में अपने साथियों के लिए सहानुभूति थी तथा कुछ कर गुजरने के हौसले थे। अनशन प्रारंभ कर दिया जाए, सभी ने अपनी सहमति प्रकट कर दी। एक व्यक्ति था, जिसने अभी तक 'हाँ' या 'ना' कुछ भी नहीं कहा था। वह व्यक्ति था यतींद्रनाथ दास। साथियों को उसकी इस रहस्यमय चुप्पी के कारण हैरानी थी। एक ने पूछ ही लिया—

''क्यों यतीन दा ! आपने अभी तक अपना विचार नहीं बताया है ? हम लोग तो अनशन करने का फैसला कर चुके हैं। आप अनशन प्रारंभ करेंगे या नहीं ?''

यतींद्रनाथ दास ने प्रश्नकर्ता की ओर प्रश्नवाचक दृष्टि से देखा और फिर प्रश्न किया—

''क्या आपको पहले कभी अनशन करने का अनुभव है ?''

''नहीं, कभी नहीं।''

''इसीलिए आप अनशन के लिए इतने उतावले हो रहे हैं। मैं तेईस दिन तक अनशन कर चुका हूँ और भूख तथा आत्मउत्पीड़न की वेदना से परिचित हूँ। इसीलिए मैं भावुकता में आकर कोई निर्णय नहीं लेना चाहता।''

''तो क्या इसका यह अर्थ लगाया जाए कि अनशन यज्ञ में आप हम लोगों का साथ नहीं देंगे ?''

यतींद्रनाथ दास ने प्रश्नकर्ता का हाथ अपने हाथ में लिया और उसे दबाते हुए कहा—

''मैं अनशन यज्ञ में आप लोगों का साथ अवश्य दूँगा; पर मेरे लिए अनशन का अर्थ होगा—विजय या मृत्यु। मैं बीच का रास्ता नहीं जानता। मैं जानता हूँ कि मौत से जूझने के कई तरीके हैं। बंदूक की गोली खाकर भी मौत से जूझा जा सकता

है, फाँसी का फंदा चूमकर भी और भूख हड़ताल करके भी। गोली खाकर मौत से जूझना आसान है। उससे भी आसान है फंदे पर लटक जाना। मौत से जूझने का सबसे मुश्किल तरीका है भूख हड़ताल करना। तिल-तिल करके अपने आपको खपाना और इंच-इंच करके मौत की ओर सरकना गोली खाने या फंदा चूमने से कहीं अधिक कष्टदायक होता है। मैं ऐलान करता हूँ कि भूख हड़ताल में मैं भी आपके साथ हूँ; लेकिन मैं फिर कहे देता हूँ कि अनशन का अर्थ मेरे लिए विजय या मौत के अतिरिक्त कुछ और नहीं होगा। मेरे अनशन का अर्थ समझौता नहीं होगा।''

यतींद्रनाथ दास की इस घोषणा से साथियों में उत्साह की लहर दौड़ गई। उन लोगों ने अपने निश्चय की सूचना जेल अधिकारियों को दे दी कि हम सभी लोग अनशन पर हैं।

जेल के अधिकारियों ने अनशनकारियों के मन डिगाने के यत्न किए। बढ़िया-से-बढ़िया भोजन बनवाकर और थालियाँ सजाकर कैदियों की कोठरियों में रखी जाने लगीं। स्वादिष्ट फल और केसरिया दूध भी कोठरियों में रखे जाने लगे। झुँझलाहट में क्रांतिकारी लोग खाने-पीने की वह सामग्री बाहर फेंक देते थे। एक क्रांतिकारी ऐसा भी था, जिसने कभी थाली नहीं फेंकी। वह था यतींद्रनाथ दास। जब उसकी थाली उठाई जाती तो जेलर देखता कि उसका कोई सामान छुआ तक नहीं गया। दास का अपने मन पर संयम था, इसलिए उसे थाली फेंकने की आवश्यकता नहीं पड़ी। वह अपनी परीक्षा को और कड़ी बना रहा था।

अनशन के दस दिन तक तो जेल अधिकारियों ने विभिन्न उपायों द्वारा अनशनकारियों को डिगाने का प्रयत्न किया; पर जब वे दृढ़ रहे और उनकी हालत खराब होने लगी तो शासन को चिंता होने लगी। अब इस बात के यत्न किए जाने लगे कि उनमें से कोई चल न बसे। इसके लिए बलात्पान की योजना बनाई गई।

पागलों के अस्पताल से आया हुआ एक डॉक्टर बलात्पान विशेषज्ञ माना जाता था। उसने जघन्य अपराधों के कुछ मुस्टंडे कैदियों को अपने साथ लिया और एक-एक अनशनकारी को जमीन पर पटककर, उसके गले या नाक में रबर की नली घुसेड़कर उसके सहारे दूध उड़ेला जाने लगा। कुछ लोगों के पेट में इस प्रकार दूध पहुँचाकर वह दल यतींद्रनाथ दास की कोठरी में पहुँच गया।

यतींद्रनाथ ने भरसक प्रयत्न किया कि उसे जमीन पर न गिराया जा सके। इसके लिए उसने संघर्ष किया। दस आदमियों ने मिलकर उसे जमीन पर पटक ही लिया। दो-दो मुस्टंडे उसके पैर दबाकर उनपर बैठ गए। दो-दो मुस्टंडों ने उसके हाथ पकड़ लिये। एक मुस्टंडे ने उसका सिर अपने घुटनों के बीच दबा लिया। डॉक्टर उसकी छाती पर बैठ गया। यतींद्रनाथ दास ने अपने दाँत कसकर भींच

लिये। डॉक्टर ने रबर की नली बड़ी निर्दयता से उसकी नाक के एक नथुने में घुसेड़ दी। नली हलक तक पहुँच गई। यतींद्रनाथ ने जोर से खाँसा और हवा के दबाव से नली मुँह में आ गई। यतींद्रनाथ ने नली दाँतों से दबा ली। डॉक्टर ने दूसरी नली नाक के दूसरे नथुने में घुसेड़ दी। वह नली साँस लेने की नली में उतर गई। डॉक्टर ने कीप लगाकर दूध उड़ेल दिया। वह दूध पेट में न जाकर उसके फेफड़ों में चला गया। यतींद्रनाथ की आँखें फिर गईं और वह इस तरह तड़पने लगा जैसे पानी के बाहर मछली तड़पती है। डॉक्टर उसे उसी हालत में छोड़कर चला गया।

यतींद्रनाथ दास की हालत बहुत अधिक बिगड़ गई तो अन्य अनशनकारियों ने हो-हल्ला मचाया। सुबह डॉक्टरों का एक दल परीक्षण करने पहुँचा। उसकी दशा देखकर उन सभी के होश गुम हो गए। उसे गंभीर निमोनिया हो गया था। जेल अधिकारियों ने तार देकर यतींद्रनाथ दास के छोटे भाई किरणचंद्र दास को बुलवाया और उनसे कहा कि आप अपने भाई की तीमारदारी के लिए इनके कमरे में रह सकते हैं। उस समय तक यतींद्रनाथ दास को अस्पताल के एक कमरे में रख दिया गया था। किरणचंद्र दास ने जेल अधिकारियों के सामने अपनी कुछ शर्तें रख दीं। वे थीं—

''मुझे कैदियों जैसी पाबंदी में नहीं रखा जाए। हर समय मुझे बाहर जाने-आने की अनुमति रहे। आते-जाते समय मेरी तलाशी न ली जाए।''

जेल अधिकारियों को उसकी सभी शर्तें मानने के लिए झुकना पड़ा। अब यतींद्रनाथ दास ने अपने छोटे भाई किरणचंद्र दास के सम्मुख अपनी शर्तें रख दीं। उसने कहा—

''देखो किरण! तुमने इन लोगों से अपनी शर्तें मनवा लीं। मेरी भी कुछ शर्तें हैं। यदि तुम इन्हें मानोगे, तभी मैं तुम्हें अपने कमरे में रहने की अनुमति दूँगा, अन्यथा नहीं।''

अपने बड़े भाई की यह बात सुनकर किरणचंद्र दास को आश्चर्य हुआ और जेल के अधिकारियों को भी। यतींद्रनाथ दास ने कहना प्रारंभ किया—

''तुम मेरी सेवा करने के लिए नियुक्त हो रहे हो। मेरी भावनाओं के अनुसार ही तुम मेरी सेवा करोगे। तुम अपनी इच्छाएँ मुझपर नहीं लादोगे।''

''नहीं, कदापि नहीं।''

''मेरे अनशन-अनुष्ठान का लक्ष्य है विजय या मौत। तुम इसमें कहीं हस्तक्षेप नहीं करोगे। मेरी बेहोशी की हालत में डॉक्टर यदि मुझे कोई इंजेक्शन लगाना चाहे या दवा पिलाना चाहे तो तुम उसे ऐसा नहीं करने दोगे।''

ये शर्तें सुनकर किरणचंद्र दास ने कोई उत्तर नहीं दिया। यतींद्रनाथ ने फिर कहना प्रारंभ किया—

''इसका मतलब यह हुआ कि तुम मेरे संकल्प में सहायक न होकर शासन के प्रयत्नों में सहायक होना चाहते हो और तुम्हारा भाई जो ऊँचाई प्राप्त करना चाहता है, तुम उसे उससे वंचित रखना चाहते हो।''

यह बात किरणचंद्र को झकझोरने के लिए काफी थी। उसे कहना पड़ा—

''दादा! मैं आपकी शर्तें भी मानूँगा।''

यतींद्रनाथ दास ने कहा—

''तो तुम मेरे शरीर को छूकर प्रतिज्ञा करो कि दृढ़ता के साथ इन शर्तों का पालन करोगे और आजादी की लड़ाई मुझे अपने ढंग से लड़ने दोगे।''

किरणचंद्र दास ने अपने बड़े भाई के पैर छूकर प्रतिज्ञा कर ली। यतींद्रनाथ दास का मन हलका हो गया। किरणचंद्र दास का मन भारी हो गया।

धीरे-धीरे यतींद्रनाथ दास की हालत बिगड़ती चली गई। उसे मूर्च्छा आने लगी। किरणचंद्र दास निरुपाय था—वह वचनबद्ध था। वह अपने भाई की पिछली बातों को सोचने लगा। उसे याद आई वह घटना, जब उसके पिता ने उसके यतींद्र दा को घर से निकाला था। यतींद्र घर लौटा था तो पिताजी ने पूछा था—

''कहाँ से आ रहे हो?''

''कांग्रेस कार्यालय से।''

''तो क्या पिछले चार दिन कांग्रेस कार्यालय में ही रहे?''

''नहीं, मैं पिछले चार दिन जेल में रहा था।''

''जेल क्यों गए थे?''

''कानून भंग करने के कारण।''

''कानून भंग क्यों किया था?''

''कानून भंग इसलिए किया था, क्योंकि वह उन लोगों का बनाया हुआ है जो अवैध रूप से हमारे देश पर अपना अधिकार जमाए हुए हैं। अपनी मुक्ति के लिए अंग्रेजों से हमारा युद्ध चल रहा है, और इस नाते वे हमारे दुश्मन हैं। फिर हम अपने दुश्मन का कानून क्यों मानें?''

''क्या यह लड़ाई लड़ने के लिए तुम पूरी तरह से आत्मनिर्भर हो गए हो? मेरा मतलब है कि यदि मैं तुम्हें अपने घर से निकाल दूँ तो क्या तुम फिर भी अंग्रेजों से लड़ाई लड़ने की स्थिति में रहोगे?''

यतींद्रनाथ दास ने अपना निर्णायक उत्तर दिया था—

''हाँ पिताजी! मैं घर छोड़ सकता हूँ, लेकिन देश की आजादी की लड़ाई नहीं छोड़ सकता। मैं उस रास्ते पर कदम बढ़ा चुका हूँ, जहाँ से पराजित होकर नहीं लौटा जा सकता। सिपाही जीतकर ही घर लौटता है। यदि वह पराजित होता है तो

उसकी लाश ही घर लौटती है। मैं देश का सिपाही बन चुका हूँ।''

यह कहकर यतींद्रनाथ दास अपने घर से निकल गया। जब किरणचंद्र दास उसके कपड़े लेकर पहुँचा तो यतींद्रनाथ का उत्तर था—''उस घर की कोई वस्तु अब मैं उपयोग में नहीं ला सकता। अपने कपड़े भी नहीं।''

अपने मरणासन्न भाई के निकट बैठकर किरणचंद्र दास सोच रहा था—

'तो क्या देश का वह सिपाही वीरगति पाकर ही अपने घर लौटेगा?'

जब यतींद्रनाथ दास का दिल बैठने लगा तो डॉक्टरों ने सोचा कि पानी में मिलाकर दो-तीन बूँद कुरामिन दे दी जाए। यतींद्रनाथ और किरणचंद्र दोनों ही इसके लिए सहमत नहीं हुए। जेल के अधिकारियों को एक युक्ति सूझी। उन्होंने लाहौर की सेंट्रल जेल से भगतसिंह को बुलवा लिया। भगतसिंह यतींद्रनाथ की चारपाई पर पैरों की तरफ बैठ गया। यतींद्रनाथ की मूर्च्छा भंग हुई। उसकी नजरों ने प्रश्न किया—

''क्यों भगतसिंह! किसलिए आए हो?''

भगतसिंह ने पानी का गिलास अपने हाथ में लेकर यतींद्रनाथ की ओर बढ़ाते हुए कहा—''दादा! यह पानी है। इसमें ओषधि की दो-तीन बूँदें मिली हुई हैं। यदि आप यह पानी पी लें तो आपका कुछ और सान्निध्य हम लोगों को मिल जाएगा। आपकी उपस्थिति से हम लोग निर्णय ले सकेंगे कि हमारे संघर्ष का अगला कदम क्या हो?''

यतींद्रनाथ दास ने देखा और बुझते हुए चेहरे पर मुसकान की किरण खेल गई। भगतसिंह के हाथ से पानी का गिलास लेकर पी लिया। सब लोगों के मन तृप्त हो गए। किरणचंद्र दास ने कृतज्ञता के भावों से भगतसिंह की ओर देखा। वे भाव कह रहे थे—'दादा! आपने मुझे संकट से बचा लिया। मेरी प्रतिज्ञा भंग नहीं हुई और वह हो गया, जो एक भाई की ममता चाह रही थी।'

जेलर ने यतींद्रनाथ दास से पूछा—''आपने सभी के आग्रह ठुकरा दिए, पर भगतसिंह का कहना क्यों मान लिया?''

यतींद्रनाथ दास का संक्षिप्त उत्तर था—''श्रीमान! आप नहीं जानते कि भगतसिंह कितना महान् है!''

कुछ दिन के लिए यतींद्रनाथ दास को जीवन और मिल गया। आखिर उसकी रही-सही जीवन-शक्ति भी समाप्तप्राय हो गई। महाप्रयाण के पूर्व का दिन था। उसकी चेतना कुछ लौट आई थी। बुझते हुए दीपक की लौ कुछ प्रदीप्त हो उठी थी। कुछ कहने के लिए उसके होंठ हिले। बैरक के सभी अनशनकारी साथी उसकी चारपाई के आसपास खड़े हो गए। जेल के अधिकारियों ने सेंट्रल जेल से

'भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त को भी बुला लिया था। किरणचंद्र दास बिलकुल पास ही खड़े थे। काँपते हुए होंठों से यतींद्रनाथ ने कहा—''किरण! तुम अपने बिस्कुट का पैकेट लाओ। एक-एक सभी को दो। एक बिस्कुट मुझको भी दो।''

साथी लोग हैरानी के साथ यतींद्रनाथ की ओर देख रहे थे। उनकी आँखों में प्रश्न था—'क्या आप अनशन तोड़ रहे हैं, और क्या हम लोगों को भी अनशन तोड़ने का आदेश दे रहे हैं?'

यतींद्रनाथ दास साथियों के मौन प्रश्न की भाषा समझ गए। नपे-तुले शब्दों में उन्होंने कहा—''हम लोग अनशन नहीं तोड़ रहे। यह मेरे साथ आप लोगों का अंतिम सहभोज है—मेरे प्यार का प्रतीक।''

प्रत्येक साथी ने अपना-अपना बिस्कुट खा लिया। सभी की आँखों में आगरा प्रवास के वे दिन घूम गए, जब यतींद्रनाथ दास उन्हें बम बनाना सिखाते थे। जब वे लोग सहभोज के लिए बैठते थे तो यतींद्र दा अपने लिए परोसे गए भाग में से प्रत्येक साथी को कुछ-न-कुछ अवश्य दे देते थे। यतींद्र दा के स्नेह से सने हुए वे दिन सभी को याद आ गए। इस समय वे अपने बिदा लेते हुए साथी के अंतिम सहभोज में सम्मिलित थे। उस समय उनके दिलों में उमंग और उत्साह का ज्वार हुआ करता था। इस समय उन सभी के दिल डूब रहे थे।

वह १३ सितंबर, १९२९ का प्रात:काल था। यतींद्रनाथ दास को हिचकियाँ आने लगीं। साथी लोग उनके इर्द-गिर्द जमा हो गए। यतींद्रनाथ दास ने धीरे से कहा—''गाना।''

विजयकुमार सिन्हा ने बड़ी तन्मयता के साथ रवींद्र बाबू का गीत 'एकला चालो रे!' गाया। काजी नजरुल इस्लाम के कुछ गीत गाए गए। सबसे अंत में 'वंदेमातरम्' गीत गाया गया। ज्यों ही यह गीत समाप्त हुआ, यतींद्रनाथ ने अपने अनुज किरणचंद्र की ओर देखा। किरणचंद्र अपने बड़े भाई का आशय समझ गए। किरणचंद्र दास ने चारपाई पर बैठकर अपने बड़े भाई का मस्तक अपनी गोद में ले लिया। ठीक उसी समय यतींद्रनाथ दास को एक जोरदार आखिरी हिचकी आई और फिर सभी कुछ शांत हो गया।

अजय घोष ने जोरदार नारा लगाया—''इनकलाब जिंदाबाद!''

सभी साथियों ने भी पूरी शक्ति के साथ कई बार 'इनकलाब जिंदाबाद' के नारें लगाए।

एक दधीचि ने देश की आजादी के लिए अपनी अस्थियों का दान कर दिया।



★ किशोरीलाल ★ गिरवरसिंह ★ भागीरथ ★ विमलप्रसाद जैन ★ श्रीमती विमलप्रसाद जैन ★ मास्टर हरकेश ★ हरद्वारीलाल

दिल्ली के झंडेवालान बाजार में एक दुमंजिले मकान पर एक बोर्ड लटका हुआ था, जिसपर लिखा था—'हिमालयन टायलेट्स'।

स्वाभाविक ही था कि जो कोई उस बोर्ड को पढ़ता, वह यह अनुमान सहज ही लगा सकता था कि वहाँ प्रसाधन सामग्री का निर्माण होता होगा। बात सही भी थी। प्रसाधन सामग्री के उस कारखाने में दिन में साबुन, तेल और क्रीम बनाए जाते थे। वस्तुओं के नाम भी साहित्यिक रखे गए थे। तेल का नाम था 'वसंत पराग हेयर ऑयल'।

प्रसाधन के इस कारखाने में रात को बमों में भरने का मसाला तैयार किया जाता था। बम के मसाले में पिकरिक एसिड, गन-कॉटन तथा नाइट्रो ग्लिसरीन वस्तुएँ काफी मात्रा में तैयार की जाती थीं। एक समय वहाँ चालीस पौंड बम का मसाला तैयार हो चुका था। इस मसाले को भरने के लिए बम के खोल कानपुर में बनते थे। चंद्रशेखर आजाद घूम-फिरकर बम के कारखानों का निरीक्षण करते रहते थे। वैसे उन्होंने कानपुर की बम फैक्टरी का प्रभारी वीरभद्र तिवारी को और दिल्ली की बम फैक्टरी का प्रभारी कैलाशपति को बनाया था। कैलाशपति ने भी सारा काम श्री विमलप्रसाद जैन और उनकी पत्नी पर छोड़ रखा था। इस कारखाने में नौकर के रूप में साथी गिरवरसिंह को रखा गया था। पूरे समय काम करनेवालों में इनके अतिरिक्त किशोरीलाल, हरद्वारीलाल, मास्टर हरकेश और भागीरथ थे। समय-समय पर भवानी सहाय, भवानीसिंह, प्रो. निगम और मास्टर छैलबिहारी भी काम सँभालते थे। कुछ समय के लिए पंजाब से सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन भी आ गए थे। दुर्गा भाभी और सुशीला दीदी भी दिल्ली में अन्यत्र रह रही थीं; पर बम के कारखाने के संचालन में वे भी हाथ बँटा रही थीं। इन सबके प्रयत्नों से दिल्ली की बम फैक्टरी बहुत अच्छी तरह से चल रही थी।

दिल्ली की बम फैक्टरी पर वज्रपात उस समय हुआ, जब पुलिस ने कैलाशपति को गिरफ्तार कर लिया और वह पुलिस का मुखबिर बन गया।

कैलाशपति गोरखपुर में डाकखाने में एक बाबू था। उसका संपर्क क्रांतिकारियों से हो चुका था। एक दिन वह मनीऑर्डर आदि की लगभग आठ हजार रुपए की

संपत्ति पोस्ट ऑफिस से लेकर फरार हो गया। उसने अपने पिता को खर्च के लिए पाँच सौ रुपए भेज दिए और शेष रकम चंद्रशेखर आजाद के सामने रख दी। उस पैसे से दिल्ली की बम फैक्टरी चालू की गई और उसकी निगरानी का भार कैलाशपति को ही सौंपा गया। पार्टी में कैलाशपति का नाम शीतलप्रसाद था।

कुछ दिन तक तो कैलाशपति अच्छा काम करता रहा; पर धीरे-धीरे वह विलासिता की राह पर चलने लगा और अपने ही एक मित्र की पत्नी को उसने हथिया लिया। पकड़े जाने पर वह पुलिस का मुखबिर इसीलिए बन गया, क्योंकि पुलिस ने उसे आश्वासन दिया कि मुखबिर बन जाने पर वह मुक्त हो जाएगा और अपनी प्रेमिका के साथ रह सकेगा। पुलिस का मुखबिर बन जाने पर उसने क्रांतिकारियों के सारे भेद पुलिस को दे दिए। उसके द्वारा दी गई जानकारी के आधार पर व्यापक गिरफ्तारियाँ हुईं। विमलप्रसाद जैन मेरठ में सिनेमा देखते हुए पकड़े गए।

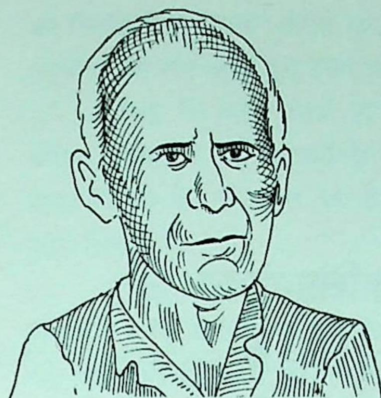
गिरफ्तार क्रांतिकारियों पर 'दिल्ली षड्यंत्र केस' नाम से मुकदमा चला। लगभग डेढ़ वर्ष तक मुकदमा चलता रहा। अंत में वह मुकदमा वापस ले लिया गया। पुलिस ने खीजकर कुछ क्रांतिकारियों को दूसरे मामलों में फाँसकर सजाएँ दिलवा दीं। किशोरीलाल को आजीवन कारावास का दंड मिला।

□

★ कुंदनलाल ★ ज्वालाप्रसाद ★ रामचंद्र नरहरि वापट ★ रामजीलाल ★ रुद्रदत्त मिश्र

काकोरी के निकट ट्रेन रोककर क्रांतिकारियों ने अंग्रेजी खजाना लूट तो लिया, पर वे लोग अपने आपको गिरफ्तारी से बचाकर न रख सके। लगभग सभी लोग गिरफ्तार हो गए। जो गिरफ्तार नहीं हुए, वे थे चंद्रशेखर आजाद और कुंदनलाल।

गिरफ्तारी से बचकर कुंदनलाल ने अपना कार्यक्षेत्र कानपुर के आसपास रखा। उन्हें मालूम था कि चंद्रशेखर आजाद का कार्यक्षेत्र झाँसी है। कानपुर के क्रांतिकारी यह अनुभव कर रहे थे कि किसी योग्य व्यक्ति के नेतृत्व में क्रांतिकारियों को अपना दल पुनर्गठित करना चाहिए। उस समय कुंदनलाल की गणना वरिष्ठ क्रांतिकारियों में थी, इसलिए नेतृत्व के लिए उनसे ही निवेदन किया गया। कुंदनलाल का प्रस्ताव था कि नेतृत्व चंद्रशेखर आजाद को दिया जाना चाहिए। समस्या थी



कुंदनलाल

चंद्रशेखर आजाद को खोजने की।

कुंदनलाल झाँसी गए और काफी परिश्रम करके उन्होंने चंद्रशेखर आजाद को खोज निकाला। आजाद ने कानपुर पहुँचना स्वीकार कर लिया और एक दिन वे कुंदनलाल के साथ कानपुर पहुँच भी गए।

क्रांतिकारियों ने यह अनुभव किया कि उनका एक अखिल भारतीय संगठन होना चाहिए। शीघ्र ही दिल्ली के फिरोजशाह कोटला किले के खंडहरों में भारतवर्ष के चुने हुए क्रांतिकारियों की एक मीटिंग हुई और उसमें क्रांतिकारियों की एक केंद्रीय समिति का निर्माण कर लिया गया। कुंदनलाल को केंद्रीय समिति का सदस्य तो बनाया ही गया, साथ ही उनको शस्त्रागार का प्रभारी भी बनाया गया। कुंदनलाल स्वयं उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ के रहनेवाले थे; पर राजस्थान में काम करने के कारण वे राजस्थान के प्रसिद्ध हो गए।

कुंदनलाल ने राजस्थान में क्रांतिकारियों का बहुत अच्छा संगठन तैयार कर लिया। उन्होंने जयपुर में वैद्य मुक्तिनारायण ३ु क्ल और अजमेर में रुद्रदत्त मिश्र, रामचंद्र नरहरि वापट, ज्वालाप्रसाद एवं रामजीलाल को दल का सदस्य बनाया। रुद्रदत्त मिश्र वैद्य थे और उन्होंने बम बनाने की सामग्री दिल्ली केंद्र को भेजने में बहुत सहयोग दिया। रामचंद्र नरहरि वापट, ज्वालाप्रसाद और रामजीलाल का संपर्क रियासतों से था और वे हथियार जुटाने में आजाद को सहयोग दे रहे थे। रुद्रदत्त मिश्र ने क्रांतिकारियों को प्रश्रय देने का भी बहुत अच्छा काम किया। चंद्रशेखर आजाद स्वयं कभी-कभी अजमेर और जयपुर चक्कर लगा आया करते थे।

दिल्ली केंद्र के संरक्षक कैलाशपति की गिरफ्तारी और उसके मुखबिर बन जाने के कारण क्रांतिकारी आंदोलन को बहुत धक्का लगा। उसकी सूचनाओं से बहुत से क्रांतिकारी पकड़े गए। उत्तर प्रदेश से कुंदनलाल को भी गिरफ्तार कर लिया गया। उन्हें सात वर्ष के कठोर कारावास का दंड मिला।

□



★ राजा खलकसिंह जूदेव


राजा खलकसिंह जूदेव

झाँसी रेलवे स्टेशन से कुछ दूर बसई रेलवे स्टेशन के समीप एक वृद्ध संन्यासी अपनी कुटिया में रह रहे थे। सफेद केश तथा घनी धवल दाढ़ी के कारण संन्यासी का चेहरा भव्य और प्रभावशाली लगता था। उसके सुडौल शरीर पर गेरुए वस्त्र खूब फबते थे। एक दिन किसी दूसरे नगर से पहुँचा हुआ कोई दर्शनार्थी भक्त संन्यासी की सेवा में उपस्थित हुआ। प्रणाम-निवेदन के पश्चात् उसने संन्यासी से वार्त्तालाप प्रारंभ किया। उसका पहला प्रश्न था—

''महाराज! आप किसी समय खनियाधाना राज्य के अधिष्ठाता थे, यह बात मुझे मालूम है। मैं जानना चाहता हूँ कि अपना राज-पाट छोड़कर आपने यह बाना क्यों धारण किया.है?''

संन्यासी का उत्तर था—

''यह बाना तो मैंने स्वेच्छा से धारण किया है, लेकिन राज-पाट का त्याग मैंने स्वेच्छा से नहीं किया। ब्रिटिश हुकूमत ने मेरा राज्य छीन लिया। मुझे यह अच्छा नहीं लगा कि मैं वहाँ एक सामान्य नागरिक की भाँति रहता। कुछ त्याग मैंने स्वेच्छा से किया और यहाँ आकर इस प्रकार रहने लगा हूँ।''

''महाराज, क्या आप यह बताने की कृपा करेंगे कि आपका राज्य ब्रिटिश शासन ने क्यों छीना?''

यह प्रश्न सुनकर संन्यासी कुछ देर के लिए मौन हो गया। वह असमंजस

की स्थिति में पड़ गया। उससे कुछ भी उत्तर देते नहीं बन रहा था। कुछ देर के पश्चात् मौन भंग करते हुए उसने कहा—

''यह तो आप जानते ही हैं कि अपनी 'हड़प नीति' के अंतर्गत ही अंग्रेज सरकार ने कई राजाओं के राज्य हड़पे हैं। कोई-न-कोई लांछन वे लोग लगा ही देते थे। मेरे ऊपर भी उन्होंने कोई अस्पष्ट लांछन लगाकर मेरा राज्य छीन लिया।''

''मुझे लगता है, महाराज, कि आप जानबूझकर वह कारण नहीं बता रहे। मैंने सुना है कि आपने प्रसिद्ध क्रांतिकारी चंद्रशेखर आजाद को प्रश्रय दिया था और यह बात ब्रिटिश सरकार को मालूम हो गई थी तथा उसी कारण आपको राज्यच्युत किया गया।''

चंद्रशेखर आजाद का नाम सुनकर संन्यासी अतीत के धुँधलके में खो गया। उसकी आँखें छलछला आईं और उसने दीर्घ प्रश्वास छोड़ते हुए कहना प्रारंभ किया—

''उस महापुरुष की याद आपने दिला दी है। शायद वे मेरे राज्य के छिन जाने के कारण रहे हैं; पर मैं उनपर कोई दोषारोपण करना नहीं चाहता। उन्होंने तो मुझे महानता प्रदान की है। उनका पुण्य स्मरण आज भी मुझे पुलकित कर देता है। वे स्थायी रूप से तो मेरे यहाँ नहीं रहे। कभी-कभी आते-जाते रहते थे।''

''मैं यह जानने को उत्सुक हूँ कि आपका और चंद्रशेखर आजाद का परिचय किस प्रकार हुआ?''

अतीत की घटनाओं का सूत्र पकड़ते हुए संन्यासी ने कहना प्रारंभ किया—

''उन दिनों चंद्रशेखर आजाद झाँसी की 'बुंदेलखंड मोटर कंपनी' में मैकेनिक का काम कर रहे थे। उन्होंने अपना नाम हरीशंकर घोषित कर रखा था। एक दिन मेरी गाड़ी में कुछ खराबी आ गई और उसे लेकर मैं वहाँ पहुँचा। कारखाने के उस्ताद सिराजुद्दीन ने गाड़ी ठीक करने की जिम्मेदारी हरीशंकर को दी। उन्होंने गाड़ी ठीक कर दी; लेकिन कहा कि इसका अमुक पुरजा बदलना पड़ेगा और इस समय वह हमारे पास नहीं है। उन्होंने कहा कि गाड़ी को आप चलाकर ले जा सकेंगे, लेकिन हो सकता है कि रास्ते में यह आपको थोड़ा-बहुत परेशान करे।

''हम लोगों की बातें सुनकर उस्ताद सिराजुद्दीन ने कहा—'बेटे हरीशंकर! तुम राजा साहब के साथ चले जाओ। अगर रास्ते में गाड़ी तंग करे तो देख लेना। अगर गाड़ी रास्ते में अड़कर रह गई तो राजा साहब को परेशानी होगी।'

''उस्ताद का प्रस्ताव मुझे बहुत अच्छा लगा। मैंने हरीशंकर को अपने साथ ले लिया। गाड़ी वही चला रहा था। रास्ते में लघुशंका निवारण के लिए मैं एक

झाड़ी की तरफ बढ़ा तो उस झाड़ी में से भयंकर नाग निकला और अपना फन काढ़ करके वह मुझपर फुफकारने लगा। हरीशंकर नामधारी चंद्रशेखर आजाद ने भी उसे देख लिया और तुरंत ही अपनी माउजर पिस्तौल निकालकर मुझे बचाते हुए ऐसी गोली छोड़ी, जो नाग के फैले हुए फन में लगी और वह वहीं ढेर हो गया। कुछ देर बाद जब मैं प्रकृतिस्थ हुआ तो मैंने उससे पूछा कि 'क्या तुम अपने पास हमेशा पिस्टल रखते हो?' तो उसका उत्तर था—'हाँ, राजा साहब, मैं अपने पास हमेशा ही यह माउजर रखता हूँ। देखिए आज इसकी जरूरत पड़ ही गई।'

''हरीशंकर ने बात टालने की बहुत कोशिश की, लेकिन मैं उसका रहस्य जानने को उत्सुक हो गया। मैंने उससे कहा कि मुझे तुम मामूली मैकेनिक नहीं लगते, तुम कुछ और ही हो। मैंने उसे आश्वासन दिया कि मेरी तरफ से तुम्हें कोई भय नहीं है। तुम अपना दिल मेरे सामने खोलकर रख सकते हो। मेरी ओर से आश्वस्त होकर उसने अपना रहस्य मेरे सामने प्रकट कर दिया। तब मुझे मालूम पड़ा कि वह प्रसिद्ध काकोरी कांड का एक नायक महान् क्रांतिकारी चंद्रशेखर आजाद है। उस दिन से वह मेरी श्रद्धा का पात्र हो गया। वह अकसर खनियाधाना आता रहता था। कभी-कभी वह अपने साथियों को भी लाता था। हम लोग जंगल में निकल जाते थे और वह अपने साथियों को अपने माउजर तथा मेरी बंदूक से निशानेबाजी सिखाया करता था।''

संन्यासी की बात सुनकर दर्शनार्थी भक्त ने कहा—

''यह तो स्पष्ट ही है कि आप उस मैकेनिक को प्रश्रय देते थे और उसका आदर भी करते थे। क्या आपका यह व्यवहार आपके आसपास के लोगों को आपत्तिजनक नहीं लगता था?''

इसके उत्तर में संन्यासी ने कहना प्रारंभ किया—

''निश्चित रूप से मेरे सभासद् मेरे इस व्यवहार से नाराज थे। वे पं. हरीशंकर से ईर्ष्या भी करने लगे थे और एक बार उनको नीचा दिखाने के लिए उनके निशाने की परीक्षा लेने का आयोजन भी उन्होंने किया था। उन्होंने झाड़ी में एक सूखा अनार फल खोंस दिया और पं. हरीशंकर के हाथ में राइफल देकर उसपर निशाना साधने के लिए उन्होंने कहा। मैं जानता था कि पंडितजी का निशाना अचूक होता है और वे लक्ष्यवेध अवश्य कर देंगे; लेकिन मैं उन्हें परीक्षा से बचाना चाहता था। मैंने उनके एक शिष्य भगवानदास माहौर को इशारा किया और उन्होंने वह राइफल आग्रहपूर्वक पंडितजी के हाथों से ले ली। मैंने भी कह दिया कि आज पंडितजी के शिष्य की ही परीक्षा होनी चाहिए। भगवानदास माहौर ने गोली छोड़ी और वह अनार फल उड़ा दिया। इस प्रकार पंडितजी की परीक्षा की बात टल गई।''

''महाराज, मैं आपसे आखिरी प्रश्न कर रहा हूँ और वह यह कि ब्रिटिश सरकार को यह संदेह किस प्रकार हुआ कि आप क्रांतिकारियों को प्रश्रय देते हैं और क्या आपने स्वयं आजाद को अपने यहाँ आने से मना किया?''

''मैं समझता हूँ, मेरे किसी ईर्ष्यालु सभासद् ने ही सरकार से चुगली की होगी। आजाद की नजरों से कोई स्थिति बचकर नहीं रह सकती थी। वे भी उस ईर्ष्यालु सभासद् को ताड़ गए होंगे। कोई कांड खड़ा करने की अपेक्षा उन्होंने यही उचित समझा कि मेरे यहाँ आना-जाना ही बंद कर दिया जाए। कुछ दिन बाद तो मुझे मालूम पड़ा कि उन्होंने झाँसी ही छोड़ दिया। उसके बाद मैं उनके दर्शन नहीं कर सका। कुछ दिन बाद सुनने को मिला कि वह महावीर पुलिस के साथ युद्ध करते हुए देश और धरती के लिए अपना बलिदान दे गया। मेरे जीवन में यदि गर्व करने योग्य कोई बात है तो यही कि मैंने कुछ दिन उस महापुरुष का सान्निध्य प्राप्त किया है।''

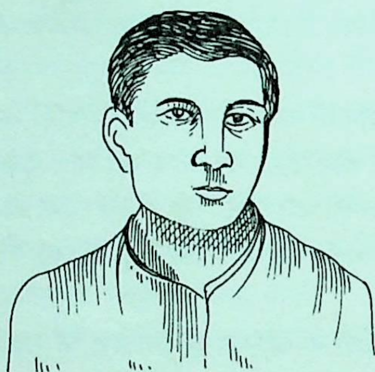
ट्रेन आने का समय हो गया था। दर्शनार्थी भक्त उठा, उसने संन्यासी के चरणों का स्पर्श किया और स्टेशन की तरफ चल दिया। वह सोच रहा था—कुछ वे राजा होते हैं, जो सुख-वैभव में डूबकर देश की बात कभी नहीं सोचते। एक यह राजा है, जो एक देशभक्त की याद को अपने जीवन की सर्वाधिक अमूल्य वस्तु की भाँति सँजोए हुए है।

यह घटना मध्य प्रदेश के शिवपुरी जिले के अंतर्गत खनियाधाना के राजा खलकसिंह जूदेव की जीवन घटना है।

□



★ गजानन सदाशिव पोत्दार ★ दंडपाणि तैलंग


गजानन सदाशिव पोत्दार

चंद्रशेखर आजाद ने अपने क्रांतिकारी साथी भगवानदास माहौर को समझाते हुए कहा—

"तुमने झाँसी में मैट्रिक पास कर लिया है। वैसे तो जरूरी नहीं था, लेकिन पार्टी के काम को देखते हुए तुम्हें ग्वालियर जाकर कॉलेज में भरती हो जाना चाहिए। जब तुम ग्वालियर पहुँच जाओगे तो मैं भी कभी-कभी तुम्हारे पास आ जाया करूँगा। हम लोग वहाँ अपनी पार्टी में भरती के लिए योग्य लड़कों की तलाश कर लेंगे और उन लोगों की मार्फत हमको हथियार भी मिल सकेंगे।"

आजाद का परामर्श मानकर भगवानदास माहौर आगे की पढ़ाई के लिए ग्वालियर चले गए। उन दिनों झाँसी में कॉलेज नहीं था। ग्वालियर पहुँचकर भगवानदास माहौर विक्टोरिया कॉलेज के छात्र बन गए और कॉलेज प्रांगण से ही लगा हुआ जो होस्टल था, उसमें रहने लगे। भगवानदास को कॉलेज में पढ़नेवाले दो छात्र बहुत जँचे और उन्होंने आजाद को उन दोनों से मिला दिया। इस तरह गजानन सदाशिव पोत्दार और दंडपाणि तैलंग क्रांतिकारी पार्टी के सदस्य बन गए। अब झाँसी से कभी-कभी चंद्रशेखर आजाद, विश्वनाथ वैशंपायन तथा सदाशिवराव मलकापुरकर ग्वालियर पहुँच जाते और अपने साथियों से विचार-विमर्श कर आते थे।

चंद्रशेखर आजाद ने अपना नाम हरीशंकर घोषित कर रखा था और वे अपने

साथी भगवानदास माहौर के साथ विक्टोरिया कॉलेज होस्टल में ठहरा करते थे।

एक दिन चंद्रशेखर आजाद, विश्वनाथ वैशंपायन और सदाशिवराव मलकापुरकर ग्वालियर पहुँचे। कॉलेज होस्टल में गजानन सदाशिव पोत्दार और दंडपाणि तैलंग भी रहते थे। कॉलेज से ही लगा हुआ एक मोहल्ला था, जिसका नाम चंद्रबदनी का नाका था। नाके के पास ही हलवाई की एक दुकान थी। उस हलवाई की दुकान पर गजानन सदाशिव पोत्दार का खाता था। वैसे वह स्वयं तो शाम को वहाँ दूध पीता था, पर कभी-कभी जब क्रांतिकारी साथी पहुँच जाते थे तो वह उन्हें हलवाई की दुकान पर ले जाकर सब्जी-पूड़ी की दावत दे देता था।

उस दिन जब झाँसी की पार्टी वहाँ पहुँची तो पोत्दार उन्हें हलवाई की दुकान पर ले गया और शाम को भोजन वहीं कराया। लौटकर सभी लोग होस्टल के सामने चारपाइयाँ डालकर लेट गए। इतने विशिष्ट मेहमानों को देखकर होस्टल के लड़कों को शरारत सूझी कि रात को उन्हें भूतलीला करके डराया जाए। लड़कों ने भगवानदास माहौर को भूत-योजना में सम्मिलित कर लिया। यह अच्छा ही रहा। भगवानदास माहौर ने यह विचार करके कि रात की हड़बड़ाहट में कहीं आजाद किसी भूत पर गोली न दाग दें, उनकी पिस्तौल अपनी संदूक में रखवाकर चाबी उन्हींको दे दी।

चारपाई पर लेटे हुए सभी लोगों की नींद लग गई। इतने में ही 'भूत-भूत' का शोर हुआ। शोर सुनकर लगभग सभी लोग जग पड़े। कुछ लोग घबराहट और कुछ हैरानी का प्रदर्शन कर रहे थे। आजाद भी उठ बैठे और स्थिति का अध्ययन करके कहने लगे कि भूत जैसी कोई चीज नहीं है, मोहल्ले में रहनेवाले कुछ उचक्के लोग शरारत कर रहे होंगे। लड़कों ने उन्हें समझाया कि वे सचमुच में भूत ही हैं और कभी-कभी बड़ा उत्पात करते हैं। आजाद ने कहा—

"आज मैं आप लोगों को भूतलीला से हमेशा के लिए मुक्त किए देता हूँ।"

इतना कहकर आजाद उठे। उन्होंने अपना कोट पहना और कोट की जेबों में पत्थर भरकर उस तरफ बढ़े, जिधर भूत लोग उपद्रव कर रहे थे। पहले वे उस वृक्ष की तरफ गए, जिसपर कुछ लपटें कभी उठतीं, कभी तेज हो जातीं और कभी बुझ जाती थीं। आजाद ने दो-तीन पत्थर उन लपटों की तरफ दे मारे। उनके पत्थर मारने का परिणाम यह हुआ कि लपटें पैदा करने की रासायनिक सामग्री धरती पर आ गिरी और लपटें पैदा करनेवाले भूत अपनी जान बचाकर वृक्ष से कूद-कूदकर भाग खड़े हुए। उसके बाद आजाद उस छत की तरफ बढ़े, जिसपर डोरी के सहारे एक नर-कंकाल घूम रहा था। आजाद ने नर-कंकाल को

निशाना बनाकर एक पत्थर दे मारा। वह पत्थर नर-कंकाल की पसलियों में लगा और कुछ हड्डियाँ टूट गईं। उस छत के भूत भी कूद-कूदकर भाग खड़े हुए। अब आजाद मुड़े पानी की उस टंकी की तरफ, जिसपर से कुछ विचित्र आवाजें आ रही थीं। उसपर भी उन्होंने पत्थरों का संधान किया। उसपर बैठे हुए भूत वहीं पर दुबक गए। आजाद उस सीढ़ी की तरफ खड़े हो गए, जिसपर से टंकी पर चढ़ा या उतरा जाता था। टंकी पर चढ़े भूतों की खैर नहीं थी। उतरते हुए या तो वे पत्थरों के निशाने बनते या पैर फिसलने के कारण नीचे गिरते। उन भूतों के सहायक लड़के दौड़ पड़े और आजाद से प्रार्थना की—

''पंडितजी, उधर पत्थर मत मारिए, वे भूत नहीं, अपने ही साथी हैं।''

पंडितजी ने पत्थर फेंकना बंद किया और उन भूतों को आश्वासन देकर उतारा गया। सब लड़कों ने घेरकर हरीशंकर नामधारी पंडितजी की तारीफों के पुल बाँध दिए। उस दिन से भगवानदास माहौर, गजानन सदाशिव पोत्दार और दंडपाणि तैलंग की इज्जत उन लड़कों में बढ़ गई।

गजानन सदाशिव पोत्दार ने जब अनुभव किया कि भगतसिंह, शिव वर्मा, विजयकुमार सिन्हा और बटुकेश्वर दत्त आदि क्रांतिकारी साथी भी ग्वालियर पहुँचने लगे हैं तो उन्होंने होस्टल छोड़ देना ठीक समझा। उन्होंने और भगवानदास माहौर ने मिलकर चंद्रबदनी का नाका मोहल्ले में एक मकान किराए पर ले लिया। साथी क्रांतिकारियों का वहाँ आगमन अधिक बढ़ गया। पोत्दार के खाते में हलवाई की रकम भी बहुत बढ़ गई। उस हलवाई को भी शक हुआ कि ये कौन लोग हैं, जो कभी आते और कभी चले जाते हैं और अपने मित्र के खाते में ही खाना खाया करते हैं। उसे पता भी चल गया कि वे क्रांतिकारी लोग हैं। क्रांतिकारियों के प्रति उसे श्रद्धा थी। उसने एक दिन गजानन सदाशिव पोत्दार से कहा—

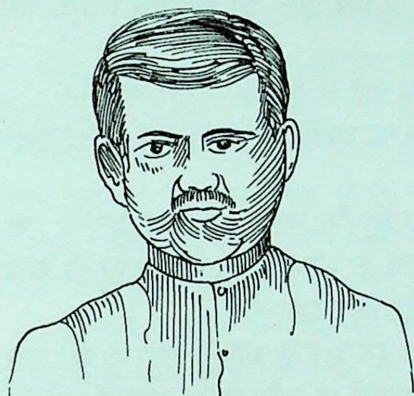
''यद्यपि मेरे यहाँ आपके खाते में रकम बहुत अधिक बढ़ गई है, पर आप इसकी तनिक भी चिंता मत करना और अपने साथियों को खाना खिलाना बंद मत करना। यदि आप पैसे न चुका सकें, तो भी कोई बात नहीं।''

कुछ दिन बाद वह मक़ान छोटा पड़ने लगा। गजानन सदाशिव पोत्दार ने तब जनकगंज मोहल्ले में एक बहुत बड़ा भुतहा मकान केवल तीन रुपए माहवार पर किराए पर ले लिया। उस मकान में आजाद ने बम बनाने का एक बड़ा कारखाना खोल दिया। कुछ दिन पश्चात् जब क्रांतिकारी गतिविधियों का केंद्र लाहौर बन गया तो सब लोगों ने ग्वालियर छोड़ दिया। गजानन सदाशिव पोत्दार कानपुर चले गए और दंडपाणि तैलंग बंबई चले गए। वे लोग फरारी का जीवन बिता रहे थे और पुलिस उनके पीछे-पीछे हथकड़ियाँ लेकर घूम रही थी। आखिर

वे लोग पकड़ लिये गए। पुलिस ने गजानन सदाशिव पोत्दार और दंडपाणि तैलंग को बहुत यातनाएँ दीं; पर उन्होंने कुछ भी बताने से इनकार कर दिया। उन लोगों पर कोई मामला सिद्ध नहीं हो सका और वे लोग छोड़ दिए गए। वे जितने दिन हवालात में रहे और वहाँ जो यातनाएँ सहीं, वे अनुभव कम न थे।

□

★ गणेश रघुनाथ वैशंपायन
★ दुर्गा देवी बोहरा (दुर्गा भाभी)



गणेश रघुनाथ वैशंपायन



दुर्गा देवी बोहरा (दुर्गा भाभी)

दुर्गा देवी के पति भगवतीचरण बोहरा बम बनाने का प्रशिक्षण लेने के लिए कलकत्ता चले गए थे। लाहौर के अपने मकान में दुर्गा देवी अकेली ही थीं। उनका तीन वर्षीय पुत्र शचींद्र उनके पास था। रात्रि के आठ बजे होंगे। एक अध्यापकजी दुर्गा देवी को संस्कृत पढ़ा रहे थे। उसी समय क्रांतिकारी सुखदेव दुर्गा देवी के घर पहुँचा। उसके आगमन के उद्देश्य को समझने के लिए उन्होंने पढ़ाई समाप्त कर दी और अध्यापकजी को बिदा कर दिया। सुखदेव उनसे बोला—

''भाभी, आप क्या पढ़ रही थीं?''

''आजकल मैं इन अध्यापकजी से संस्कृत पढ़ रही हूँ, भैया।''

''यह संस्कृत पढ़ने का नाटक आप क्यों कर रही हैं?''

''हाँ भैया! सचमुच नाटक ही कर रही हूँ। तुम तो जानते ही हो कि तुम्हारे

भाई साहब तो एक प्रकार से फरार ही हैं। इन दिनों पुलिस मेरे ऊपर भी काफी निगरानी रख रही है। संदेह से बचने के लिए ही मैंने संस्कृत का अध्ययन करने का नाटक रचा है। तुम इस समय किस काम से आए हो?''

''भाभी, तुम्हारे पास इस समय कुछ रुपए होंगे क्या?''

''हाँ, इस समय मेरे पास पाँच सौ रुपए हैं। कलकत्ता जाते समय वे मुझसे कह गए थे कि बैंक से कुछ रुपए निकालकर रख लेना।''

''भाभी! वे रुपए मुझे दे दो और यह बताओ कि यदि किसीके साथ कुछ दिन के लिए पार्टी के काम से यदि बाहर जाना पड़े तो क्या तुम जा सकोगी?''

''किसके साथ जाना होगा?''

''इस समय नाम नहीं बताऊँगा। जिसके साथ जाना है, वह परिचित या अपरिचित भी हो सकता है। होगा वह पार्टी का ही आदमी।''

''यदि वह पार्टी का आदमी है तो फिर पूछने की क्या बात है! मैं चली जाऊँगी।''

''यह स्वाभाविक ही है कि आप साथ में शची को भी ले जाएँगी।''

''हाँ, उसे तो ले ही जाना होगा। वह इतना छोटा है कि वह अभी मुझको छोड़कर अकेला नहीं रह सकता।''

''भाभी, एक खतरा है और वह यह कि आप लोगों पर गोली भी चल सकती है। आपको अपना और अपने बच्चे का जीवन संकट में डालकर ही जाना होगा। क्या इस स्थिति में भी जाने के लिए आप तैयार हैं?''

''परीक्षा क्यों ले रहे हो, सुखदेव! इस तरह के काम के लिए मैं दुहरे रूप से प्रतिश्रुत हूँ। उनकी सहधर्मिणी होने के नाते भी क्रांति के हर काम में सहयोग देना मेरा धर्म है, और मैं स्वयं भी तो अब पार्टी में हूँ। फिर पार्टी के काम से मुझे अपना या बच्चे का जीवन संकट में डालने से संकोच क्यों होगा?''

दुर्गा भाभी द्वारा आश्वासन पाकर सुखदेव चला गया। प्रबंध के लिए वह उनसे पाँच सौ रुपए लेता गया।

अगली रात्रि के लगभग ग्यारह बजे दो व्यक्तियों को साथ लेकर सुखदेव दुर्गा भाभी के मकान पर फिर पहुँचा। मकान में पहुँचकर दरवाजा बंद कर लिया गया। शिष्टाचार के नाते दुर्गा देवी ने नए व्यक्तियों को ध्यान से देखने का प्रयत्न नहीं किया। सुखदेव ने प्रश्न किया—

''भाभी! इनमें से किसीको तुमने पहचाना क्या?''

अब दुर्गा देवी ने नवागंतुकों की ओर ध्यान से देखा। उन्होंने देखा कि एक व्यक्ति नाटे कद का तथा काफी साँवले रंग का है और उसके बाल घुटे हुए हैं। दुर्गा

देवी को वह व्यक्ति सर्वथा नया जैसा लगा। दूसरा व्यक्ति ऊँचा-पूरा और गौर वर्ण का था। उसने बहुत कीमती सूट पहन रखा था। उसके पैरों में चमचमाते हुए बूट थे और सिर पर फैल्ट हैट लगा रखा था। दुर्गा देवी को कहना पड़ा—

''नहीं भैया! मैं इनमें से किसीको नहीं पहचान सकी।''

दुर्गा भाभी का यह कथन सुनकर भगतसिंह जोर से हँस पड़ा। उसकी हँसी को पहचानकर दुर्गा देवी ने आश्चर्य के साथ कहा—

''कौन, भगतसिंह ?''

''हाँ, भाभी! मैं भगतसिंह ही हूँ। पहली परीक्षा में मैं पास हो गया। जब तुम ही मुझे नहीं पहचान सकीं तो पुलिस मुझे क्या पहचानेगी!''

दूसरा व्यक्ति क्रांतिकारी राजगुरु था। उसने तथा भगतसिंह दोनों ने ही लाहौर के सहायक पुलिस सुपरिटेंडेंट जे.पी. सांडर्स को गोलियों से भूना था। उसका सामान्य परिचय दुर्गा भाभी को दिया गया।

सुबह होते ही भगतसिंह, दुर्गा भाभी और राजगुरु लाहौर रेलवे स्टेशन पर पहुँच गए। भगतसिंह ने अपने सूट के ऊपर सर्दी से बचने के लिए चैस्टर भी पहन रखा था। चैस्टर के बाहर की जेब में भरा हुआ रिवॉल्वर पड़ा था। भगतसिंह ने भाभी के बच्चे शचींद्र को अपने बाएँ हाथ की ओर थाम रखा था। वैसे वह फैल्ट हैट लगाए हुए था, पर उसने शचींद्र को इस प्रकार उठा रखा था कि उसके कारण उसका चेहरा थोड़ा ढक गया था। भगतसिंह का सीधा हाथ चैस्टर की जेब के अंदर रिवॉल्वर के ट्रिगर पर था। किसी भी समय उसे गोली चलानी पड़ सकती थी।

भगतसिंह के पीछे ऊँची एड़ी की सैंडिल पहने हुए दुर्गा भाभी खट-खट करती हुईं किसी ऊँचे अफसर की पत्नी की ठसक से चल रही थीं। उनके कंधे से पर्स लटक रहा था, जिसमें एक रिवॉल्वर पड़ा था। उन दोनों के पीछे नौकर के वेश में राजगुरु बगल में टाट में लिपटा हुआ अपना छोटा-सा बिस्तर दबाए हुए और एक हाथ में खाने का डिब्बा थामे हुए चल रहे थे। होलडॉल और सूटकेस लादे हुए कुली भी साथ में था।

भगतसिंह तथा दुर्गा भाभी प्रथम श्रेणी के डिब्बे में बैठे और राजगुरु नौकरवाले डिब्बे में। लखनऊ पहुँचने पर पूर्व योजना के अनुसार राजगुरु वहाँ से खिसक गया। उसे आगरा पहुँचना था।

लखनऊ स्टेशन से भगतसिंह ने दुर्गा भाभी की तरफ से क्रांतिकारिन् सुशीला दीदी को एक तार कर दिया। तार में लिखा था—

'भाई के साथ पहुँच रही हूँ।'

खुफिया पुलिस के लोगों के संदेह से बचने के लिए भगतसिंह ने तार

देनेवाले के नाम की जगह 'दुर्गावती' लिख दिया था। जब वह तार सुशीला दीदी के पास पहुँचा तो उस समय दुर्गा भाभी के पति भगवतीचरण बोहरा कलकत्ता में सुशीला दीदी के साथ ही ठहरे हुए थे। तार में दुर्गावती नाम पढ़कर दोनों चक्कर में पड़ गए। वे दोनों ही कलकत्ता स्टेशन पर पहुँचे और जब ट्रेन से भगतसिंह तथा दुर्गा देवी को उतरते हुए देखा तो उनकी तबीयत प्रसन्न हो गई। सांडर्स वध के समाचार सब जगह फैल चुके थे। भगवतीचरण बोहरा को यही चिंता थी कि भगतसिंह लाहौर से कैसे निकल सकेगा। उन लोगों को सकुशल वहाँ पहुँचा हुआ देखकर भगवतीचरण अपनी प्रसन्नता रोक नहीं सके और अवसर पाकर उन्होंने अपनी पत्नी की पीठ थपथपाते हुए कहा—

"दुर्गे! हम लोगों का सच्चा विवाह तो आज हुआ है।"

इसपर सुशीला दीदी ने चुटकी लेते हुए कहा—

"और दस साल पहले जो हुआ था, वह क्या था?"

भगवतीचरण का उत्तर था—

"वह तो गुड्डा-गुड्डी का विवाह था, जो हम दोनों के पिताओं ने कर दिया था। इसको सच्ची पत्नी के रूप में तो मैंने आज पाया है। आज लगा कि यह एक क्रांतिकारी की पत्नी है। मैं तो इसे अभी तक एक देहातिन बहू समझे हुए था।"

भगतसिंह को सुरक्षित रूप से कलकत्ता पहुँचाकर और कुछ दिन वहाँ रहकर दुर्गा देवी लाहौर लौट गईं। राजनीतिक घटनाओं का चक्र बहुत तेजी से घूमने लगा।

पार्टी के निर्णय के अनुसार भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने दिल्ली असेंबली में बम फेंककर अपनी गिरफ्तारियाँ दीं। इस मुकदमे में उन दोनों को आजीवन कारावास का दंड दिया गया। शीघ्र ही यह भी सिद्ध हो गया कि सांडर्स हत्याकांड में भगतसिंह भी सम्मिलित था। लाहौर षड्यंत्र केस के अंतर्गत भगतसिंह, सुखदेव एवं राजगुरु और उनके अन्य साथियों को लाहौर जेल में रखा गया।

चंद्रशेखर आजाद और उनके क्रांतिकारी साथियों ने तय किया कि भगतसिंह और साथियों को जेल से छुड़ाया जाए। इस समय तक दुर्गा भाभी और सुशीला दीदी भी फरारी जीवन व्यतीत कर रही थीं।

भगतसिंह और साथियों को जेल से छुड़ाने की योजना क्रियान्वित करने के लिए लाहौर में बहावलपुर रोड पर एक कोठी का आधा हिस्सा किराए पर लिया गया। कोठी के दूसरे आधे हिस्से में श्रीपाल नाम के एक इंजीनियर महोदय रहते थे। उस कोठी में दुर्गा भाभी, सुशीला दीदी, भगवतीचरण बोहरा, चंद्रशेखर आजाद,

यशपाल, धनवंतरी, विश्वनाथ वैशंपायन, सुखदेवराज, मदनगोपाल, छैलबिहारी और टहलराम रह रहे थे। मदनगोपाल एवं छैलबिहारी खानसामा और बैरा तथा टहलराम ड्राइवर का अभिनय कर रहे थे। कुछ बम भी तैयार कर लिये गए। जेल पर आक्रमण के समय इन बमों का उपयोग होना था।

यह देखने के लिए कि बम ठीक तरह से बने हैं या नहीं, एक बम का परीक्षण करने का निश्चय हुआ। १ जून, १९३० को जेल पर आक्रमण करना था। २८ मई, १९३० को भगवतीचरण बोहरा, विश्वनाथ वैशंपायन और सुखदेवराज एक बम लेकर रावी के किनारे पहुँचे। एक निर्जन स्थान पर भगवतीचरण बोहरा अपने हाथ में बम लेकर उसे फेंकने की तैयारी करने लगे। उन्होंने अपने दोनों साथियों को दूर हटा दिया। वे बम देख ही रहे थे कि वह उनके हाथ में ही फट गया। वे घायल होकर गिर पड़े। विश्वनाथ वैशंपायन और सुखदेवराज जब उनके पास पहुँचे तो उन्होंने देखा कि भगवतीचरण इतने अधिक घायल हो गए थे कि उनके बचने की कोई आशा नहीं थी। मरते-मरते भी भगवतीचरण ने यही कहा कि साथियों को जेल से छुड़ाने की योजना स्थगित नहीं की जाए। उन्होंने अपनी पत्नी दुर्गा देवी को भी पार्टी में रखने का अनुरोध किया।

भगवतीचरण बोहरा की मृत्यु उनकी पत्नी दुर्गा देवी के लिए वज्राघात सिद्ध हुई। उनका संसार ही उजड़ गया। पार्टी के प्रति अपना कर्तव्य पहचानकर उन्होंने अपने कलेजे पर पत्थर रखा और उत्साह के साथ कार्य करने लगीं। कई कारणों से भगतसिंह को छुड़ाने की योजना क्रियान्वित नहीं हो सकी।

क्रांतिकारी पार्टी के लिए दूसरा वज्राघात यह हुआ कि भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु के लिए फाँसी का दंड सुना दिया गया। क्रांतिकारी लोग इधर-उधर बिखरकर कार्य करने लगे। यह निश्चय किया गया कि भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु के फाँसी के दंड का विरोध करने के लिए कोई बड़ा एक्शन लिया जाए। अंग्रेजी शासन के लिए दुर्गा भाभी ने रणचंडी का रूप धारण कर लिया था।

बंबई के गवर्नर हेली को मृत्युदंड देने का निश्चय किया गया। वह पंजाब में कुख्यात हो चुका था। इस एक्शन का दायित्व दुर्गा भाभी ने अपने ऊपर लिया। वे कुछ साथियों को लेकर बंबई जा पहुँचीं। उनके सहयोगियों में थे—पृथ्वीसिंह और सुखदेवराज। क्रांति के क्षेत्र में पृथ्वीसिंह को बहुत अधिक अनुभव था। अमेरिका में भारतीय क्रांतिकारियों की जो गदर पार्टी बनी थी, उसके संस्थापक सदस्यों में पृथ्वीसिंह भी एक थे। अमेरिका से भारत आकर उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य का तख्ता पलटने का प्रयत्न किया था और इस अपराध में उन्हें फाँसी का दंड घोषित किया गया था, जो बाद में आजीवन कालेपानी की सजा में परिणत कर दिया

गया था। पृथ्वीसिंह जेल-परिवर्तन के क्रम में दो बार बेड़ियाँ पहने हुए चलती ट्रेन में से कूद चुके थे। फरारी की अवस्था में वे सौराष्ट्र में 'स्वामीराव' नाम से एक व्यायामशाला चला रहे थे। जेल में बंद रहते हुए भगतसिंह ने अपने एक साथी धनवंतरी को भेजकर पृथ्वीसिंह को खोज निकाला था और चंद्रशेखर आजाद से उनकी भेंट कराकर उन्हें अपनी पार्टी में सम्मिलित कर लिया था।

बंबई के गवर्नर हेली को मारने की योजना बना ली गई। मि. हेली शाम के समय अपने बंगले के सामने लॉन में बैठकर लोगों से मिला करते थे। यह तय हुआ कि दुर्गा भाभी एक पारसी महिला के लिबास में अपनी कार में बैठकर गवर्नर से मिलने उनके बंगले में पहुँचेंगी और भेंट के समय उन्हें बातों में उलझाकर उनपर गोलियाँ दाग देंगी। अभिभावक के रूप में पृथ्वीसिंह तथा सुखदेवराज उनके साथ रहेंगे और यदि अन्य लोगों ने मुकाबला किया तो ये दोनों भी गोलियाँ चलाने लगेंगे।

दुर्गा भाभी अपने साथ अपने बच्चे शचींद्र को भी ले गई थीं। उसे एक शुभचिंतक श्री गणेश रघुनाथ वैशंपायन के घर छोड़ा गया। पार्टी के साथ सहानुभूति रखनेवाले एक मित्र श्री शिंदे से उनकी कार माँग ली गई। ड्राइवर वापट भी इनके विश्वास का आदमी था। वह मिलिट्री में ड्राइवर रह चुका था।

दुर्गा भाभी, पृथ्वीसिंह और सुखदेवराज कार में सवार होकर गवर्नर के बंगले की तरफ पहुँच गए। गवर्नर बंगले पर नहीं था। जहाँ-जहाँ उसके मिलने की संभावना हो सकती थी, उन स्थानों पर उसे तलाश किया गया; पर वह कहीं नहीं मिला। घूमते-फिरते काफी रात हो गई। गवर्नमेंट हाउस के पास लेमिंग्टन रोड पर एक पुलिस स्टेशन था। उसके सामने फुटपाथ के सहारे कार खड़ी कर दी गई। उस पुलिस स्टेशन पर अधिकांश स्टाफ गोरे लोगों का ही था। रात्रि के लगभग एक बजे का समय था। पुलिस की एक गाड़ी उस समय वहाँ आकर रुकी और उसमें से एक महिला तथा पुलिस के कुछ गोरे अफसर उतरे। क्रांतिकारियों ने समझा कि बहुत देर तक मटरगश्ती करते रहने के कारण उन्हें संदिग्ध व्यक्ति समझकर पुलिस उन्हें गिरफ्तार करने पहुँची है। पृथ्वीसिंह ने आदेश दिया—"शूट!" यह सुनते ही दुर्गा भाभी ने महिला को छोड़कर पुलिस के शेष लोगों पर गोलियाँ दागना प्रारंभ कर दिया। पृथ्वीसिंह और सुखदेवराज भी गोलियाँ चलाने लगे। पुलिस के लोग गाड़ी की ओट लेकर जमीन पर लेट गए। गोलियाँ चलती देख पुलिस स्टेशन में से कुछ गोरे निकले और उन्होंने आक्रमणकारियों को घेरना चाहा। उन लोगों पर भी गोलियों की बौछार की गई।

काफी गोलियाँ चलाने के बाद पृथ्वीसिंह ने लौटने का आदेश दिया। ड्राइवर

वापट ने गाड़ी लौटा दी। पुलिस की एक गाड़ी उनका पीछा कर रही थी। वापट बहुत होशियार ड्राइवर था। वह अपनी कार को ले गया। गाड़ी उसके मालिक शिंदे को लौटा दी गई। क्रांतिकारी लोग अपने ठहरने के मुकाम पर जा पहुँचे।

पुलिस ने भी काफी तत्परता दिखाई और चार घंटे के अंदर ही उसने वह गाड़ी पकड़ ली, जिसमें बैठकर आक्रमण किया गया था। ड्राइवर वापट को गिरफ्तार कर लिया गया। दुर्गा भाभी के बच्चे शचींद्र को जिनके घर रखा गया था, उन श्री गणेश रघुनाथ वैशंपायन को भी गिरफ्तार कर लिया गया। उन्होंने दूरदर्शिता यह की कि शचींद्र को अन्य मित्र के घर पहुँचा दिया। इन लोगों को गिरफ्तार करके पुलिस उस मकान पर पहुँची, जहाँ क्रांतिकारी लोग ठहरे हुए थे। सुबह के पाँच बजे थे। पुलिस को आया हुआ देखकर क्रांतिकारी पिछले दरवाजे से निकलकर भागे और गिरफ्तारी से बच गए।

क्रांतिकारियों की गोलियों से पुलिस की गाड़ी में से उतरनेवाला सेना का एक अधिकारी घायल हुआ था। अंग्रेज महिला के पैर में भी गोली लगी थी।

क्रांतिकारियों में से पृथ्वीसिंह पैदल यात्रा करके साधु के वेश में नौसारी पहुँच गए। दुर्गा भाभी ने अपने बच्चे को खोज निकाला। उसे लेकर वे सुखदेवराज के साथ कानपुर पहुँच गईं। अखबारों में लेमिंग्टन शूटिंग केस का विवरण छप चुका था। जब दुर्गा भाभी चंद्रशेखर आजाद के सम्मुख पहुँचीं तो क्रोध के मारे आजाद काँपने लगे। उन्होंने अनुत्तरदायित्वपूर्ण एक्शन के लिए उन्हें प्रताड़ित करना चाहा; पर शीघ्र ही उनका क्रोध शांत हो गया।

बंबई में दस व्यक्तियों पर 'लेमिंग्टन शूटिंग केस' चला। बाद में इसका नाम 'बंबई शूटिंग केस' हो गया। इसके प्रमुख अभियुक्त थे गणेश रघुनाथ वैशंपायन। जो व्यक्ति फरार थे, वे पकड़े नहीं जा सके। यह मुकदमा पहले सेशन कोर्ट में चला और बाद में हाई कोर्ट में। ४ मई, १९३१ को हाई कोर्ट ने फैसला सुना दिया। सभी व्यक्ति निर्दोष घोषित कर दिए गए।

दुर्गा भाभी पर दूसरा वज्र-प्रहार हुआ। उनके पति की मृत्यु के बाद उनके संरक्षक और अभिभावक चंद्रशेखर आजाद ने २७ फरवरी, १९३१ को इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में ब्रिटिश पुलिस के साथ युद्ध करते हुए शहादत प्राप्त कर ली। उनकी अनुपस्थिति में दुर्गा भाभी को प्रश्रय पाने के लिए इधर-उधर भटकना पड़ा। वह उनका बड़े संकट का समय था। पुलिस बराबर उनका पीछा कर रही थी। दुर्गा भाभी को स्वयं से कहीं अधिक चिंता अपने पुत्र शचींद्र की थी। किसी स्थान पर वे रहतीं और किसी स्थान पर अपने पुत्र को रखती थीं।

साहस और सूझबूझ ने कभी दुर्गा भाभी का साथ नहीं छोड़ा। अपने पुत्र को

परेशानी से बचाने तथा उसकी शिक्षा का प्रबंध करने की दृष्टि से वे दिल्ली में खुले रूप से रहने लगीं। पुलिस उन्हें कितना परेशान कर रही है, इस संबंध में उन्होंने एक वक्तव्य 'फ्री प्रेस' संवाददाता को दिया।

जब दुर्गा भाभी लाहौर पहुँचीं तो उन्हें वहाँ गिरफ्तार कर लिया गया। उन्हें छह महीने तक नजरबंद रखा गया। बाद में उन्हें लाहौर नगर में ही तीन वर्ष तक नजरबंद रखा गया। नजरबंदी की अवधि समाप्त होने पर वे गाजियाबाद पहुँच गईं और वहाँ प्यारेलाल कन्या विद्यालय में अध्यापिका नियुक्त हो गईं।

गाजियाबाद में कुछ दिन रहने के पश्चात् दुर्गा भाभी दिल्ली पहुँच गईं और कांग्रेस में कार्य करने लगीं। उनके तप-त्याग और कर्मठता से प्रभावित होकर उन्हें दिल्ली प्रदेश कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष के रूप में निर्वाचित किया गया। इस पद पर बहुत समय तक कार्य करने के पश्चात् दुर्गा भाभी ने स्वाधीन भारत में लखनऊ को अपना स्थायी निवास बनाया और वहाँ नन्हे-मुन्नों में राष्ट्रीय संस्कार डालने के उद्देश्य से एक मांटेसरी विद्यालय खोलकर अपनी सारी शक्ति उसके संचालन के लिए अर्पित करने लगीं। राष्ट्र के लिए समर्पित दुर्गा भाभी का जीवन सभी के लिए प्रेरणा का स्रोत है।

□

★ डॉ. गयाप्रसाद


डॉ. गयाप्रसाद

शिव वर्मा और जयदेव कपूर को पुलिस सहारनपुर बम फैक्टरी से गिरफ्तार कर चुकी थी। पुलिस को उनके साथी डॉ. गयाप्रसाद की तलाश थी। पुलिस को यह मालूम हो गया था कि डॉ. गयाप्रसाद कहीं बाहर गए हैं और शीघ्र ही सहारनपुर लौटने वाले हैं। पुलिस ने उनके स्वागत के लिए स्टेशन पर भी अपने आदमी नियुक्त कर दिए थे और जिस मकान से शिव और जयदेव पकड़े गए थे, उस मकान के अंदर भी सिपाहियों का पहरा बैठा दिया गया था।

डॉ. गयाप्रसाद पार्टी के पुराने आदमी थे। पहले उन्होंने कानपुर में पार्टी के लिए संगठन का काम किया था और बाद में वे फिरोजपुर इसी काम के लिए भेजे गए थे। डॉ. गयाप्रसाद एलोपैथी, होम्योपैथी तथा हकीमी—तीनों प्रकार की पद्धतियों के जानकार थे। फिरोजपुर में उनका दवाखाना अच्छा जम गया था। वहाँ से वे पार्टी के लिए पैसा भी भेजते थे। फिरोजपुर में वे कायस्थ सभा के मंत्री भी चुने गए थे।

पार्टी को इस बात की आवश्यकता महसूस हुई कि दिल्ली की बम फैक्टरी हटाकर सहारनपुर भेजी जाए। इस काम के लिए डॉ. गयाप्रसाद, शिव वर्मा और जयदेव कपूर को चुना गया। डॉ. गयाप्रसाद के लिए यह काम आसान था। अपने कंपाउंडर और ड्रेसर के बहाने वे कुछ आदमियों को अपने साथ रख सकते थे। डॉक्टर के दवाखाने में दवाइयों की एक विशेष प्रकार की गंध रहती है। उस गंध की आड़ में बम का मसाला बनाने से जो गंध उठती है, उसपर शक नहीं किया जा सकता था। डॉ. गयाप्रसाद घोषित कर देते थे कि वे हकीमी का काम भी करते हैं और कुश्ता फूँकते हैं। इस कारण बम का मसाला बनाने के लिए तेजाबों के मिश्रण से उठनेवाली गंध से लोग अनुमान लगाते थे कि हकीम साहब कुश्ता फूँक रहे होंगे।

सहारनपुर बम फैक्टरी में भी डॉ. गयाप्रसाद यह सब करने वाले थे; पर उन्हें अवसर ही नहीं मिला। जब वे लोग सहारनपुर पहुँचे तो उनके पास पैसा बिलकुल नहीं था। पैसे के अभाव में वे किराए से ली गई दुकान को डिस्पेंसरी का रूप प्रदान नहीं कर सके। उन्हें प्रतीक्षा थी कि दिल्ली केंद्र के साथी काशीराम पैसा लेकर पहुँचने वाला है; लेकिन वह नहीं पहुँचा। डॉ. साहब ने विचार किया कि हममें से कोई साथी कानपुर पहुँचकर पैसा ले आए। जब तीनों की जेबों की तलाशी ली गई तो केवल इतना पैसा निकला कि एक आदमी कानपुर जा सकता था। एक रुपए से कम के पैसे शिव वर्मा और जयदेव कपूर के चना-चबैना के लिए छोड़कर डॉ. साहब यह कहकर कानपुर चले गए कि मैं बहुत शीघ्र ही पैसे का प्रबंध करके लौट आऊँगा।

डॉ. गयाप्रसाद को सहारनपुर लौटने में देर हो गई। उनकी अनुपस्थिति में पुलिस ने शिव वर्मा एवं जयदेव कपूर को फैक्टरी से गिरफ्तार कर लिया और वहाँ डॉ. गयाप्रसाद की प्रतीक्षा में पुलिस का पहरा लगा दिया।

डॉ. गयाप्रसाद कानपुर से पैसे का प्रबंध न कर सके। वे बिना पैसे के ही सहारनपुर जा पहुँचे। उनकी ट्रेन जब सहारनपुर पहुँची तो सुबह का धुँधलका था। किसी प्रकार स्टेशन पर गिरफ्तारी से बच गए। जब वे अपने मुकाम पर पहुँचे तो

जोर से दरवाजा खटखटाया। सोचा कि शिव वर्मा या जयदेव कपूर दरवाजा खोलने पहुँचेंगे। जो दरवाजा खोलने पहुँचा, वह पुलिस का सिपाही था। सिपाही ने दरवाजा खोलकर डॉ. गयाप्रसाद को अपनी बाँहों में भर लिया। डॉ. साहब ने सोचा कि दिल्ली से काशीराम आ गया है और आलिंगन की यह पकड़ उसीकी है। वे दोनों एक-दूसरे को अधिक शक्ति से कसते गए। दोनों के चेहरे एक-दूसरे के कंधों पर झुके हुए थे, इसलिए वे एक-दूसरे की शक्ल नहीं देख पा रहे थे। तंग आकर डॉ. गयाप्रसाद ने कहा—''यार, अब बस करो। बहुत प्रेम-प्रदर्शन हो गया। अब जरा अंदर चलो।''

इसी बीच सिपाही ने चिल्लाकर अपने साथियों को पुकारा—

''जल्दी दौड़कर आओ। तीसरा भी आ गया।''

अंदर से कुछ सिपाही दौड़े और सबने मिलकर डॉ. साहब पर आसानी से काबू पा लिया। उनको पुलिस का गहना पहना दिया गया। सिपाही उनको कोतवाली ले चले।

रास्ते में चलते-चलते डॉ. गयाप्रसाद को खयाल आया कि उनकी जेब में एक कागज पड़ा है, जिसमें लखनऊ के प्रसिद्ध वकील श्री चंद्रभानु गुप्त और मोहनलाल सक्सेना के नाम हैं। इन दोनों ने क्रांतिकारियों की ओर से काकोरी केस लड़ा था और बंदी क्रांतिकारियों के संदेश उन्हींके द्वारा जेल से बाहर आते-जाते थे। डॉ. गयाप्रसाद ने सोचा, पुलिस के हाथ यह कागज पड़ने पर वकील साहबान बिना वजह ही फाँसे जाएँगे। वे उस कागज को नष्ट कर देना चाहते थे। चलते-चलते उन्होंने सिपाहियों से कहा—

''हमें पेशाब करने बैठना है।''

सिपाहियों ने कहा—

''कोतवाली पहुँचकर कर लेना।''

डॉ. गयाप्रसाद का कथन था—

''हमें हाजत जोर से लगी है। हम रुक नहीं सकते।''

सिपाहियों ने उनका एक हाथ बेड़ी से मुक्त कर दिया। डॉ. गयाप्रसाद सड़क के किनारे बैठ गए। सिपाही उनकी ओर पीठ करके खड़े हो गए। डॉ. साहब ने अपनी जेब से वह कागज निकाला और उसे मुँह में रख लिया। वे उसे चबाकर निगलने की कोशिश करने लगे। वह कागज उनके गले में अटक गया। उनकी साँस रुकने लगी और आँखें बाहर निकलने को होने लगीं। उन्होंने रस्सी खींचकर सिपाही का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया और मुँह पर हाथ रखकर पानी माँगने का इशारा किया। एक सिपाही दौड़कर गया और एक गिलास पानी ले आया। उस

पानी के सहारे डॉ. गयाप्रसाद ने वह कागज गले के नीचे उतार लिया। उनकी जान भी बच गई और उन्होंने अपने हमदर्द वकीलों को भी परेशानी से बचा लिया। जब सिपाहियों ने पूछा कि क्या हो गया था, तो कह दिया—

''मैं भाँग का गोला चढ़ाता हूँ। वही अटक गया था।''

डॉ. गयाप्रसाद को लाहौर षड्यंत्र केस में सम्मिलित करने के लिए लाहौर भेज दिया गया। मुकदमे के निर्णय के अनुसार उन्हें आजन्म कालेपानी का दंड दिया गया।





★ चंद्रशेखर आजाद

एक आदिवासी ग्राम भावरा के अधनंगे आदिवासी बालक मिलकर दीपावली की खुशियाँ मना रहे थे। किसी बालक के पास फुलझड़ियाँ थीं, किसीके पास पटाखे और किसीके पास मेहताब की माचिस। बालक चंद्रशेखर के पास कुछ भी नहीं था। वह खड़ा-खड़ा अपने साथियों को खुशियाँ मनाते हुए देख रहा था। जिस बालक के पास मेहताब की माचिस थी, वह उसमें से एक तीली निकालता और उसके छोर को पकड़कर डरते-डरते उसे माचिस से रगड़ता और जब रंगीन रोशनी निकलती तो डरकर उस तीली को जमीन पर फेंक देता था। बालक चंद्रशेखर से यह देखा नहीं गया। वह बोल उठा—



चंद्रशेखर आजाद

''तुम डर के मारे एक तीली जलाकर भी अपने हाथ में पकड़े नहीं रह सकते। मैं सारी तीलियाँ एक साथ जलाकर उन्हें हाथ में पकड़े रह सकता हूँ।''

जिस बालक के पास मेहताब की माचिस थी, उसने वह चंद्रशेखर के हाथ में दे दी और कहा—

''जो कुछ कहा है, वह करके दिखाओ तब जानूँ!''

बालक चंद्रशेखर ने माचिस की सारी तीलियाँ निकालकर अपने हाथ में ले लीं। वे तीलियाँ उलटी-सीधी रखी हुई थीं, अर्थात् कुछ तालियों का रोगन चंद्रशेखर की हथेली की तरफ भी था। उसने तालियों की गड्डी माचिस से रगड़ दी। भक्क करके सारी तालियाँ जल उठीं। जिन तालियों का रोगन चंद्रशेखर की हथेली की

ओर था, वे भी जलकर चंद्रशेखर की हथेली को जलाने लगीं। असह्य जलन होने पर भी चंद्रशेखर ने तीलियों को उस समय तक नहीं छोड़ा, जब तक उनकी रंगीन रोशनी समाप्त नहीं हुई। जब उसने तीलियाँ फेंक दीं तो साथियों से बोला—

''देखो, हथेली जल जाने पर भी मैंने तीलियाँ नहीं छोड़ीं।''

उसके साथियों ने देखा कि चंद्रशेखर की हथेली काफी जल गई थी और बड़े-बड़े फफोले उठ आए थे। कुछ लड़के दौड़ते हुए उसकी माँ के पास घटना की खबर देने जा पहुँचे। उसकी माँ घर के अंदर कुछ काम कर रही थी। चंद्रशेखर के पिता पंडित सीताराम तिवारी बाहर के कमरे में थे। उन्होंने बालकों से घटना का ब्योरा सुना और वे घटनास्थल की ओर लपके। बालक चंद्रशेखर ने अपने पिता को आता हुआ देखा तो वह जंगल की तरफ भाग गया। उसने सोचा कि पिताजी पिटाई करेंगे। तीन दिन वह जंगल में ही रहा। एक दिन खोजती हुई माँ उसे घर ले आई। उसने यह आश्वासन दिया था कि तेरे पिताजी तुझसे कुछ नहीं कहेंगे।

बालक चंद्रशेखर का जन्म उसी गाँव में २३ जुलाई, १९०६ को हुआ था। उसके पिता उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के बदरका गाँव के रहनेवाले थे। भीषण अकाल पड़ने के कारण वे अपने एक रिश्तेदार का सहारा लेकर अलीराजपुर रियासत के गाँव भावरा में जा बसे थे। इस समय भावरा मध्य प्रदेश के झाबुआ जिले का एक गाँव है।

जब बालक चंद्रशेखर बड़ा हुआ तो वह अपने माता-पिता को छोड़कर भाग खड़ा हुआ और बनारस पहुँच गया। उसके फूफाजी पंडित शिव विनायक मिश्र बनारस में रहते थे। कुछ उनका सहारा लिया और कुछ खुद भी जुगाड़ बिठाया तथा संस्कृत विद्यापीठ में भरती होकर संस्कृत का अध्ययन करने लगा। उन दिनों बनारस में असहयोग आंदोलन की लहर चल रही थी। विदेशी माल न बेचा जाए, इसके लिए लोग दुकानों के सामने लेटकर धरना देते थे।

बालक चंद्रशेखर भी एक दिन धरना देते पकड़ा गया। वह पारसी मजिस्ट्रेट मि. खरेघाट की अदालत में पेश किया गया। मि. खरेघाट बहुत कड़ी सजाएँ देते थे। जब उन्होंने बालक चंद्रशेखर से उसकी व्यक्तिगत जानकारियों के बारे में पूछना शुरू किया—

''तुम्हारा नाम क्या है?''

''मेरा नाम आजाद है।''

''तुम्हारे पिता का नाम क्या है?''

''मेरे पिताजी का नाम स्वाधीन है।''

''तुम्हारा घर कहाँ है?''

"मेरा घर जेलखाना है।"

मजिस्ट्रेट मि. खरेघाट इन उत्तरों से चिढ़ गए। उन्होंने बालक चंद्रशेखर को पंद्रह बेंतों की सजा सुना दी। उस समय चंद्रशेखर की उम्र केवल चौदह वर्ष की थी।

जल्लाद ने अपनी पूरी शक्ति के साथ बालक चंद्रशेखर की निर्वसन देह पर बेंतों के प्रहार किए। प्रत्येक बेंत के साथ कुछ खाल उधड़कर बाहर आ जाती थी। पीड़ा सहन कर लेने का अभ्यास चंद्रशेखर को बचपन से ही था। वह हर बेंत के साथ 'महात्मा गांधी की जय' या 'भारत माता की जय' बोलता जाता था। जब पूरे बेंत लगाए जा चुके तो जेल के नियमानुसार जेलर ने उसकी हथेली पर तीन आने पैसे रख दिए। बालक चंद्रशेखर ने वे पैसे जेलर के मुँह पर दे मारे और भागकर जेल के बाहर हो गया।

इस पहली अग्निपरीक्षा में सम्मानसहित उत्तीर्ण होने के फलस्वरूप बालक चंद्रशेखर का बनारस के ज्ञानवापी मोहल्ले में नागरिक अभिनंदन किया गया। अब वह चंद्रशेखर आजाद कहलाने लगा।

बालक चंद्रशेखर आजाद का मन अब देश को आजाद कराने के अहिंसात्मक उपायों से हटकर सशस्त्र क्रांति की ओर मुड़ गया। उस समय बनारस क्रांतिकारियों का गढ़ था। वह मन्मथनाथ गुप्त और प्रणवेश चटर्जी के संपर्क में आया और क्रांतिकारी दल का सदस्य बन गया। क्रांतिकारियों का वह दल 'हिंदुस्तान प्रजातंत्र संघ' के नाम से जाना जाता था।

किसी बड़े अभियान में चंद्रशेखर आजाद सबसे पहले 'काकोरी डकैती' में सम्मिलित हुआ। इस अभियान के नेता रामप्रसाद बिस्मिल थे। उस समय चंद्रशेखर आजाद की आयु कम थी और स्वभाव भी बहुत चंचल था। इसलिए रामप्रसाद बिस्मिल उसे 'क्विक सिल्वर' (पारा) कहकर पुकारते थे। ९ अगस्त, १९२५ को क्रांतिकारियों ने लखनऊ के निकट काकोरी नामक स्थान पर सहारनपुर-लखनऊ पैसेंजर गाड़ी को रोककर उसमें रखा अंग्रेजी खजाना लूट लिया। बाद में एक-एक करके सभी क्रांतिकारी पकड़े गए; पर चंद्रशेखर आजाद कभी भी पुलिस के हाथ नहीं लगे। यद्यपि वे झाँसी में पुलिस थाने पर जाकर पुलिसवालों से गपशप लड़ा आते थे, पर पुलिसवालों को कभी संदेह नहीं हुआ कि यह व्यक्ति महान् क्रांतिकारी चंद्रशेखर आजाद हो सकता है।

काकोरी कांड के कई क्रांतिकारियों को फाँसी के दंड और कई को लंबे-लंबे कारावास की सजाएँ मिलीं। चंद्रशेखर आजाद ने खिसककर झाँसी में अपना अड्डा जमा लिया।

झाँसी में चंद्रशेखर आजाद को एक क्रांतिकारी साथी मास्टर रुद्रनारायण सिंह का अच्छा संरक्षण मिला।

झाँसी में ही सदाशिवराव मलकापुरकर, भगवानदास माहौर और विश्वनाथ वैशंपायन के रूप में उन्हें अच्छे साथी मिल गए। झाँसी की बुंदेलखंड मोटर कंपनी में कुछ दिन उन्होंने मोटर मैकेनिक के रूप में काम किया, मोटर चलाना सीखा और पुलिस अधीक्षक की कार चलाकर उनसे मोटर चलाने का लाइसेंस भी ले आए।

बुंदेलखंड मोटर कंपनी के एक ड्राइवर रामानंद ने चंद्रशेखर आजाद के रहने के लिए अपने ही मोहल्ले में एक कोठरी किराए पर दिला दी। सब काम ठीक-ठीक चल रहा था; पर कभी-कभी कुछ घटनाएँ मोहल्ले की शांति भंग कर देती थीं। आजाद की कोठरी के पास रामदयाल नाम का एक अन्य ड्राइवर सपरिवार रहता था। वैसे रामदयाल भला आदमी था, पर रात को जब वह शराब पीकर पहुँचता तो बहुत हंगामा करता और अपनी पत्नी को बहुत पीटता था। उस महिला का रुदन सुनकर मोहल्लेवालों को बहुत बुरा लगता था; पर वे किसीके घरेलू मामले में दखल देना उचित नहीं समझते थे। एक दिन सुबह-सुबह चंद्रशेखर आजाद जब कारखाने जाने के लिए अपनी कोठरी से बाहर निकले तो रामदयाल से उनकी भेंट हो गई। रामदयाल ने ही बात छेड़ी—

''क्यों हरीशंकरजी! (आजाद ने अपना नाम हरीशंकर घोषित कर रखा था) आजकल आप बहुत रात तक जागकर कुछ ठोंका-पीटी किया करते हैं। आपकी ठुक-ठुक से हमारी नींद हराम हो जाती है।''

वैसे तो आजाद स्थिति को टाल देना चाहते थे, पर रामदयाल ने जिस ढंग से बात कही थी, वह उत्तर देने के लिए बहुत अच्छी लगी और आजाद ने ईंट का जवाब पत्थर से दे मारा—

''रामदयाल भाई! मैं तो कल-पुरजों की ही ठोंका-पीटी करता हूँ, पर तुम तो शराब के नशे में अपनी गऊ जैसी पत्नी की ठोंका-पीटी करके मोहल्ले-भर की नींद हराम करते रहते हो।''

यह उत्तर रामदयाल को बहुत तीखा लगा। उसे इस बात का बुरा लगा कि कोई उसके घरेलू मामलों में क्यों हस्तक्षेप करे। उसका मनुष्यत्व तिरोहित हो गया और पशुत्व ऊपर आ गया। क्रोध से भनभनाता हुआ वह उबल पड़ा—

''क्यों बे! मेरी पत्नी का तू कौन होता है, जो तू उसका पक्ष ले रहा है? मैं उसे मारूँगा और खूब मारूँगा। देखता हूँ, कौन साला उसे बचाता है!''

आजाद ने शांत भाव से उत्तर दिया—

''जब तुमने मुझे 'साला' कहा है तो तुमने यह स्वीकार ही कर लिया है कि

मैं तुम्हारी पत्नी का भाई हूँ। एक भाई अपनी बहन को पिटते नहीं देख सकता। अब कभी तुमने शराब के नशे में रात को मारा तो ठीक नहीं होगा।''

रामदयाल को यह चुनौती असह्य हो गई। वह आपा खोकर चिल्ला उठा—

''ऐसी की तैसी रात की और नशे की! मैं बिना नशा किए ही उसे दिन के उजाले में सड़क पर लाकर मारता हूँ। देखें, कौन साला आगे आता है उसे बचाने को!''

यह कहता हुआ रामदयाल आवेश के साथ अपने मकान में घुसा और अपनी पत्नी की चोटी पकड़कर घसीटता हुआ उसे बाहर ले आया और मारने के लिए हाथ उठाया। वह अपनी पत्नी पर हाथ का प्रहार कर भी नहीं पाया था कि आजाद ने उसका हाथ थाम लिया और झटका देकर उसे अपनी ओर खींचा। इस झटके के कारण उसके हाथ से पत्नी के बाल छूट गए और वह मुक्त हो गई। अब आजाद ने एक भरपूर हाथ उसके गाल पर दे मारा। रामदयाल के गाल पर इतने जोर का तड़ाका हुआ कि उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया और वह अपने दोनों हाथों से अपना सिर थामकर बैठ गया। इस बीच आसपास के लोग दौड़े और कुछ लोग आजाद को समझाते हुए उसे कोठरी के अंदर ले गए। इस घटना के बाद कुछ दिन तक आजाद और रामदयाल की बोलचाल बंद रही; पर आजाद ने स्वयं ही पहल करके उससे अपने संबंध सुधार लिये तथा अब वे उसे 'जीजाजी' कहकर पुकारने लगे। रामदयाल ने अपनी पत्नी को फिर कभी नहीं पीटा।

आजाद की धाक पूरे मोहल्ले में जम गई। इसीसे मिलती-जुलती एक अन्य घटना भी थोड़े ही अंतराल से हो गई, जिसने पूरे झाँसी में आजाद की धाक जमा दी।

झाँसी के जिस मोहल्ले में आजाद रहते थे, उसमें कुछ मजदूर भी रहते थे, जो जरूरत पड़ने पर एक काबुली खान से रुपए उधार ले लिया करते थे। देते समय तो वह खान बड़ी नम्रता के साथ पेश आता था, पर वसूली के समय वह पूरा दैत्य बन जाता था। जो लोग समय पर पैसा नहीं लौटाते थे, उनके साथ गाली-गलौज करना और उन्हें मारना-पीटना उसका अपना तरीका था। वह उनसे भारी सूद भी वसूल करता था।

एक दिन जब आजाद अपने कमरे में कुछ काम कर रहे थे तो अपने पड़ोसी धनीराम का दीन स्वर उनके कानों में पड़ा। धनीराम गिड़गिड़ाकर खान से कह रहा था—

''खान बाबा! मय ब्याज के तुम्हारा पूरा पैसा मैं दस दिन के अंदर लौटा दूँगा। मैं बीमार पड़ गया था, इसी कारण मजदूरी पर नहीं जा सका। आज से काम

पर जाना शुरू किया है और ठीक दस दिन के बाद मैं तुम्हारा पूरा पैसा चुका दूँगा।''

खान ने तगड़ी फटकार लगाते हुए धनीराम से कहा—

''सुअर का बच्चा! जब तुम पैसा नहीं लौटा सकता था तो तुमने लिया ही क्यों था? तुम खुद को बेचो, अपनी बीवी व बच्चों को बेचो और मुझे मेरा पैसा लौटाओ। मैं खाली हाथ जाने वाला नहीं हूँ।''

धनीराम ने और भी विनम्र होकर खान से दस दिन बाद आने की प्रार्थना की। खान पर उसके गिड़गिड़ाने और प्रार्थना करने का कोई असर नहीं हुआ। वह भद्दी गालियाँ देता हुआ धनीराम के कमरे के अंदर घुसा और उसके औजारों का थैला उठाकर बाहर जाने लगा। धनीराम ने फिर मिन्नत की—

''खान बाबा! मेरे औजारों का थैला मत ले जाओ। इनके बिना मैं काम कैसे करूँगा और तुम्हारा कर्ज कैसे पटाऊँगा?''

आजाद ने जब धनीराम का दीन स्वर सुना तो वे बाहर निकले और खान को समझाते हुए बोले—

''खान बाबा! धनीराम ठीक ही तो कहता है। अगर तुम उसके औजार ले जाओगे तो वह काम कैसे करेगा और तुम्हारे पैसे किस तरह चुकाएगा? इस बार तुम उसकी बात मान लो। वह दस दिन के अंदर तुम्हारे पैसे जरूर लौटा देगा।''

खान को यह मध्यस्थता अच्छी नहीं लगी। वह भड़ककर बोला—

''तुम साला कौन होता है हमारे बीच बोलनेवाला! तुम हमसे नहीं उलझो, नहीं तो हम तुम्हारा खून पी जाएगा।''

भला आजाद यह चुनौती कैसे अस्वीकार करते! यह कहते हुए कि—''तुम मेरा खून क्या पिओगे, मेरा झापड़ खाकर पानी पीने लायक भी नहीं रहोगे,''—वे खान पर झपटे और एक तगड़ा धक्का देकर उसे जमीन पर पटक दिया। गिरते ही उसकी पगड़ी कहीं गिरी, सोंटा कहीं और धनीराम के औजारों का थैला कहीं गिरा। आजाद उसकी छाती पर सवार हो गए और उसके बालों को पकड़कर उसका सिर जमीन पर पटकने लगे। फिर खुद ही उन्होंने उसके बाल पकड़कर उसे खड़ा कर दिया और दो-चार घूँसे जमाते हुए उसे सड़क की तरफ धकेल दिया। खान अपनी पगड़ी और सोंटा सँभालते हुए तेज कदमों से चला गया।

इस घटना ने आजाद को मोहल्ले और शहर-भर में खूब लोकप्रिय बना दिया। बच्चों ने उनका नाम 'नाहरू' (शेर) रख दिया। अगर कोई बिगड़ैल बच्चा अपनी माँ का कहना नहीं मानता तो उसकी माँ उसे धमकाती—

''जल्दी ऐसा कर लो, नहीं तो मैं नाहरू को बुला दूँगी।'' और बच्चा झट से अपनी माँ का कहना मान लेता था।

जब झाँसी में पुलिस की हलचल बढ़ने लगी तो चंद्रशेखर आजाद ओरछा राज्य में खिसक गए और सातार नदी के किनारे एक कुटिया बनाकर ब्रह्मचारी के रूप में रहने लगे। आजाद के न पकड़े जाने का एक रहस्य यह भी था कि संकट के समय वे शहर छोड़कर गाँवों की ओर खिसक जाते थे और स्वयं को सुरक्षित कर लेते थे।

क्रांति सूत्रों को जोड़कर चंद्रशेखर आजाद ने अब एक सुदृढ़ क्रांतिकारी संगठन बना डाला। अब उनकी पार्टी का नाम 'हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र सेना' था। उनके साथियों ने उनको ही इस सेना का 'कमांडर इन चीफ' बनाया। अब भगतसिंह जैसा क्रांतिकारी भी उनका साथी था। उत्तर प्रदेश और पंजाब तक इस पार्टी का कार्यक्षेत्र बढ़ गया।

उन दिनों भारतवर्ष को कुछ राजनीतिक अधिकार देने की दृष्टि से अंग्रेजी हुकूमत ने सर जॉन साइमन के नेतृत्व में एक आयोग की नियुक्ति की, जो 'साइमन कमीशन' कहलाया। समस्त भारत में साइमन कमीशन का जोरदार विरोध हुआ और स्थान-स्थान पर उसे काले झंडे दिखाए गए। जब लाहौर में साइमन कमीशन का विरोध किया गया तो पुलिस ने प्रदर्शनकारियों पर बेरहमी के साथ लाठियाँ बरसाईं। पंजाब के लोकप्रिय नेता लाला लाजपतराय को इतनी लाठियाँ लगीं कि कुछ दिन पश्चात् उनकी मृत्यु हो गई।

चंद्रशेखर आजाद, भगतसिंह और पार्टी के अन्य सदस्यों ने लालाजी पर लाठियाँ चलानेवाले पुलिस अधीक्षक सांडर्स को मृत्युदंड देने का निश्चय कर डाला।

१७ दिसंबर, १९२८ को चंद्रशेखर आजाद, भगतसिंह और राजगुरु ने संध्या समय लाहौर में पुलिस अधीक्षक के दफ्तर को जा घेरा। ज्यों ही जे.पी. सांडर्स अपने अंगरक्षक के साथ मोटर साइकिल पर बैठकर निकला, पहली गोली राजगुरु ने दाग दी, जो सांडर्स के मस्तक पर लगी और वह मोटर साइकिल से नीचे गिर गया। भगतसिंह ने आगे बढ़कर उसपर चार-छह गोलियाँ दागकर उसे बिलकुल ठंडा कर दिया। जब सांडर्स के अंगरक्षक ने पीछा किया तो चंद्रशेखर आजाद ने अपनी गोली से उसे समाप्त कर दिया।

लाहौर नगर में जगह-जगह परचे चिपका दिए गए कि लाला लाजपतराय की मृत्यु का बदला ले लिया गया। समस्त भारत में क्रांतिकारियों के इस कदम को सराहा गया।

चंद्रशेखर आजाद के ही सफल नेतृत्व में भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने ८ अप्रैल, १९२९ को दिल्ली की केंद्रीय असेंबली में बम विस्फोट किए। ये

विस्फोट सरकार द्वारा बनाए गए काले कानूनों के विरोध में किए गए थे। इस कांड के फलस्वरूप भी क्रांतिकारी बहुत जनप्रिय हो गए।

केंद्रीय असेंबली में बम विस्फोट करने के पश्चात् भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने स्वयं को गिरफ्तार करा लिया। वे न्यायालय को अपना प्रचार-मंच बनाना चाहते थे। चंद्रशेखर आजाद घूम-घूमकर क्रांति प्रयासों को गति देने लगे। आखिर वह दिन भी आ गया, जब किसी मुखबिर ने पुलिस को यह सूचना दे दी कि चंद्रशेखर आजाद अल्फ्रेड पार्क में अपने एक साथी के साथ बैठा हुआ है।

वह २७ फरवरी, १९३१ का दिन था। चंद्रशेखर आजाद अपने साथी सुखदेवराज के साथ बैठकर विचार-विमर्श कर रहे थे। मुखबिर की सूचना पर पुलिस अधीक्षक नाटबाबर ने आजाद को इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में घेर लिया। 'तुम कौन हो' कहने के साथ ही उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना नाटबाबर ने अपनी गोली आजाद पर छोड़ दी। नाटबाबर की गोली आजाद की जाँघ में लगी। आजाद ने घिसटकर, एक जामुन के वृक्ष की ओट लेकर अपनी गोली दूसरे वृक्ष की ओट में छिपे हुए नाटबाबर के ऊपर दाग दी। आजाद का निशाना सही लगा और उनकी गोली ने नाटबाबर की कलाई तोड़ दी। एक घनी झाड़ी के पीछे सी.आई.डी. इंस्पेक्टर विश्वेश्वर सिंह छिपा हुआ था। उसने स्वयं को सुरक्षित समझकर आजाद को एक गाली दे दी। गाली सुनकर आजाद क्रोध के मारे तिलमिला गया। जिस दिशा से गाली की आवाज आई थी, उस दिशा में आजाद ने अपनी गोली छोड़ दी। निशाना इतना सही लगा कि आजाद की गोली ने विश्वेश्वरसिंह का जबड़ा तोड़ दिया।

बहुत देर तक अकेले आजाद ने जमकर युद्ध किया। उन्होंने अपने साथी सुखदेवराज को पहले ही भगा दिया था। आखिर पुलिस की कई गोलियाँ आजाद के शरीर में समा गईं। उनके माउजर में केवल एक आखिरी गोली बची। उन्होंने सोचा कि यदि मैं यह गोली भी चला दूँगा तो जीवित गिरफ्तार होने का भय है। अपनी कनपटी से माउजर की नली लगाकर उन्होंने आखिरी गोली स्वयं पर चला दी। गोली घातक सिद्ध हुई और उनका प्राणांत हो गया।

चंद्रशेखर आजाद के रूप में देश का एक महान् क्रांतिकारी योद्धा देश की आजादी के लिए अपना बलिदान दे गया।

□



★ छैलबिहारी

विश्वंभरदयाल के साथ छैलबिहारी भी भारती भवन, उज्जैन में पं. सूर्यनारायण व्यास के साथ ठहरा हुआ था। इन दोनों क्रांतिकारियों की भरती कुंदनलाल गुप्त ने राजस्थान से की थी और दोनों ही चंद्रशेखर आजाद के भरोसे के आदमी सिद्ध हुए। इसीलिए आजाद ने उन्हें हथियार खरीदने के लिए उज्जैन होते हुए अजमेर भेजना चाहा था।



छैलबिहारी

जब पुलिस विश्वंभरदयाल को पकड़ने में सफल हो गई तो उसने छैलबिहारी को गिरफ्तार करने के लिए भारती भवन को घेर लिया। पुलिस को आया हुआ जान पं. सूर्यनारायण व्यास ने धोती का एक टुकड़ा छैलबिहारी को दिया और कहा कि तुम अपने सारे कपड़े उतारकर अलमारी में रख दो तथा पंडितों की तरह यह पंचा लपेटकर, एक लँगोट कसकर कमर में खोंस लो। छैलबिहारी ने ऐसा ही किया। पं. सूर्यनारायण व्यास ने उसे जल से भरा हुआ एक लोटा दे दिया और एक थाल में पूजन की सामग्री दे दी। उसके माथे पर तिलक भी लगा दिया गया। अब छैलबिहारी पूरे पंडा दिखने लगे। पं. सूर्यनारायण व्यास के निवास भारती भवन से एक जीना सीधे महाकाल के मंदिर में जाता था। उस जीने से उतरने के लिए उसे कहा गया। इधर पुलिस दरवाजा पीट रही थी और धमकी दे रही थी यदि दरवाजा नहीं खोला गया तो तोड़ दिया जाएगा। पं. सूर्यनारायण व्यास ने दरवाजा खोल दिया। उस समय तक छैलबिहारी पंडे के रूप में महाकाल मंदिर में पहुँच चुका था। पुलिस ने भारती भवन को छान मारा, लेकिन

छैलबिहारी का कहीं पता नहीं चला। पुलिस महाकाल मंदिर में भी गई; लेकिन वह कुरता-पायजामाधारी क्रांतिकारी को खोजती रही। पंडे के रूप में छैलबिहारी को वह नहीं पहचान सकी। छैलबिहारी उज्जैन छोड़कर अजमेर जा पहुँचा।

इसके पहले छैलबिहारी कई महत्त्वपूर्ण अभियानों में चंद्रशेखर आजाद का साथ दे चुका था। जब भगतसिंह को जेल से छुड़ाने के लिए चुने हुए क्रांतिकारी लाहौर की बहावलपुर कोठी में एकत्र हुए थे तो उस कोठी में छैलबिहारी को नौकर की भूमिका दी गई थी। उस अभियान के पहले ही रावी के किनारे बम विस्फोट के कारण साथी भगवतीचरण बोहरा शहीद हो गए और एक रात कोठी में रखे दो बम अपने आप फट गए। इन दुर्घटनाओं के कारण भगतसिंह को जेल से छुड़ाने का अभियान स्थगित कर दिया गया और छैलबिहारी को दुर्गा भाभी एवं सुशीला दीदी के साथ दिल्ली भेज दिया गया।

छैलबिहारी की विशेषता यह थी कि वह हर भूमिका को बखूबी निभा सकता था।

□



★ जगदीशचंद्र राय



जगदीशचंद्र राय

क्रांतिकारी सुखदेवराज की समझ में यह नहीं आ रहा था कि वह क्या करे? देखते-ही-देखते पार्टी के दो दिग्गज शहीद हो चुके थे। पहले तो चंद्रशेखर आजाद इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में युद्ध करते हुए शहीद हुए और फिर भगतसिंह को फाँसी हुई। इने-गिने लोगों को छोड़कर लगभग सभी साथी सीखचों के अंदर बंद थे। जो लोग बाहर रह गए थे, वे स्वयं को गिरफ्तार होने से बचाने के लिए इधर-उधर छिपते फिर रहे थे। उस समय न तो कोई संगठन का कार्य हो रहा था और न ही कोई योजना क्रियान्वित हो रही थी। सुखदेवराज उन दिनों पार्टी के एक सहायक युवक जगदीशचंद्र राय के साथ लखनऊ के मेस्टन होस्टल में ठहरा हुआ था। जगदीशचंद्र राय पंजाब के डेरा इस्माइलखाँ स्थान का रहनेवाला था और उस समय वह लखनऊ विश्वविद्यालय में बी.ए. का विद्यार्थी था। विचारों से वह कट्टर क्रांतिकारी और देशभक्त था।

पार्टी की एक क्रांतिकारिणी सुशीला दीदी ने लखनऊ पहुँचकर सुखदेवराज से मेस्टन होस्टल में भेंट की। जगदीशचंद्र राय की उपस्थिति में ही बात हुई। सुशीला दीदी ने सुखदेवराज से शिकायत के लहजे में कहा—

''यदि आप लोगों से कुछ नहीं हो रहा तो अब हम स्त्रियों को ही कुछ करना पड़ेगा।''

सुशीला दीदी का आशय था कि पार्टी के रत्न आजाद भैया तथा भगतसिंह

शहीद हो चुके हैं और हम लोग हाथ-पर-हाथ रखकर बैठे हैं। बात सुखदेवराज को चुभ गई। वह बोला—

''दीदी! अब आप जो आदेश दें, मैं वह करने को तैयार हूँ।''

सुशीला दीदी का उत्तर था—

''दिल्ली चलो। वहीं तय करेंगे कि क्या करना है!''

सुखदेवराज दिल्ली जाने के लिए तैयार हो गया। जगदीशचंद्र राय उसे पहुँचाने स्टेशन तक गया। गाड़ी ने चलने की सीटी दे दी, पर जगदीशचंद्र राय ट्रेन से नहीं उतरा। सुखदेवराज ने कहा था—

''गाड़ी चलने वाली है, तुम जल्दी नीचे उतर जाओ।''

जगदीशचंद्र राय ने अपनी जेब से दिल्ली का टिकट निकालकर सुखदेवराज को दिखा दिया। मतलब यह था कि वह भी सुखदेवराज के साथ जाने के लिए कृत संकल्प था और आगामी योजना में वह भी सम्मिलित होना चाहता था। आजाद की शहादत के पश्चात् कुछ कर गुजरने के लिए उसका मन छटपटा रहा था।

दिल्ली में सुशीला दीदी ने उन दोनों के ठहरने का प्रबंध कर दिया। गिरफ्तार होकर उस समय एक क्रांतिकारी साथी धनवंतरी भी दिल्ली की जेल में ही था और सुशीला दीदी का उसके साथ संपर्क था। बहुधा संदेशों का आदान-प्रदान हो जाया करता था। सुशीला दीदी धनवंतरी से किसी संदेश के पाने की प्रतीक्षा कर रही थीं। उन्हें संदेश मिल गया। धनवंतरी के पास से कागज की एक परची उनके पास पहुँच गई थी। उस परची पर लिखा था—

'अगला पड़ाव, लाहौर में क्रेक योजना।'

क्रांतिकारियों को इस प्रकार की सांकेतिक भाषा समझने में कोई कठिनाई नहीं होती थी। इस छोटे से वाक्य में यह संदेश निहित था कि क्रांतिकारियों का अगला कदम लाहौर में सर हेनरी क्रेक का वध होना चाहिए। सर हेनरी क्रेक पंजाब शासन का मुख्य सचिव था। भगतसिंह को फाँसी पर लटकाने में उसने मुख्य भूमिका का निर्वाह किया था। भगतसिंह को एक दिन पहले फाँसी उसीकी योजना के अनुसार दी गई थी। यह स्वाभाविक ही था कि क्रांतिकारी लोग उससे बदला लेते। उसके वध की योजना बना ली गई।

सुखदेवराज अपनी पिस्तौल की सफाई करने लगा। जगदीशचंद्र राय उसके सामने ही बैठा था। पिस्तौल में कारतूस भर दिए गए। सेफ्टी क्लच लगाया है या नहीं, यह सुखदेवराज को ध्यान नहीं रहा। उसका खयाल था कि सेफ्टी क्लच लगा दिया गया है। बातों-ही-बातों में उसने घोड़ा दबा दिया और गोली चल गई। गोली जगदीशचंद्र राय के कान के ऊपर से सनसनाती हुई निकल गई। सुखदेवराज के होश

उड़ गए। गनीमत यह रही कि जगदीशचंद्र बाल-बाल बच गया। सुखदेवराज ने पूछा—

''कहीं चोट तो नहीं लगी?''

मुसकराते हुए जगदीशचंद्र राय ने उत्तर दिया—

''चिरागे-सहर हूँ, बुझा चाहता हूँ।''

जगदीशचंद्र राय की जुबान पर अकसर यह शेर रहा करता था—

'कोई दम का महमां हूँ, ऐ अहले महफिल!
चिरागे-सहर हूँ, बुझा चाहता हूँ।'

फाँसी पर झूलने के पहले भगतसिंह यह शेर अकसर कहा करते थे।

बात आई-गई हो गई। उसी शाम को सुखदेवराज और जगदीशचंद्र राय लाहौर के लिए प्रस्थित हो गए। एक सज्जन दुर्गादास कालिया के घर ठहर गए। ये सज्जन बातें तो बहुत बघारते थे, पर कभी उन्हें आजमाया नहीं गया था।

२ मई, १९३१ को एक लेडी डॉक्टर मिस लीला एक हैंड बैग लेकर सुखदेवराज के पास पहुँचीं। उन्हें वह बैग देकर उन्होंने कहा—

''यह उपहार सीमा पार से आया है।''

डॉ. लीला उपहार देकर चली गईं। दुर्गादास कालिया और जगदीशचंद्र राय की उपस्थिति में ही सुखदेवराज ने वह बैग खोला। उसमें कुछ नोट थे और एक बम। उस समय सुखदेवराज ने पार्टी की एक सदस्य मायादेवी (खोखी) को बुलवाकर उन्हें वह बम अपने पास रखने के लिए दे दिया। शाम हो गई।

दुर्गादास कालिया घबराया हुआ सुखदेवराज के पास पहुँचा और बोला—

''ऐसा लगता है जैसे आप लोगों के यहाँ होने की सूचना पुलिस को लग गई है। पुलिस मकान का घेरा डाले, इसके पहले ही आप लोग यहाँ से खिसक जाइए।''

जल्दी-जल्दी में सुखदेवराज और जगदीशचंद्र राय वहाँ से निकल गए। जाते-जाते सुखदेवराज दुर्गादास से कहता गया—

''रात को हम लोग कहीं सो रहेंगे। दोपहर का भोजन हमें शालीमार बाग में पहुँचा देना।''

सुखदेवराज और जगदीशचंद्र राय ने रात कहीं खेतों की फसलों में सोकर बिताई। सुबह वे लोग लाहौर के शालीमार बाग में पहुँच गए। दुर्गादास कालिया ने दोपहर का खाना वहाँ पहुँचा दिया। खाना खाकर उन लोगों ने सोचा कि थोड़ी-सी नींद ली जाए, क्योंकि पिछली रात खेतों में नहीं आ पाई थी। दोपहर का भोजन करके दोनों ही पृथक्-पृथक् झाड़ियों में सो गए। दोनों को गहरी नींद लग गई।

थोड़ी देर पश्चात् सुखदेवराज को ऐसा लगा जैसे तेजी से भाग-दौड़ हो रही है। जब उसने आँखें खोलीं तो देखा कि दस-बारह सिपाहियों ने उसे दबोच रखा है। उसे गिरफ्तार करके पुलिस स्टेशन ले जाया गया। वह यह जानने को उत्सुक था कि जगदीशचंद्र राय का क्या हुआ!

थोड़ी देर पश्चात् दो पुलिस अफसर आपस में बातें करते हुए सुने गए—

"सुखदेवराज के साथी की लाश पोस्टमार्टम के लिए भेज दी गई है।"

इस बातचीत से सुखदेवराज को यह तो मालूम हो गया कि उसका साथी जगदीशचंद्र राय मारा गया है। नींद में उसने गोलियाँ चलने की आवाज भी सुनी थी। ३ मई, १९३१ को सुखदेवराज गिरफ्तार करके जेल में डाल दिया गया और उसका नौजवान साथी जगदीशचंद्र राय पुलिस की गोलियों का शिकार हो गया।

पुलिस ने सुखदेवराज से पूछताछ की—

"वह बम कहाँ है?"

"कौन-सा बम?"

"बनो मत। वही बम, जो डॉक्टर लीला तुमको दे गई थी।"

सुखदेवराज हैरान था कि बमवाली बात पुलिस को कैसे मालूम पड़ी।

अगले दिन समाचार-पत्रों में पुलिस द्वारा दिया गया समाचार पढ़ने को मिला। समाचार था कि सुखदेवराज नाम का क्रांतिकारी पुलिस द्वारा गिरफ्तार कर लिया गया और जगदीशचंद्र राय नाम का उसका साथी क्रांतिकारी पुलिस का मुकाबला करते हुए मारा गया।

मुकाबले की कहानी पुलिस की मनगढ़ंत थी। जगदीशचंद्र राय पूर्णरूप से निहत्था था और उस निहत्थे पर पुलिस ने कई गोलियाँ चलाकर उसे समाप्त कर दिया था। सुखदेवराज के पास पिस्तौल बरामद भी हुई; पर जगदीशचंद्र राय के पास तो कोई भी हथियार नहीं था। पुलिस ने यह भी घोषित किया था कि जगदीशचंद्र राय एक फरार अभियुक्त था। यह घोषणा भी उसने एक निर्दोष और निहत्थे नौजवान को गोलियों से भून डालने के पाप को छिपाने के लिए की थी। अपराध प्रमाणित न हो, इस कारण पुलिस ने जगदीशचंद्र का दाहकर्म स्वयं ही कर डाला था।

पुलिस द्वारा गढ़ी हुई कहानी का भंडाफोड़ उस समय हुआ, जब जगदीशचंद्र राय के पितामह श्री ठाकुरदत्त धवन ने पुलिस के बयान को चुनौती दी। श्री ठाकुरदत्त धवन को रायबहादुर की उपाधि मिली हुई थी। वे डिस्ट्रिक्ट एंड सेशन जज रह चुके थे और घटना के समय वे डेरा इस्माइल खाँ के फ्रंटियर बैंक लिमिटेड के प्रबंध संचालक थे। उनका वक्तव्य था—

"मेरे पोते जगदीशचंद्र के संबंध में, जो ३ मई को शालीमार बाग में पुलिस

की गोलियों का शिकार हुआ था, समाचार-पत्रों में अनेक भ्रांतिपूर्ण बातें छपी हैं। कुछ समाचार-पत्रों में कहा गया है कि जगदीशचंद्र किसी षड्यंत्र केस का फरार अभियुक्त था, जो सर्वथा निराधार और झूठा है। जहाँ तक उसके संबंध में हम लोगों को ज्ञात है, न तो वह किसी मामले में गिरफ्तार ही हुआ और न उसने कभी किसी षड्यंत्र में भाग ही लिया था, और न आज तक विभिन्न षड्यंत्र केसों के किसी भी सरकारी गवाह ने अपने बयान में उसका नाम ही लिया है। पिछले एक वर्ष से वह लखनऊ कॉलेज के एक बोर्डिंग-हाउस में रहकर पढ़ रहा था। थर्ड ईयर (बी.ए.) की परीक्षा पास करके वह अपनी गरमी की छुट्टियाँ बिताने के लिए डेरा इस्माइलखाँ आ रहा था। उसका एकमात्र अपराध यही कहा जा सकता है कि वह एक फरार कहे जानेवाले व्यक्तियों के पास बैठा हुआ पाया गया और शायद अपनी गिरफ्तारी के भय से वह भाग निकलना चाहता था।''

रायबहादुर ठाकुरदत्त धवन के वक्तव्य से पुलिस बेनकाब हो गई। बड़ी विचित्र बात थी कि दो व्यक्तियों को घेरने के लिए पुलिस के चार सौ सशस्त्र जवान वहाँ लगाए गए थे। पुलिस ने उस निहत्थे व्यक्ति से आत्मसमर्पण करने के लिए भी नहीं कहा। कई गोलियाँ चलाकर उसे सचमुच भून डाला गया।

भगतसिंह की राह पर चलकर जगदीशचंद्र राय ने अपनी कुर्बानी दे दी। जो शेर वह कहा करता था, उसके लिए चरितार्थ हो गया—

'कोई दम का महमां हूँ, ऐ अहले महफिल!
चिरागे-सहर हूँ, बुझा चाहता हूँ।'

□

★ जयदेव कपूर

शिव वर्मा के पास दिल्ली से उनके एक मित्र का पत्र पहुँचा था। मित्र ने लिखा था—

'एक पंजाबी महाशय तुमसे और जयदेव से मिलने कानपुर पहुँच रहे हैं।'

शिव वर्मा को किसी पंजाबी महाशय के आने का विचार अच्छा नहीं लगा। उस समय तक वे क्रांतिकारियों की संस्था 'हिंदुस्तान प्रजातंत्र संघ' के सदस्य बन चुके थे। हर किसीसे मिलने में खतरा भी रहता था। मिलनेवालों में खुफिया विभाग के लोग भी तो हो सकते हैं। जयदेव और शिव दोनों डी.ए.वी. कॉलेज, कानपुर के छात्र थे और छात्रावास में रहते थे। दोनों ने मिलकर पंजाबी महाशय से मिलने की



जयदेव कपूर

रणनीति निश्चित की। शिव वर्मा का कथन था—''उन पंजाबी महाशय ने हम दोनों से भेंट करने की इच्छा प्रकट की है। इस विषय में तुम क्या सोचते हो, जयदेव?''

जयदेव ने उत्तर दिया—''मैं वही सोचता हूँ, जो तुम सोच रहे हो। यदि वह व्यक्ति सी.आई.डी. का आदमी है तो वह हम दोनों को क्यों फाँसे! हममें से कोई एक व्यक्ति तो उसकी पहचान से बचे।''

''तुम ठीक कहते हो, जयदेव। यदि वह व्यक्ति पहले मेरे पास आता है तो मैं कह दूँगा कि जयदेव यहाँ नहीं है। और यदि वह तुम्हारे पास पहले पहुँचता है तो तुम कह देना कि शिव वर्मा यहाँ नहीं है।''

यह रणनीति निश्चित हो गई। सावधानी के तौर पर उन दोनों ने अपने-अपने कमरों में से वह सबकुछ हटा दिया, जो आपत्तिजनक की श्रेणी में आ सकता था। जयदेव के कमरे में एक गांधी चरखा भी रखा रहता था। वह भी हटा दिया गया।

पंजाबी महाशय कानपुर पहुँच गए। पहले शिव वर्मा से उनकी भेंट हुई। पहली मुलाकात में ही उन महाशय ने शिव वर्मा के सब हथियार छीन लिये। सारी मोरचाबंदी विफल हो गई। उनके पूछने पर कि 'जयदेव कहाँ है', बड़ी मुश्किल से शिव वर्मा कह पाए कि इस समय वह यहाँ नहीं है। उन महाशय ने यह भी ताड़ लिया कि यहाँ शिव वर्मा झूठ बोल रहे हैं। वे कुछ उदास हो गए। उन्होंने परिचय में अपना नाम रणजीत बताया और कहा कि हम लोग एक ही राह के राहगीर हैं। शिव वर्मा को अपने झूठ बोलने पर अफसोस हुआ।

दोपहर के समय शिव वर्मा रणजीत को भोजन कराने मैस में ले गए। टेबल पर दोनों पास ही बैठे। रणजीत की दूसरी तरफ जयदेव जाकर बैठ गए। रणजीत ने सोचा कि छात्रावास का कोई अन्य छात्र होगा। उसकी तरफ ध्यान नहीं दिया। अवसर पाकर जयदेव कपूर ने रणजीत की थाली में रखी हुई दाल की कटोरी में गरम घी का जोरदार छौंक लगा दिया। मुड़कर रणजीत ने देखा। घी का छौंक लगानेवाला मुसकरा रहा था। रणजीत ने बिना अधिक परेशान हुए कह दिया—''कौन, जयदेव?'' अपनी चोरी पकड़ी जाने पर शिव वर्मा खिसियाई हुई हँसी

हँसने लगे। रणजीत नामधारी भगतसिंह ने एक जोर का घूँसा शिव वर्मा की पीठ पर जमाते हुए कहा—

''चोर कहीं के! लगता है, अपनों को सहेजकर रखने की आदत है!''

शिव वर्मा ने उत्तर दिया—

''क्या उत्तर दूँ! इस समय तो तुम्हारे घूँसे ने सबकुछ भुला दिया है।''

प्रथम परिचय प्रगाढ़ मैत्री में परिणत हो गए। एक ही मुलाकात में वे लोग जीवन-मरण के साथी बन गए। आगे की योजनाएँ तय हो गईं।

जयदेव कपूर और शिव वर्मा, दोनों ही हरदोई के रहनेवाले थे। वैसे जयदेव का जन्म सन् १९०८ में शाहाबाद तहसील में हुआ था। अपने पिता श्री शालिग्राम कपूर से जयदेव ने कट्टर आर्यसमाजी संस्कार पाए। छोटे महाराज के अखाड़े में और ठाकुर रणसिंह के चरणों में बैठकर कुश्ती के दाँव-पेंच सीखे। हाई स्कूल के प्रधानाचार्य श्री अयोध्यासिंह से सिद्धांतों के प्रति अडिगता सीखी और अपने बचपन की एक घटना से अंग्रेजों के प्रति विद्रोह की भावना उत्पन्न कर ली।

उस समय बालक जयदेव की अवस्था लगभग आठ वर्ष की रही होगी। अपने पिता के साथ बैलगाड़ी में बैठे हुए वे हरदोई से पिनाही जा रहे थे। दो अंग्रेज घुड़सवार पीछे से आते हुए दिखाई दिए। वे चिल्लाते आ रहे थे—

''हटो! रास्ता दो! कप्तान साहब की सवारी आ रही है।''

गाड़ीवान अपनी गाड़ी को एक तरफ हटाने की कोशिश करे, इसके पहले ही एक घुड़सवार ने हिंदी-अंग्रेजी में कुछ गालियाँ देते हुए बैलों की पीठ पर दो हंटर जमा दिए और आगे बढ़ गया। अपने बैलों की पीठ पर हंटर के निशानों को देखकर बालक जयदेव का कोमल मन विद्रोह से फुफकार उठा। उसी लहजे में उस बालक ने हंटर मारनेवाले अंग्रेज के प्रति कुछ अपशब्द कहे। इस विचार से कि कहीं कोई मुसीबत न आ जाए, पिता ने जयदेव के मुँह पर अपना हाथ रख दिया। पिता द्वारा इस तरह रोक दिए जाने पर वाणी को तो रास्ता नहीं मिला, भावनाओं ने तो विद्रोह का रास्ता खोज ही निकाला। देश में घटित होनेवाली अत्याचारी घटनाओं ने बालक जयदेव के विद्रोहांकुर को एक विशाल वृक्ष का रूप प्रदान कर दिया और एक युवक के रूप में जब वह कानपुर के डी.ए.वी. कॉलेज में प्रविष्ट हुआ तो उसे लगा जैसे वह उस स्थान पर पहुँच गया है, जहाँ वह पहुँचना चाहता था। अपने साथी शिव वर्मा के साथ अब वह 'हिंदुस्तान प्रजातंत्र संघ' का एक सैनिक था और उस समय उसके सेनापति थे प्रसिद्ध क्रांतिकारी शचींद्रनाथ सान्याल।

भगतसिंह से परिचय स्थापित होने के बाद जयदेव कपूर का परिचय चंद्रशेखर आजाद से भी हुआ। जयदेव कपूर को लगा कि इन साथियों के साथ

जीवन और मरण के खेल खेलते हुए बहुत आनंद आएगा।

पूर्व निश्चित योजना के अनुसार जयदेव कपूर को पंजाब पहुँचना था; लेकिन वहाँ एक विशेष घटना घटित हो गई। लाहौर में रामलीला देख रहे लोगों पर किसीने बम फेंक दिया और पुलिस ने संदेह में भगतसिंह को गिरफ्तार कर लिया। वास्तव में भगतसिंह को गिरफ्तार करने के लिए यह पुलिस द्वारा रचा गया षड्यंत्र था। भगतसिंह ने जेल से जयदेव कपूर के पास यह समाचार भिजवा दिया कि वे पंजाब न आएँ।

बनारस की क्रांति उर्वर भूमि से कुछ सैनिकों का चयन करने के लिए पार्टी ने जयदेव कपूर को बनारस का संगठक बनाकर भेजा। जयदेव बनारस विश्वविद्यालय में बी.एस-सी. की पढ़ाई संपन्न करने के लिए प्रविष्ट हो गए और अपना काम करने लगे। बी.एस-सी. करने के बाद वे इंजीनियरिंग कॉलेज में भरती हुए और अपना क्रांति संगठन का काम करते रहे। जेल से मुक्त होकर भगतसिंह भी बनारस पहुँचे तथा जयदेव कपूर के साथ कुछ दिन लिम्डी होस्टल में रहे।

क्रांति के क्षेत्र में जो यह नया खून उभरा था, वह अनुभव कर रहा था कि क्रांति की पारंपरिक व्यवस्था और दादा डम को समाप्त करके इस प्रकार की व्यवस्था की जाए कि सारे भारतवर्ष के क्रांतिकारी एक मंच से समान भागीदारी के सिद्धांत से देशभक्ति के आंदोलन में कूद पड़ें। इस विचार को कार्यरूप में परिणत करने के लिए दिल्ली में फिरोजशाह कोटला के खंडहरों में ८ और ९ सितंबर १९२८ को अखिल भारतीय स्तर पर क्रांतिकारियों की एक बैठक आयोजित की गई। इस बैठक में जयदेव कपूर भी सम्मिलित हुए और जब भगतसिंह ने यह प्रस्ताव रखा कि पार्टी का नाम 'हिंदुस्तान प्रजातंत्र संघ' की बजाय उसमें 'समाजवादी' शब्द जोड़कर उसका नाम 'हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र संघ' रखा जाए तो जयदेव कपूर ने प्रस्ताव का केवल समर्थन ही नहीं किया, उन्होंने समाजवाद की जोरदार वकालत भी की। बैठक में यह भी निर्णय लिया गया कि संघ का कार्य 'सेना विभाग' और 'संगठन विभाग' के माध्यम से हो। जयदेव कपूर को सेना विभाग में रखा गया। उन्हें पार्टी द्वारा घर-परिवार छोड़कर फरारी जीवन व्यतीत करने का आदेश दिया गया।

पार्टी के सामरिक विभाग ने एक कार्यक्रम निश्चित किया कि पार्टी का मुख्यालय आगरा बनाकर काकोरी केस के एक नायक योगेशचंद्र चटर्जी को बलपूर्वक जेल से मुक्त कराया जाए। इस योजना को क्रियान्वित करने में जयदेव कपूर ने बहुत श्रम किया; पर किसी कारण वह योजना क्रियान्वित नहीं की जा सकी। इस बीच आगरा में रहकर जयदेव कपूर ने बम बनाने का प्रशिक्षण प्राप्त किया।

आगरा के पश्चात् पार्टी का मुख्यालय दिल्ली स्थानांतरित किया गया। वहाँ रहकर एक ऐसी योजना पूर्ण की गई, जिसने क्रांतिकारियों को बहुत लोकप्रिय बना दिया और जिसने क्रांतिकारी आंदोलन को जन आंदोलन बना दिया।

दो बिल भारत सरकार के विचाराधीन थे। एक था 'पब्लिक सेफ्टी बिल'। इस बिल का बहाना लेकर सरकार एक ऐसा कानून बनाने जा रही थी, जिसके द्वारा किसी भी व्यक्ति को गिरफ्तार करके जेल में डाला जा सकता था। ऐसा ही दूसरा बिल था 'ट्रेड डिस्प्यूट बिल'। इस बिल के द्वारा सरकार श्रमिकों के हड़ताल करने के अधिकार को समाप्त करना चाहती थी। पार्टी की केंद्रीय समिति ने इन बिलों का विरोध करने का निर्णय लिया। यह निश्चित हुआ कि जिस दिन सरकार इन बिलों को वाइसराय के विशेषाधिकार से कानून में परिवर्तित करे, उस दिन पार्टी के दो सदस्य बम का विस्फोट कर परचों का वितरण करें और अपनी गिरफ्तारियाँ दें। दो साथियों को चुनने के लिए जिन नामों पर विचार हुआ, उनमें जयदेव कपूर का नाम भी था। अंततोगत्वा भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त का चयन इस काम के लिए हो गया।

इस कार्य को संपन्न करने के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की जयदेव कपूर ने। प्रतिदिन वे अनुमति-पत्रों का प्रबंध करके साथियों को असेंबली भवन की दर्शक दीर्घाओं में ले जाते रहे और यह निश्चित करने में सहयोग दिया कि घटनावाले दिन साथी लोग किस स्थान पर उन बमों का विस्फोट करेंगे। एक दिन जयदेव कपूर चंद्रशेखर आजाद को भी असेंबली की दर्शक दीर्घा में ले गए और उन्हें पूरा मौका-मुआयना करा दिया।

जयदेव कपूर ने असेंबली भवन में अंदर जाने के लिए अनुमति-पत्रों की बड़ी अच्छी व्यवस्था कर ली। उन्होंने स्वयं को दिल्ली कॉलेज का अर्थशास्त्र पढ़नेवाला छात्र घोषित किया, जिसका उद्देश्य था असेंबली के पुस्तकालय का उपयोग करना। इस कार्य से वे एक कक्ष से दूसरे कक्ष तक कई बार आ-जा सकते थे। चौकसी दफ्तर के अधिकारी से परिचय हो जाने पर उन्हें अनुमति-पत्र प्राप्त कर लेने में कोई कठिनाई नहीं होती थी। कांग्रेसी सदस्यों से चिट्ठी लेकर भी पास बनवा लिये जाते थे। इस प्रकार जयदेव कपूर अपने कई साथियों को असेंबली भवन में निरीक्षण करा लाए। आखिर ८ अप्रैल, १९२९ को क्रांतिकारियों ने असेंबली भवन में बम विस्फोट करने की अपनी योजना पूरी कर डाली।

अपने दिल्ली प्रवास में जयदेव कपूर को एक और महत्त्वपूर्ण योजना में सम्मिलित किया गया था। वह योजना थी वाइसराय लॉर्ड इरविन पर बम प्रहार करके उसे मारने की।

वाइसराय महोदय आई.सी.एस. अफसरों द्वारा दिए जानेवाले एक भोज में सम्मिलित होने वाले थे। क्रांतिकारियों को इस तथ्य की सूचना मिल गई थी। इस अभियान के लिए शिव वर्मा, जयदेव कपूर और राजगुरु चुने गए। पहले तो उन्होंने वाइसराय के आने-जाने के मार्ग में खड़े होकर वाइसराय और उनकी गाड़ी की अच्छी तरह पहचान कर ली। वाइसराय की गाड़ी के आगे-आगे पायलट के रूप में एक मोटर साइकिल सवार चलता था। वाइसराय की गाड़ी के पीछे सुरक्षा गार्ड की गाड़ी चलती थी। उन्होंने यह भी निरीक्षण कर लिया कि वाइसराय की गाड़ी पर 'ताज' का चिह्न रहता था।

मोरचाबंदी इस प्रकार की गई कि पहले मोरचे पर साथी राजगुरु को खड़ा किया गया। उनका काम केवल इतना था कि वे वाइसराय को पहचानकर संकेत देंगे। कुछ दूरी पर दूसरे मोरचे पर बम का प्रहार करने के लिए जयदेव कपूर को नियुक्त किया गया। तीसरे मोरचे पर शिव वर्मा को इसलिए नियुक्त किया गया कि यदि किसी प्रकार साथी जयदेव कपूर के प्रहार से वाइसराय बचता था तो उसपर शिव वर्मा प्रहार करेंगे। यह भी निश्चित हुआ कि यदि बच सकें तो तीनों साथी बचकर निकलने का प्रयत्न करेंगे, अन्यथा सभी लड़ते-लड़ते मारे जाएँगे।

वाइसराय भवन से वाइसराय महोदय की गाड़ी निकली। जब वह राजगुरु के सामने से निकली तो राजगुरु ने देखा कि उसमें केवल ड्राइवर और तीन महिलाएँ हैं। राजगुरु ने मारने का संकेत नहीं दिया। राजगुरु का संकेत न पाकर जयदेव कपूर और फिर शिव वर्मा बहुत परेशान हुए। जब गाड़ी उन लोगों के सामने से निकली तो उनकी समझ में आ गया कि राजगुरु ने मारने का संकेत क्यों नहीं दिया। इस कार्य के लिए राजगुरु की बहुत प्रशंसा हुई।

योजना यह निश्चित हुई कि दिल्ली स्थित बम फैक्टरी वहाँ से हटाकर सहारनपुर में खोली जाए। सहारनपुर में बम फैक्टरी खोलने के लिए जयदेव कपूर, शिव वर्मा और डॉ. गयाप्रसाद को भेजा गया। उन्होंने जैसे-तैसे सहारनपुर के लक्कड़खाना मोहल्ले में एक मकान किराए पर ले लिया। दिल्ली की बम फैक्टरी का सामान सहारनपुर भेजा जाने लगा। यह तो हो गया, लेकिन धनाभाव के कारण डॉ. गयाप्रसाद उस मकान को डिस्पेंसरी का रूप नहीं दे सके। सामनेवाले कमरे में एक खूँटी पर उनका स्टैथेस्कोप टँगा रहता था और वे स्वयं एक पटिए पर बैठकर कोई पुस्तक पढ़ा करते थे। ड्रेसर और कंपाउंडर के रूप में जयदेव कपूर तथा शिव वर्मा भी किसी पुस्तकालय में जाकर पुस्तकें या अखबार पढ़ा करते थे। लोगों को इनपर राजनीति के आदमी होने का शक होने लगा। एक दिन एक खुफिया पुलिसवाले ने, जो खादी के कपड़े पहने था, पूछा भी—"आप लोगों का क्रांतिकारियों से तो

कोई संबंध नहीं है ? आजकल यहाँ पुलिस बहुत सक्रिय है। सँभलकर रहिएगा।''

डॉ. गयाप्रसाद ने लापरवाही से कह दिया—

''जिसका क्रांतिकारियों से संबंध हो, वह सँभलकर रहे। हम लोग तो इंतजार कर रहे हैं कि घर से पैसा आए और हम अपनी डिस्पेंसरी जमाएँ।''

पैसे का प्रबंध करने के लिए डॉ. गयाप्रसाद को कानपुर जाना पड़ा। अपने दोनों साथियों से वे कह गए कि मैं बहुत शीघ्र आऊँगा। इस बीच जयदेव कपूर को ऐसा आभास हुआ कि उनपर नजर रखी जा रही है। उन्होंने अपना संदेह शिव वर्मा पर प्रकट भी किया। तय यह हुआ कि रात को बारी-बारी से एक साथी सोएगा और दूसरा पहरा देगा। एक रात इस प्रकार निकाल दी गई। सुबह हो जाने पर वे दोनों नीचे जाकर चारपाइयों पर सो गए। गहरी नींद लग गई। थोड़ी देर बाद किसीने बाहर का दरवाजा जोर-जोर से खटखटाया। जयदेव की नींद लगी रही, शिव वर्मा ने सोचा कि डॉ. गयाप्रसाद आ गए। अपना हथियार तकिए के नीचे ही रखा छोड़कर वे दरवाजा खोलने के लिए चल दिए। दरवाजा खोला तो स्वयं को पुलिस से घिरा हुआ पाया। डिप्टी सुपरिंटेंडेंट पुलिस मथुरादत्त जोशी ने दबिश दी थी। वे अपने साथ शहर कोतवाल मि. राजपूत और उनके अमले को भी लाए थे। डिप्टी साहब ने शिव वर्मा को सँभाला और वे सामने के कमरे की तलाशी लेने लगे। अंदर जाकर शहर कोतवाल सिपाहियों को साथ लेकर गए और सोते हुए जयदेव कपूर को धर दबोचा। बीच के कमरे में जब शिव वर्मा को लाया गया तो तलाशी देते समय एक बम उनके हाथ लग गया और उन्होंने कहा—

''लो, अब मरो सब लोग, मैं बम फोड़ता हूँ।'' जिसको जिधर रास्ता मिला, वह उधर भागा। डिप्टी साहब सड़क पर पहुँच गए और कोतवाल किवाड़ की ओट लेकर पास ही छिपा रहा। उसने जान पर खेलकर शिव वर्मा को काबू में कर लिया। आवाज लगाई तो डिप्टी साहब भी अंदर आ गए। अब लगे वे अपनी दिलेरी बघारने। वे जयदेव कपूर को धमका रहे थे—''मैं तुम्हें शूट कर दूँगा।''

जयदेव कपूर का स्वभाव हमेशा से ही विनोदी रहा है। डिप्टी साहब की धमकियों को सुनकर उन्होंने क़हा—''आप हमें बेशक शूट कर दीजिए, लेकिन जरा अपनी और अपनी पिस्तौल की तरफ तो देख लीजिए।''

सभी ने देखा कि डिप्टी साहब के हाथ इस तरह थर-थर काँप रहे थे जैसे हवा में पीपल के पत्ते काँपते हैं और उनकी पिस्तौल की नली जयदेव की तरफ न होकर जमीन की तरफ थी। उनकी यह हालत देखकर सिपाही लोग भी उनपर हँस पड़े। पुलिस दोनों क्रांतिकारियों को गिरफ्तार करके पुलिस स्टेशन ले गई। उधर डिप्टी साहब ने एस.पी. साहब के पास पहुँचकर उन्हें खबर दी कि मैंने उन

क्रांतिकारियों को गिरफ्तार कर लिया है, जिनके लिए इनाम घोषित थे।

पुलिस ने शिव वर्मा और जयदेव कपूर को गिरफ्तार करके उन्हें लाहौर षड्यंत्र केस में सम्मिलित करने के लिए लाहौर भेज दिया।

लाहौर पहुँचकर उन दोनों को अब दूसरी तरह की लड़ाई लड़नी पड़ी। जेल के दुर्व्यवहार के विरोध में उन लोगों ने सामूहिक अनशन घोषित कर दिया। पुलिस के साथ कभी-कभी मारपीट भी हो जाती थी। मारपीट में जयदेव कपूर हौसले के साथ हिस्सा लेते थे। वे मार लगाते भी ज्यादा थे और खाते भी ज्यादा थे। ऐतिहासिक अनशन में भी बलात्पान के विरोध में उनका प्रतिरोध तगड़ा होता था।

जब लाहौर षड्यंत्र केस का फैसला सुनाया गया तो जयदेव कपूर को आजीवन कालेपानी की सजा घोषित की गई। फाँसी की सजा पानेवाले अपने प्यारे साथी भगतसिंह से अंतिम मुलाकात का उनको अवसर दिया गया। जेल का बड़ा दारोगा उन्हें भगतसिंह के पास ले गया। भगतसिंह अपने दोनों हाथ सीखचों से बाहर निकालकर जयदेव से मिला। यह बड़ा ही मार्मिक दृश्य था। जयदेव ने भगतसिंह से पूछा—''सरदार! तुम्हारे जीवन का अवसान निकट आ गया है। मैं जानना चाहता हूँ कि तुम्हें इसका दुःख तो नहीं है?''

यह प्रश्न सुनकर भगतसिंह ने एक जोरदार ठहाका लगाया और बोला—

''आज फाँसी की इस कोठरी में लौह-सीखचों के पीछे बैठकर जब मैं करोड़ों देशवासियों के कंठों से उठती हुई 'इनकलाब जिंदाबाद' की हुंकार सुनता हूँ तो मुझे विश्वास हो जाता है कि मेरा यह नारा स्वाधीनता संग्राम की चालक शक्ति के रूप में साम्राज्यवादियों पर अंत तक प्रहार करता रहेगा। इतनी छोटी जिंदगी का इससे अधिक मूल्य और हो भी क्या सकता है!''

मुलाकात समाप्त हो चुकी थी। चिर बिछोह प्रारंभ हो गया था। जयदेव कपूर को अपने प्यारे साथी की फाँसी का समाचार त्रिचनापल्ली जेल में मिला। जेल के उस एकांत में 'इनकलाब जिंदाबाद' का नारा गूँज उठा।

जेल जीवन के क्रम में भी जयदेव कपूर ने हमेशा ही अपनी वीरता का परिचय दिया। राजमहेंद्री जेल के अंग्रेज जेलर ने एक बार उनके ऊपर हाथ छोड़ दिया। जयदेव कपूर के दोनों हाथ हथकड़ी से कसे हुए थे। उन्होंने दोनों हाथ घुमाकर अंग्रेज जेलर पर वह प्रहार किया कि जेलर के सामने के दाँत टूट गए और वह जमीन पर गिर पड़ा। यह बात अलग है कि इस अपराध के लिए जयदेव कपूर को बीस बेंतों की सजा मिली। उन दिनों बेंतों की सजा भयंकरतम सजा मानी जाती थी। जयदेव कपूर की निर्वसन देह को एक लोहे के शिकंजे में कस दिया गया। जल्लाद अपनी पूरी शक्ति के साथ बेंत मारता था। हर बेंत के साथ इनकलाब

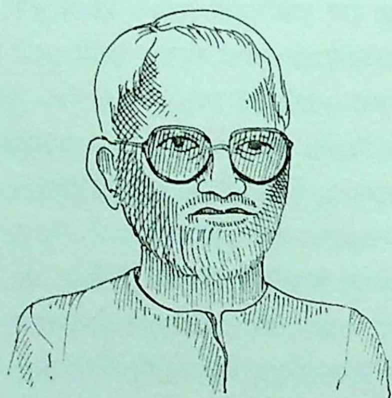
जिंदाबाद का नारा निकलता था। हर बेंत के साथ मांस के कुछ रेशे हवा में बिखर जाते थे। पूरे बेंत खाने के बाद उनकी लहूलुहान देह को लोहे के शिकंजे से खोल दिया गया। जेलर बोला—''अब तुमको अस्पताल ले जाया जाएगा।''

जयदेव कपूर ने अकड़कर कहा—''इसकी कोई जरूरत नहीं है।''

यह कहकर वे खुद ही ठसक के साथ अपनी कोठरी में चले गए। उन्हें कालेपानी भेजा गया। वहाँ भी उनकी मस्ती का वही आलम रहा। सोलह वर्षों का लंबा समय जेल में गुजारने के पश्चात् उनको मुक्ति मिली। वह मुक्ति भी अस्थायी सिद्ध हुई। उसके बाद भी जेलों में उनका आवागमन बना रहा। जयदेव कपूर के कानों में अपने साथी भगतसिंह के वे शब्द गूँजते रहे, जो उसने बिछुड़ते समय शिव वर्मा से कहे थे—'मैं तो कुछ ही दिनों में सारे झंझटों से छुटकारा पा जाऊँगा, लेकिन तुम लोगों को लंबा सफर तय करना पड़ेगा। मुझे विश्वास है कि उत्तरदायित्व के भारी बोझ के बावजूद इस लंबे अभियान में तुम थकोगे नहीं, पस्त नहीं होगे और हार मानकर रास्ते में बैठ नहीं जाओगे।'

□

★ जितेंद्रनाथ सान्याल


जितेंद्रनाथ सान्याल

जितेंद्रनाथ सान्याल को कैद करके जब लाहौर की बोर्स्टल जेल में पहुँचाया गया तो उसने एक नए जीवन की कल्पना कर ली; जिसमें जेल अधिकारियों से आएदिन झगड़े, मारपीट, जेल की आंतरिक त्रासदायी सजाएँ और भूख हड़ताल आदि कार्यक्रम सम्मिलित थे। जेल की अपनी कोठरी में पहुँचकर वह प्रतीक्षा करने लगा कि त्रासदी का प्रारंभ कहाँ से होता है। उसे यह देखकर बहुत आश्चर्य हुआ कि उसके जेल जीवन का प्रारंभ किसी उत्पीड़न से न होकर गरमागरम स्वागत से हुआ। जेल का पठान वार्डर एक दोने में गरम जलेबियाँ और एक गिलास में गरमागरम चाय लेकर पहुँचा। उसने इन वस्तुओं के साथ कागज का एक छोटा

परचा भी जितेंद्रनाथ सान्याल को दिया, जिसपर लिखा हुआ था—'रॉबिन की ओर से सप्रेम भेंट'।

सान्याल को यह समझते देर नहीं लगी कि वह गरमागरम भेंट यतींद्रनाथ दास की ओर से भेजी गई है, जो उस जेल में पहले पहुँच चुके थे। यतींद्रनाथ दास ने अपने व्यवहार से जेल के लोगों को पटा लिया था।

पहले गरमागरम स्वागत के पश्चात् जितेंद्रनाथ सान्याल के जीवन में वे सभी बातें घटित होने लगीं, जो क्रांतिकारियों के जीवन में घटित होती थीं। पुलिस ने पूछताछ प्रारंभ कर दी—

"तुमने किन-किन क्रांतिकारी कामों में भाग लिया है ?"

"... ... ..."

"बम बनाने में तुम्हारे साथ और कौन-कौन क्रांतिकारी थे ?"

"... ... ..."

"चंद्रशेखर आजाद के अड्डे कहाँ-कहाँ हैं ?"

"... ... ..."

"तुम्हारे कई साथियों ने भेद बता दिए हैं। तुम भी बताकर मुक्ति पा लो।"

"... ... ..."

जब पुलिस ने देखा कि उसके सभी प्रश्न अनुत्तरित हो रहे हैं और जितेंद्रनाथ सान्याल के होंठ भी नहीं खुलते तो उसने दूसरे हथकंडे आजमाए। उसे बर्फ की सिल्लियों पर लिटाया गया, मिर्च की धूनी दी गई; पर फिर भी उसके होंठ नहीं खुले तो नहीं खुले।

लाहौर षड्यंत्र केस के क्रांतिकारियों ने जेल अधिकारियों के दुर्व्यवहार के विरोध में भूख हड़ताल प्रारंभ कर दी। जितेंद्रनाथ सान्याल ने उसमें भी बढ़-चढ़कर भाग लिया। जेल के अधिकारियों ने हड़तालियों को बलात्पान कराना प्रारंभ कर दिया। यतींद्रनाथ दास के पेट में दूध उड़ेलने के बजाय डॉक्टर ने उसके फेफड़ों में उड़ेल दिया। यतींद्रनाथ दास की हालत बिगड़ गई। वे मरणासन्न हो गए। जितेंद्रनाथ सान्याल थे, जो स्वयं की चिंता न करके दास की सेवा में जुटे रहे।

सरकार जितेंद्रनाथ सान्याल के विरुद्ध कुछ भी सिद्ध नहीं कर सकी और उन्हें बिना कुछ सजा दिए मुक्त कर दिया गया।

□



★ सेठ दामोदर स्वरूप

यह घटना संभवत: सन् १९२७ की है। देहरादून से मसूरी जानेवाली सड़क पर 'राजपुर' नाम का एक सुंदर प्राकृतिक स्थान है। वहाँ डॉ. केशवचंद्र शास्त्री प्राकृतिक चिकित्सा करते थे। वैसे तो उनके चिकित्सालय में धनवान रोगी ही पहुँचते थे; लेकिन वे एक ऐसे रोगी का उपचार भी कर रहे थे, जो घरहीन, असहाय और मरणासन्न था। इस रोगी का नाम सेठ दामोदर स्वरूप था। वह क्रांतिकारी रह चुका था। संभवत: इसी कारण डॉ. शास्त्री उसका नि:शुल्क उपचार कर रहे थे।

सेठ दामोदर स्वरूप की परिचर्या करती थीं एक अमेरिकन महिला—मिसेज फ्रेडा दास। वे उड़ीसा के एक बड़े ताल्लुकेदार श्रीयुत दास की धर्मपत्नी थीं। श्रीमती फ्रेडा दास बड़ी तन्मयता से सेठ दामोदर स्वरूप की सेवा करती थीं। सेठजी के शरीर में केवल चमड़ी और हड्डियाँ ही रह गई थीं। बिना किसी सहारे के वे करवट भी नहीं बदल सकते थे। सीधे लेटे रहने के कारण उनकी पीठ में छाले पड़ जाते थे। फ्रेडा दास उनके जख्मों को साफ करके पाउडर आदि मलतीं और उनके पूरे शरीर को धो-पोंछकर साफ कर देती थीं। एक दिन सार्वजनिक रूप से श्रीमती फ्रेडा दास की सेवा-भावना की प्रशंसा की गई।

डॉ. शास्त्री की पत्नी भी एक अमेरिकन महिला थीं। उनके मन में फ्रेडा दास के प्रति ईर्ष्या-भाव उत्पन्न हुआ। वे और उनकी बहन माबेल अब सेठ दामोदर स्वरूप की सेवा करने लगीं। इन देवियों की आपसी खींचतान के कारण सेठजी को परेशानी होने लगी। उन दिनों क्रांतिकारी यशपाल भी वहीं थे। सेठजी अपनी परेशानी यशपाल को बताते रहते थे। कुछ दिन बाद यशपाल को वहाँ से जाना पड़ा।

यशपाल की भेंट सेठ दामोदर स्वरूप से सन् १९३० में फिर हुई, जब कानपुर में चंद्रशेखर आजाद ने दल का पुनर्गठन करने के लिए एक गोपनीय बैठक आयोजित की। उस बैठक में यशपाल और सेठ दामोदर स्वरूप ने एक-दूसरे को

पहचान लिया। सेठ दामोदर स्वरूप उस असाध्य बीमारी से मुक्त होकर फाँसी या जेल की तरफ बढ़ने लगे थे।

चंद्रशेखर आजाद ने इस विचार से कि कहीं लोग उनको क्रांतिकारी पार्टी का डिक्टेटर न समझने लगें, संगठन विभाग को सामरिक विभाग से अलग कर दिया। सामरिक विभाग तो उनकी तरफ था ही, उन्होंने संगठन विभाग के अध्यक्ष पद पर तपे हुए और पुराने क्रांतिकारी सेठ दामोदर स्वरूप का नाम प्रस्तावित किया। यह प्रस्ताव मांन लिया गया और सेठ दामोदर स्वरूप 'हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र संघ' के संगठन विभाग के अध्यक्ष बन गए। अब आवश्यकता थी दोनों विभागों के लिए पृथक्-पृथक् सचिवों की। इन दोनों क्षेत्रों में साथी भगवतीचरण बोहरा की योग्यता निर्विवाद थी। अत: उन अकेले को दोनों विभागों का सचिव निर्वाचित किया गया। इस कार्रवाई से दो तथ्य सामने आए। एक तो यह कि साथी भगवतीचरण की सेवाएँ संघ के लिए कितनी अनिवार्य थीं और दूसरी यह कि चंद्रशेखर आजाद अपने व्यक्तित्व से पार्टी के कामों को अधिक महत्त्व देते थे।

चंद्रशेखर आजाद के पक्ष में यह बात भी जाती है कि वे यह भलीभाँति जानते थे कि किस व्यक्ति से कौन-सा काम लिया जाना चाहिए।

सेठ दामोदर स्वरूप पुराने क्रांतिकारी थे। पहले वे काशी विद्यापीठ में अध्यापक थे। उन्होंने अपना क्रांतिकारी दल अलग बनाया था। बाद में उनके दल का विलय 'हिंदुस्तान प्रजातंत्र संघ' के साथ हो गया, जिसके नेता शचींद्रनाथ सान्याल थे। उन्हें 'काकोरी केस' में भी सम्मिलित किया गया था; लेकिन उनकी असाध्य बीमारी और मरणासन्न स्थिति के कारण अदालत ने उन्हें छोड़ दिया था।

सेठ दामोदर स्वरूप का चंद्रशेखर आजाद के साथ फिर काम करना इस तथ्य को प्रकट करता है कि उन्हें जेल या फाँसी का भय नहीं था और देश उनके लिए सर्वोपरि था।





★ धनवंतरी



धनवंतरी

क्रांतिकारियों में धनवंतरी के विषय में यह मशहूर था कि जो काम और किसीसे न होता हो, उसे धनवंतरी पूरा कर देगा। क्रांतिकारी दल में धनवंतरी की भरती लाहौर में हुई थी। वह लाहौर के आयुर्वैदिक कॉलेज का विद्यार्थी था। वह पहले पंजाब की गैर-क्रांतिकारी संस्था 'नौजवान भारत सभा' का सदस्य हुआ और फिर मुख्य क्रांतिकारी धारा में आ मिला।

लाहौर के छात्र जगत् में यह चेतना उद्‌भूत हुई कि 'नौजवान भारत सभा' के अतिरिक्त विद्यार्थियों का अपना एक अलग संघ होना चाहिए। इस प्रेरणा के मूल स्रोत भगवतीचरण थे। वे उस समय नेशनल कॉलेज, लाहौर के छात्र थे। इस विचार को कार्यरूप में परिणत करने के लिए लाहौर के सभी कॉलेजों के छात्रों की बैठक का आयोजन किया गया। इस बैठक की अध्यक्षता मेडिकल कॉलेज के छात्र देवराज नारंग ने की। छात्र संघ के निर्माण का प्रस्ताव रखते हुए कहा गया कि प्रस्तावित छात्र संघ छात्रों की सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक समस्याओं पर विचार करेगा। इस विचार का विरोध स्वयं अध्यक्ष तथा गवर्नमेंट कॉलेज और क्रिश्चियन कॉलेज के छात्रों ने इस रूप में किया कि 'राजनीतिक' शब्द का प्रयोग न किया जाए। भगवतीचरण का कहना था कि उद्‌देश्य में से 'राजनीतिक' शब्द न हटाया जाए; क्योंकि देश की स्थिति को देखते हुए उनमें राजनीतिक चेतना जगाना बहुत जरूरी है। दोनों पक्ष अपनी-अपनी बात पर अड़ गए। गुत्थी को सुलझाया धनवंतरी ने। उसने प्रस्ताव रख दिया कि आज के

लिए जितना विचार हो गया, वह काफी है और किसी अगले दिन बैठक आयोजित करके हम यह निर्णय ले लेंगे कि छात्र संघ के उद्देश्यों में 'राजनीतिक' शब्द रखा जाए या नहीं। बात टल गई।

मीटिंग की अगली तारीख भी निश्चित कर ली गई। भगवतीचरण और उनके साथियों के सामने समस्या यह थी कि अगली मीटिंग में भी एक बड़े दल का नेता होने के कारण देवराज नारंग उद्देश्यों में 'राजनीतिक' शब्द जोड़ने का विरोध करेगा। इस समस्या का हल भी धनवंतरी ने ही निकाला। वह बोला—

''चिंता मत करो। जम्मू का एक लड़का मेरा मित्र है और देवराज नारंग की उससे गहरी छनती है। मीटिंगवाले दिन मैं देवराज को उसके साथ भिजवा दूँगा और वह बैठक में भाग नहीं ले सकेगा।''

धनवंतरी की योजना सचमुच काम कर गई। जम्मूवाले मित्र के विशेष आग्रह से देवराज नारंग उसके साथ सिनेमा देखने चला गया। उसकी अनुपस्थिति में उसके दल का पक्ष कमजोर पड़ गया और प्रकारांतर से संघ के उद्देश्यों में 'राजनीतिक' शब्द जोड़ दिया गया।

जब साइमन कमीशन पंजाब पहुँचा तो 'नौजवान भारत सभा' ने उसका विरोध करने का निश्चय किया। लाला लाजपतराय के नेतृत्व में एक विशाल जुलूस रेलवे स्टेशन की तरफ बढ़ा। पुलिस ने कमीशन को रास्ता बनाने के लिए भीड़ पर लाठियाँ बरसाना प्रारंभ कर दिया। कुछ युवकों ने एक घेरा बनाकर लाला लाजपतराय को बीच में ले लिया। पुलिस सुपरिंटेंडेंट स्कॉट ने लालाजी पर भी लाठियाँ चलाने का हुक्म दे दिया। सहायक पुलिस सुपरिंटेंडेंट जे.पी. सांडर्स स्वयं लाठी लेकर लाला लाजपतराय पर पिल पड़ा। लालाजी को लाठियों से बचाने के लिए धनवंतरी आगे आ गया और लालाजी को बचाने के क्रम में उसने अनेक लाठियाँ खाईं। लालाजी भी लाठियों के सांघातिक प्रहार से बच न सके। कुछ दिन बाद जब लाठियों की चोट के कारण लाला लाजपतराय की मृत्यु हो गई तो लालाजी की हत्या का बदला लेने की प्रेरणा धनवंतरी ने भगतसिंह एवं सुखदेव को दी और इस काम के लिए वह उन्हें राजी करके माना।

घटनाक्रम के अंतर्गत दिल्ली के असेंबली भवन में विस्फोट करके भगतसिंह एवं बटुकेश्वर दत्त गिरफ्तार हुए और अंततोगत्वा उनको लाहौर भेज दिया गया।

लाहौर जेल से भगतसिंह एवं बटुकेश्वर दत्त को छुड़ाने के लिए जो योजना चंद्रशेखर आजाद ने बनाई, उसमें धनवंतरी को भी सम्मिलित किया गया। लाहौर की बहावलपुर कोठी में जिन क्रांतिकारियों ने अड्डा जमाया, उनमें धनवंतरी

भी एक था। इस क्रम में एक दुर्घटना हो गई। रावी के किनारे बम का परीक्षण करने गए साथी भगवतीचरण बोहरा स्वयं बम विस्फोट के शिकार हो गए और उनका निधन हो गया। उस दुर्घटना में बम का एक टुकड़ा साथी सुखदेवराज के पैर में भी लगा और वे चलने-फिरने के लायक नहीं रहे। समस्या यह थी कि किसी भी डॉक्टर के पास इलाज कराने जाते तो उसे सही-सही बताना पड़ता कि बम के टुकड़े से चोट लगी है और इस तथ्य को प्रकट करने से दल को खतरा उत्पन्न हो सकता था। इस समस्या का हल भी धनवंतरी ने खोजा। उसने अपने एक बहुत ही विश्वासपात्र डॉक्टर मित्र से साथी सुखदेवराज के पैर का इलाज करवाया और बात नहीं फैलने दी।

साथी भगवतीचरण बोहरा शहीद हो चुके थे। बहावलपुर कोठी में एक रात सब सोए हुए थे। दुर्गा भाभी, सुशीला दीदी, चंद्रशेखर आजाद तथा अन्य लोग बाहर सोए हुए थे। धनवंतरी कमरे के अंदर ही सोए हुए थे। रात्रि के लगभग तीन बजे अपने पति के निधन के कारण दुर्गा भाभी ने रोना प्रारंभ किया। जब सुशीला दीदी उनको समझाने में असमर्थ रहीं तो उन्होंने धनवंतरी को जगाकर उनसे कहा कि वे दुर्गा भाभी को समझाएँ। धनवंतरी अभी कमरे के बाहर निकले ही थे कि उनके कमरे की अलमारी के अंदर रखे दो बम अपने आप फट गए। यदि कुछ सेकंड की देर करते तो धनवंतरी स्वयं उन विस्फोटों के शिकार हो जाते। विस्फोट हो चुका था और कोठी खाली करना आवश्यक था। पुलिस किसी भी समय वहाँ पहुँच सकती थी। चंद्रशेखर आजाद और बाहर के क्रांतिकारी साथी लाहौर से अपरिचित थे। उस भीषण संकट के समय धनवंतरी बहुत काम आए। उन्होंने अपने सभी साथियों को अपने मित्रों तथा परिचितों के घर सुरक्षित रूप से पहुँचा दिया और पुलिस क्रांतिकारियों का कुछ भी भेद नहीं पा सकी।

कई कारणों से क्रांतिकारी दल बहुत कमजोर पड़ता जा रहा था। कुछ साथी शहीद हो चुके थे और कुछ गिरफ्तार हो चुके थे। दल एक प्रकार से छिन्न-भिन्न हो रहा था। ऐसी स्थिति में धनवंतरी अपने साथी भगतसिंह से जेल में भी संपर्क बनाए हुए थे। भगतसिंह के दिमाग में आया कि पृथ्वीसिंह नाम का एक तपा हुआ और अनुभवी क्रांतिकारी कहीं अज्ञातवास कर रहा है। उन्होंने सोचा कि यदि किसी प्रकार पृथ्वीसिंह की सेवाएँ हमारी पार्टी को मिल जाएँ तो हमारा छिन्न-भिन्न होता हुआ दल फिर से नया जीवन प्राप्त कर ले। पृथ्वीसिंह को खोजने और चंद्रशेखर आजाद से उन्हें मिलाने का दायित्व भगतसिंह ने धनवंतरी को दिया। काम बहुत ही मुश्किल था; लेकिन धनवंतरी ने उसे स्वीकार कर लिया।

पृथ्वीसिंह की खोज के लिए निकलने से पहले धनवंतरी ने चंद्रशेखर आजाद से मिलकर यह जानना चाहा कि क्या पृथ्वीसिंह को खोजने के लिए उनके पास कोई सूत्र है। आजाद ने एक सूत्र उन्हें बताया। उन्होंने कहा कि यदि तुम गुजरात में बड़ौदा व्यायामशाला के अधिष्ठाता श्री माणिकराव को अपने विश्वास में ले लो तो उनके माध्यम से तुम्हें पृथ्वीसिंह का पता चल सकता है।

धनवंतरी ने सोचा कि यदि मैं बड़ौदा के माणिकराव के पास पहुँच भी गया तो वे मुझपर कैसे विश्वास कर लेंगे कि मैं कोई क्रांतिकारी हूँ, सी.आई.डी. का आदमी नहीं। पता लगाते-लगाते उसे यह मालूम हो गया कि गुजरात आर्यसमाज के प्रभारी पं. आत्माराम हैं और उनके संबंध माणिकराव से बहुत अच्छे हैं। पं. आत्माराम के दो पुत्र पंजाब में रहते थे और वे धनवंतरी के मित्र थे। धनवंतरी अपने इन मित्रों से पत्र लेकर गुजरात चले गए।

गुजरात में धनवंतरी की भेंट पं. आत्माराम से हो गई। पं. आत्माराम ने पत्र देकर धनवंतरी को बड़ौदा के माणिकराव के पास भेज दिया। माणिकराव को स्वयं पृथ्वीसिंह का पता मालूम नहीं था। उन्हें विश्वास था कि पूना के क्रांतिकारी गणेश रघुनाथ वैशंपायन को पृथ्वीसिंह का पता मालूम होगा। माणिकराव ने वैशंपायन के नाम एक पत्र धनवंतरी को दे दिया। धनवंतरी जब पूना पहुँचे तो वैशंपायन ने उन्हें बताया कि पृथ्वीसिंह किसी काम से इलाहाबाद गए हैं। उन्होंने पृथ्वीसिंह के नाम एक पत्र धनवंतरी को दे दिया। पत्र में लिखा था—

'पत्र लानेवाले युवक के साथ आप खुलकर बात कर सकते हैं।'

दिए हुए पते पर इलाहाबाद पहुँचकर धनवंतरी ने पृथ्वीसिंह को खोज निकाला और चंद्रशेखर आजाद को इलाहाबाद लाकर उन्हें पृथ्वीसिंह से मिला दिया। जो काम पुलिस और सी.आई.डी. के आदमी नहीं कर सके थे, वह धनवंतरी ने करके दिखा दिया।

कुछ दिन के लिए क्रांतिकारियों ने दिल्ली को अपना केंद्र बनाया। धनवंतरी भी सुखदेवराज के साथ दिल्ली पहुँच गए। एक दिन १ दिसंबर, १९३० को सुखदेवराज और धनवंतरी कुछ कपड़ा खरीदने के लिए चाँदनी चौक पहुँचे। दोनों ही हैट लगाए हुए थे। कपड़े की पोटली धनवंतरी के हाथ में थी। दुर्भाग्य से पुलिस के एक हेड कांस्टेबिल अफजल ने उन दोनों को पहचान लिया। उसने उन दोनों का पीछा किया तो वे भाग खड़े हुए। पुलिस का आदमी 'चोर! चोर!' चिल्लाता हुआ उनके पीछे भागा। सुखदेवराज ने अपना हैट उतारकर फेंक दिया और वह भीड़ में सम्मिलित होकर बच निकला। धनवंतरी हैट लगाए और पोटली लिये भागते रहे। आखिर भीड़ ने उनपर काबू पा लिया। गिरफ्तार होने के पहले उन्होंने हेड कांस्टेबिल

अफजल पर गोली चलाई और उसे घायल कर दिया। भीड़ के लोग न मारे जाएँ, इसलिए धनवंतरी ने खुलकर गोलियाँ नहीं चलाईं।

जेल की लंबी सजा भी धनवंतरी को तोड़ न सकी। वहाँ भी सम्मानपूर्वक रहने के लिए उसने संघर्ष किया।

□

★ धर्मपाल


धर्मपाल

यशपाल तो क्रांतिकारी आंदोलन में कूद ही पड़े थे। उन्होंने अपने छोटे भाई धर्मपाल को अपनी माँ की देखरेख के लिए घर छोड़ दिया था। वैसे तो उनकी माताजी अध्यापिका थीं और वे स्वयं अपना तथा दोनों बच्चों का खर्च भी चला रही थीं; लेकिन जब से यशपाल ने क्रांति के क्षेत्र में कदम रखा था, उनकी माताजी की नौकरी डाँवाँडोल होने लगी थी। उन्हें बार-बार पाठशालाएँ बदलनी पड़ी थीं। इन्हीं स्थितियों को देखते हुए यशपाल ने धर्मपाल को प्रेरणा दी थी कि वह कोई काम सीख ले और गृहस्थी के संचालन में माताजी का सहायक बने। बिजली का काम सिखानेवाले एक विद्यालय में धर्मपाल ने बिजली का काम सीख लिया था और वह अपनी रोजी-रोटी अच्छी तरह चलाने लगा था।

उन दिनों क्रांति से बचकर रहना बड़ा मुश्किल था। वे लोग, जिनके दिलों में थोड़ी-बहुत भी देशभक्ति थी, भारत माता की अनसुनी नहीं कर पाते थे। कहीं-कहीं तो परिवार के सभी सदस्य भारत की मुक्ति के आंदोलन में कूद पड़े थे। चाफेकर बंधु नाम से तीन सगे भाई फाँसी पर चढ़ चुके थे। चारों सान्याल बंधु भी क्रांति में गले-गले डूबे हुए थे। फिर भला धर्मपाल अपने भाई यशपाल के चरणचिह्नों पर क्यों न चलते!

इधर यशपाल घर से फरार हुए, उधर धर्मपाल क्रांति के अखाड़े में कूद पड़े। उस समय पंजाब में क्रांतिकारियों का एक ही संगठन था, जिसका नाम

'हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र सेना' था। भगतसिंह, यशपाल और चंद्रशेखर आजाद आदि क्रांतिकारी इसी संगठन के सदस्य थे। लाहौर के इंद्रपाल ने पहले इसी संगठन में काम किया था; लेकिन महत्त्वपूर्ण भूमिका न मिलने के कारण लाहौर में उसने अपना अलग क्रांतिकारी संगठन खड़ा कर लिया था और उसका नाम रखा था 'आतिशी चक्कर'। कई नवयुवक इस 'आतिशी चक्कर' के सदस्य बन गए थे। इन लोगों ने अपने ढंग से कुछ बम भी तैयार कर लिये थे और पंजाब के छह स्थानों पर एक ही तारीख को एक ही समय बम विस्फोट किए थे; जिनमें कुछ पुलिसवाले मारे गए थे। उस घटना के पश्चात् इन लोगों की धर-पकड़ प्रारंभ हो गई। उसी क्रम में धर्मपाल भी गिरफ्तार कर लिये गए। जैसाकि पुलिसवालों का नियम होता है, गिरफ्तार व्यक्ति से उसके साथियों के नाम और उनके विभिन्न अड्डों की जानकारी भी ली जाती है, धर्मपाल को भी उस प्रक्रिया से गुजरना पड़ा।

पुलिस ने धर्मपाल को कई प्रकार की यातनाएँ दीं; पर वह उससे कुछ भी भेद पाने में असमर्थ रही। पुलिस ने उसे यातना देने का और कड़ा उपाय अपनाया। एक व्यक्ति के फैले हुए हाथों का जितना फासला होता है, उतने फासले पर जेल की दीवार में लोहे के दो कड़े लगा दिए गए और उन कड़ों में धर्मपाल के दोनों हाथ फँसा दिए गए; अर्थात् वह खड़ा तो रह सकता था, पर बैठ नहीं सकता था; क्योंकि ऊपर लोहे के कड़ों में हाथ फँसे हुए थे। उसे इस स्थिति में छह दिन रखा गया। केवल शौच जाने के और खाना खाने के समय उसके हाथ खोले जाते थे। जरूरत पूरी होने पर उसे फिर उसी प्रकार टाँग दिया जाता था। धर्मपाल इस दंड से भी विचलित नहीं हुआ और उसने अपने संगठन के विषय में कुछ भी नहीं बताया। छह दिन के पश्चात् उसने भूख हड़ताल का सहारा लिया और तब कहीं उसे दीवार से उतारा गया। इन यातनाओं के पश्चात् उसे मुकदमे के दौर से गुजरना पड़ा। जेल की लंबी सजा ने उसके हौसले पस्त नहीं किए और अपने क्रांतिकारी जीवन में उसने कोई धब्बा नहीं लगने दिया। □



★ प्रो. नंदकिशोर निगम

जब इतिहास के विद्यार्थी नंदकिशोर निगम दिल्ली विश्वविद्यालय की एम.ए. की परीक्षा में सम्मिलित हुए तो उन्होंने केवल प्रथम श्रेणी व प्रथम स्थान ही प्राप्त नहीं किया, बल्कि पिछले सभी परीक्षार्थियों से अधिक अंक पाने का कीर्तिमान भी स्थापित किया। लोग उस मेधावी विद्यार्थी को देखने पहुँचने लगे और उसके पास नौकरियों के प्रस्ताव पहुँचने लगे। कई प्रस्तावों में से नंदकिशोर निगम ने एक प्रस्ताव के प्रति अपनी सहमति दे दी और हिंदू कॉलेज के इतिहास के प्राध्यापक का पद स्वीकार कर लिया। उन्हें हिंदू कॉलेज के होस्टल का वार्डन भी बनाया गया और उस होस्टल में उन्हें रहने के लिए एक भवन दिया गया।


प्रो. नंदकिशोर निगम

प्रो. नंदकिशोर निगम ने स्वावलंबन के आधार पर अपने जीवन का निर्माण किया था। जब वे केवल दो वर्ष के थे तो उनके पिता का निधन हो गया। उनकी माताजी भी उन्हें उस समय छोड़ गईं, जबकि वे केवल ग्यारह वर्ष के थे। अपनी बड़ी बहन की कृपा तथा स्वावलंबन के सहारे उन्होंने अपना अध्ययन जारी रखा और एम.ए. की परीक्षा में कीर्तिमान स्थापित करके दिखाया। उनका जन्म ८ दिसंबर, १९०६ को दिल्ली में हुआ था।

प्रो. नंदकिशोर निगम का परिचय कुछ क्रांतिकारियों से हो गया था। वे लोग अपने नेता चंद्रशेखर आजाद की भूरि-भूरि प्रशंसा करते रहते थे। उन दिनों 'प्रथम लाहौर षड्यंत्र केस' चल रहा था और पुलिस के मुखबिर भी बयान देते

समय चंद्रशेखर आजाद की योग्यता, उनके नेतृत्व और उनकी अचूक निशानेबाजी का विशेष उल्लेख करते रहते थे। प्रो. निगम के मन में भी चंद्रशेखर आजाद के दर्शन करने की लालसा उत्पन्न हुई और उन्होंने अपने क्रांतिकारी मित्र कैलाशपति से कह दिया कि किसी दिन पंडितजी के दर्शन कराना। क्रांतिकारी लोग आजाद को 'पंडितजी' कहकर पुकारते थे।

एक दिन प्रो. निगम जब कॉलेज से लौटे तो उन्होंने देखा कि उनके कमरे में चार व्यक्ति बड़ी आत्मीयता के साथ बातें कर रहे हैं। उनके पहुँचने पर तीन व्यक्ति अंदर के कमरे में गए, उनमें से एक ने प्रो. निगम से नमस्कार भी किया। वह व्यक्ति औसत कद का और तगड़े बदन का था। वह धोती-कुरते के ऊपर सूती कोट पहने हुए था और उसके पैरों में मामूली चप्पलें थीं। जो व्यक्ति अंदर के कमरे में नहीं गया था, वह प्रो. निगम का क्रांतिकारी मित्र था और उसका नाम कैलाशपति था। बातों के क्रम में कैलाशपति ने प्रो. निगम से कहा—

"आप मुझसे बार-बार कहा करते थे कि मैं आपको पंडितजी के दर्शन कराऊँ। आप कहें तो आज मैं उनसे आपकी भेंट करा दूँ।"

बहुत प्रसन्नता व्यक्त करते हुए प्रो. निगम ने कहा—

"यदि आप सचमुच उनके दर्शन मुझे करा दें तो मैं स्वयं को बहुत भाग्यशाली समझूँगा।"

इसपर कैलाशपति ने 'पंडितजी' कहकर आवाज लगाई और वही व्यक्ति फिर उपस्थित हो गया, जिसने प्रो. निगम से नमस्कार करके अभिवादन किया था। प्रो. निगम ने लपककर उस व्यक्ति के पैर छू लिये। 'पंडितजी' नामधारी चंद्रशेखर आजाद ने प्रो. निगम को गले लगाते हुए कहा—

"आज से हम तुम्हारे साथ ही रहेंगे।"

और सचमुच ही उस दिन से चंद्रशेखर आजाद प्रो. नंदकिशोर निगम के साथ होस्टल के कमरे में रहने लगे। प्रो. निगम होस्टल के मैस में ही खाना खाते थे। उनके लिए मैस में से दोनों समय एक थाली आ जाया करती थी। उस दिन से दो थालियाँ आने लगीं। चंद्रशेखर आजाद ने उस नए व्यक्ति पर पहली भेंट में ही विश्वास कर लिया और प्रो. निगम ने बहुत कीमत चुकाकर भी उस विश्वास की रक्षा की।

जिन दिनों आजाद होस्टल में रह रहे थे, प्रो. निगम को टाइफाइड हो गया और वे अपनी बड़ी बहन के घर चले गए। उनका टाइफाइड बिगड़ गया और वे तीन महीने बीमार रहे। इस बीच चंद्रशेखर आजाद होस्टल के कमरे में रहते रहे और सुबह-शाम उन्हें देखने जाते रहे तथा डॉ. बोस के यहाँ से उनके

पास दवा भी पहुँचाते रहे। आजाद ने दिल्ली तभी छोड़ी, जब प्रो. निगम पूर्णरूप से स्वस्थ हो गए।

चंद्रशेखर आजाद को प्रो. नंदकिशोर निगम पर अटूट विश्वास था। आजाद दूसरी बार जून १९३० में फिर दिल्ली पहुँचे और प्रो. निगम के साथ होस्टल में ही ठहरे। गरमियों की छुट्टियों के कारण उन दिनों होस्टल खाली था। आजाद को वहाँ ठहरने में और अधिक सुविधा हुई। जब उन्होंने दिल्ली के गाडोदिया स्टोर में डकैती डाली तो वे मय सामान के अपनी कार को होस्टल में ही ले गए और एक खाली कमरे में रुपयों की गिनती की। इस समय तक प्रो. निगम का परिचय आजाद के कई साथी क्रांतिकारियों से हो चुका था, जिनमें सुशीला दीदी और दुर्गा भाभी भी थीं।

कुछ दिन बाद कैलाशपति गिरफ्तार हो गया और गिरफ्तार होते ही वह पुलिस का मुखबिर बन गया। उसके मुखबिर बन जाने पर आजाद ने प्रो. निगम को परामर्श दिया कि अब तुमको फरार हो जाना चाहिए। अपनी सम्मानजनक नौकरी तथा सुख-सुविधाएँ छोड़कर प्रो. निगम फरार हो गए और कानपुर में चंद्रशेखर आजाद के साथ ही रहने लगे।

कानपुर में चंद्रशेखर आजाद ने एक 'मनी एक्शन' की योजना बना डाली। प्रो. निगम को भी उस एक्शन में सम्मिलित होना था। निगम से बात करते हुए आजाद ने कहा—

''इस 'मनी एक्शन' की तैयारी के लिए मुझे तीन सौ रुपयों की आवश्यकता है। क्या तुम्हारे पास रुपए हैं?''

निगम का उत्तर था—

''इस समय तो मेरा खर्च आप ही चला रहे हैं। हाँ, दिल्ली में मेरे ताऊ का जो मकान है, उसमें कुछ हिस्सा मेरा भी है। यदि आप कहें तो मकान का अपना हिस्सा बेचकर मैं आपको रुपए ला दूँ।''

चंद्रशेखर आजाद इस प्रस्ताव से सहमत हो गए और एक हफ्ते के अंदर प्रो. निगम ने रुपए लाकर उन्हें दे दिए। रुपए लेकर आजाद ने उनसे कहा—

''इस मनी एक्शन में मैं तुम्हें अपने साथ नहीं ले चलूँगा। तुम यहाँ से सुशीला तथा दुर्गा को दिल्ली ले जाओ और इनके रहने का प्रबंध वहाँ कर दो। यहाँ गिरफ्तारियाँ हो सकती हैं।''

आजाद के आदेश के पालन में प्रो. नंदकिशोर निगम रात को सियालदा एक्सप्रेस से सुशीला दीदी और दुर्गा भाभी को लेकर कानपुर से दिल्ली के लिए चल पड़े। उन लोगों ने इंटर क्लास के तीन टिकट ले रखे थे। जब वे डिब्बे के अंदर

पहुँचे तो देखा कि नीचे की तीन बर्थों पर तीन व्यक्ति पसरकर सोए हुए हैं और ऊपर की बर्थों पर भी लोग सोए हुए थे। रात-भर का सफर खड़े-खड़े नहीं काटा जा सकता था। प्रो. निगम ने बीच की बर्थ पर सोए हुए व्यक्ति को धीरे से हिलाया और जब उसने आँखें खोलीं तो उससे बड़ी नम्रता से कहा—

''भाई साहब, मेरे साथ दो महिलाएँ हैं। इन्हें बैठने के लिए स्थान दे दीजिए। मैं तो खड़ा-खड़ा ही सफर तय कर लूँगा।''

उस व्यक्ति ने क्रोध से प्रो. निगम की ओर देखा और बिस्तर के नीचे से अपनी तलवार निकालकर उसे दिखाते हुए बोला—

''बैठने की जगह नहीं मिलेगी, मौत मिलेगी। जल्दी बोलो, क्या चाहिए?''

प्रो. निगम ने अपनी जेब से पिस्तौल निकालकर उसकी नली उस व्यक्ति की ओर करते हुए कहा—

''हम लोगों को अब दो सीटें नहीं, तीन चाहिए।''

पिस्तौल देखकर उस व्यक्ति ने अपना बिस्तर समेटते हुए कहा—

''लीजिए, पूरी बर्थ हाजिर है।''

यह कहकर वह जमीन पर बिस्तर बिछाकर सो गया।

दिल्ली में सुशीला दीदी और दुर्गा भाभी के रहने की व्यवस्था वहाँ के प्रसिद्ध वकील श्याममोहन सक्सेना के घर करके प्रो. निगम कानपुर लौट गए। सुशीला दीदी का परिचय वकील साहब से पहले ही हो चुका था।

कानपुर में रहते हुए एक दिन चंद्रशेखर आजाद ने प्रो. नंदकिशोर निगम से कहा—

''तुम अजमेर जाकर शिवचरणलाल शर्मा को गोली मार दो। वह बहुत धोखेबाज व्यक्ति है। काकोरी केस में भी वह हम लोगों को धोखा दे चुका है और इस बार नई पार्टी को भी धोखा देकर वह अजमेर चला गया है। वह पुलिस से मिला हुआ भी है। उसे गोली मारने से पहले वहाँ के क्रांतिकारी साथियों को अजमेर से बाहर चले जाने के लिए कह देना।''

आजाद की आज्ञा पाकर प्रो. निगम अजमेर पहुँच गए। उनके साथ एक क्रांतिकारी साथी विमलप्रसाद जैन को भी भेजा गया। इनका काम था कि वे प्रो. निगम को मदनगोपाल से मिलवा दें। शेष प्रबंध मदनगोपाल को करना था। प्रो. निगम को आजाद ने निर्देश दिया कि शिवचरणलाल को मारकर बचकर निकल जाने का प्रयत्न करना और यदि न बच सको तो लड़ते-लड़ते प्राण त्याग देना।

अजमेर पहुँचने पर विमलप्रसाद जैन ने प्रो. निगम को मदनगोपाल से मिलवा दिया। मदनगोपाल भी पार्टी का ही आदमी था। मदनगोपाल प्रो. निगम को

एक कोठी पर ले गया। वहाँ केशवदेव गुप्ता नाम के एक व्यक्ति से उनका परिचय कराया गया। प्रो. निगम ने अपना नाम पृथ्वीसिंह बताया। केशवदेव गुप्ता को यह काम दिया गया कि वह घुमाने के इरादे से शिवचरणलाल शर्मा को स्टेशन रोड पर ले जाए और अवसर पाकर प्रो. निगम उसको गोली मार दें। केशवदेव ने शिवचरणलाल को सारी बातें बता दीं और परिणाम यह हुआ कि शिवचरणलाल ने स्वयं को पुलिस के हाथों गिरफ्तार कराके खुद को मृत्युदंड से बचा लिया। केशवदेव गुप्ता का यह विचार भी था कि वह प्रो. निगम को गिरफ्तार करा दे। किसी प्रकार बचकर, प्रो. निगम अजमेर छोड़कर कानपुर पहुँच गए और उन्होंने आजाद को सारी घटना सुना दी। आजाद ने उन्हें दो-चार दिन घर से बाहर न निकलने का आदेश दिया।

प्रो. नंदकिशोर निगम आजाद के आदेश की अवहेलना कर गए। वे घर से बाहर निकल पड़े। उनका दुर्भाग्य कि अजमेरवाले केशवदेव गुप्ता से उनकी कानपुर बाजार में भेंट हो गई। प्रो. निगम ने उन्हें टाल तो दिया, पर छिप-छिपकर केशवदेव गुप्ता यह देख आया कि प्रो. निगम गयाप्रसाद पुस्तकालय में अध्ययनरत हो गए हैं। वह प्रो. निगम को पृथ्वीसिंह नाम से ही पुकारता था; पर उसका विश्वास था कि वह पृथ्वीसिंह न होकर भवानीसिंह था, जिसकी गिरफ्तारी के लिए पुरस्कार घोषित था।

वह ४ दिसंबर, १९३० की संध्या थी। गयाप्रसाद पुस्तकालय पहुँचकर प्रो. निगम अध्ययन में डूब गए। उन्होंने अपना कोट उतारकर खूँटी पर टाँग दिया। उस कोट में उनकी पिस्तौल भी रखी हुई थी। थोड़ी देर बाद उन्होंने देखा कि वे पुलिस के बहुत बड़े दल के द्वारा घेर लिये गए हैं। उन्हें घेरनेवालों में यू.पी. स्पेशल सी.आई.डी. के सुपरिंटेंडेंट मि. नाटबाबर, कानपुर के पुलिस सुपरिंटेंडेंट मि. फील्ड, डी.एस.पी. ठाकुर बिशेशरसिंह, इंस्पेक्टर शंभूनाथ और इंस्पेक्टर टीकाराम थे। उनको पीछे से कसकर पकड़ लिया गया और उनकी कनपटी पर पिस्तौल की नली रख दी गई। केशवदेव गुप्ता की सूचना पर उन्हें क्रांतिकारी भवानीसिंह समझकर पकड़ा गया था। प्रो. निगम के द्वारा ही पुलिस को अपनी भूल मालूम हुई। प्रो. निगम को गिरफ्तार करके नीचे ले जाया गया। नीचे पहुँचने पर प्रो. निगम ने देखा कि पुलिस के दो सौ बंदूकधारी जवान पुस्तकालय इमारत को घेरे खड़े थे। उन्हें छावनी के पुलिस स्टेशन पर ले जाया गया।

लगातार एक हफ्ते तक प्रो. निगम को विभिन्न यातनाएँ देकर उनसे चंद्रशेखर आजाद के पते-ठिकाने पूछने का यत्न किया गया; लेकिन प्रो. निगम कच्चे नहीं पड़े। इसके बाद उन्हें कानपुर जेल भेज दिया गया और उनको हथकड़ियाँ-बेड़ियाँ

पहना दी गईं। इस स्थिति में उनको एक महीने तक रखा गया। उसके बाद उन्हें दिल्ली भेज दिया गया। दिल्ली की कचहरी में पहुँचते-पहुँचते प्रो. निगम बेहोश हो गए और रात को दिल्ली जेल में उन्हें होश आया।

दिल्ली षड्यंत्र केस लगभग दो वर्ष तक चला। इन दो वर्षों तक प्रो. निगम को जेल में ही रहना पड़ा। दो वर्ष पश्चात् सरकार ने वह अभियोग वापस ले लिया और प्रो. निगम को मुक्त करके उनपर अवैध हथियार रखने का मुकदमा चलाया। इस मुकदमे में उन्हें दो वर्ष के कठोर कारावास का दंड दिया गया। एम.ए. पास और प्रोफेसर होते हुए भी प्रो. निगम को जेल के 'सी' क्लास में रखकर अपमानित और तंग किया गया।

इस सजा से छूटने पर भी प्रो. निगम जेल के बार-बार मेहमान बनते रहे। उन्हें दु:ख था अपने साथी चंद्रशेखर आजाद की शहादत का और उन्हें गर्व था इतने महान् क्रांतिकारी के विश्वासभाजन बनने का।





★ प्रकाशवती पाल


प्रकाशवती पाल

लाहौर के एक कन्या विद्यालय में अध्यापिका प्रेमवती अपनी कक्षा को पढ़ा रही थीं। एक प्रसंग में उन्होंने अपनी छात्राओं से कहा—

''हर तरह से हमारा देश महान् है; लेकिन इसे हमारे देश का दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि आज वह पराधीन है। यह भी सत्य है कि भारत की राजनीतिक पराधीनता के पाश को काटने के लिए हर युग में प्रयत्न किए जाते रहे हैं और वे प्रयत्न आज भी किए जा रहे हैं। हमारा पंजाब भी इस प्रकार के प्रयत्नों में पीछे नहीं है।''

अध्यापिकाजी का वक्तव्य समाप्त होने पर एक छात्रा ने प्रश्न किया—

''दीदी! हमारे पंजाब में भारत को स्वाधीन करने के कौन से प्रयत्न किए जा रहे हैं?''

प्रश्न सुनकर अध्यापिकाजी तनिक सकपका गईं। उन दिनों पंजाब में क्रांतिकारी आंदोलन की लहर चल रही थी। वे कक्षा के अंदर उसकी जानकारी नहीं दे सकती थीं। टालने की दृष्टि से उन्होंने कह दिया—

''इस प्रश्न का पूरा उत्तर देने में बहुत समय लग जाएगा। अभी तो हमें अपनी पढ़ाई पूरी करनी है। इस विषय में जिसको रुचि हो, वह विश्रांम-प्रहर में या छुट्टी में मुझसे मिल ले। उस समय मैं इसकी जानकारी दे सकूँगी।''

जिस छात्रा ने यह प्रश्न उठाया था, उसका नाम प्रकाशवती कपूर था। प्रकाशवती और उसकी एक सहेली लज्जावती ने एक दिन फुरसत के समय

अपनी अध्यापिका बहन प्रेमवती से उस विषय की चर्चा छेड़ दी। प्रेमवती ने उन दोनों को योग्य समझकर पहले तो क्रांतिकारी गतिविधियों का सामान्य परिचय दिया; पर बाद में उन्हें बता दिया गया कि लाहौर में क्रांतिकारी लोग सक्रिय हैं और उन्हें बम बनाने तथा हथियार खरीदने के लिए धन की आवश्यकता भी होती है।

अब तो प्रकाशवती एवं उनकी सहेलियों का एक दल बन गया और वे सब बहनें प्रेमवती के माध्यम से क्रांतिकारियों को आर्थिक सहयोग देने लगीं।

एक दिन प्रकाशवती के मन में यह इच्छा प्रबल हुई कि मैं भी क्रांतिकारी दल में सम्मिलित हो जाऊँ। उसने अपनी यह इच्छा प्रेमवतीजी के सामने प्रकट की। प्रेमवती ने उसे एक पत्र दिया और क्रांतिकारी यशपाल से मिलने के लिए उसे निर्देशित किया।

यशपाल से भेंट करके उसने प्रेमवती का पत्र दे दिया और यह भी कहा कि मेरे पिताजी को यह संदेह है कि मैं क्रांतिकारी गतिविधियों में संलग्न हूँ और इसीलिए वे मेरे पैरों में बेड़ियाँ डाल देना चाहते हैं। यशपाल ने पूछा—''बेड़ियों से आपका क्या तात्पर्य है?''

प्रकाशवती का उत्तर था—

''क्या आप इतनी-सी बात भी नहीं जानते? जब माता-पिता अपनी संतान को किसी विशेष मार्ग पर जाने से रोकना चाहते हैं तो वे उसकी शादी कर देते हैं।''

''तो क्या आपके पिता आपकी शादी कर देना चाहते हैं?''

''जी हाँ, उन्होंने एक स्थान पर मेरी शादी तय कर दी है और वे मुझसे छुटकारा पाना चाहते हैं।''

''तो इसमें बुराई क्या है? सभी लड़कियों की शादी होती है। आप भी शादी करके वैवाहिक जीवन का आनंद लीजिए। सुखी जीवन का मार्ग छोड़कर आप काँटों के रास्ते पर क्यों जाना चाहती हैं?''

''देखिए, मैंने निश्चय कर लिया है कि क्रांतिकारी दल में सम्मिलित होकर मैं देश की सेवा करूँगी। यदि आप लोग मुझे अपने दल में सम्मिलित नहीं करेंगे तो हो सकता है कि मैं गलत लोगों का साथ पकड़ लूँ।''

''देखिए प्रकाशवतीजी, मैं आपकी भावनाओं की कद्र करता हूँ। मैं यह वायदा तो नहीं करता कि मैंने आपको क्रांतिकारी दल में सम्मिलित कर लिया। पंजाब संगठन के हमारे जो साथी लाहौर में हैं, उनसे मैं आपको मिलाए देता हूँ। उन्हींके परामर्श से आपको पार्टी में भरती करने का निर्णय लिया जाएगा।''

यशपाल ने पंजाब के संगठनकर्ताओं से प्रकाशवती को मिला दिया। उसे

पार्टी में सम्मिलित करने की अनुमति दे दी गई।

प्रकाशवती पर उसके पिता की काफी पाबंदी थी। उसे घर से बाहर नहीं निकलने दिया जाता था। एक दिन अवसर पाकर प्रकाशवती अपने मकान की छत से पड़ोस के मकान की छत पर पहुँची और एक गली से निकलकर अपना घर छोड़ दिया। वह अपने पिता के नाम एक पत्र छोड़ गई। उसने लिखा था कि देश के कार्यों में भाग लेने के लिए वह हमेशा के लिए अपना घर छोड़ रही है।

पार्टी ने पहले प्रकाशवती को क्रांतिकारी गतिविधियों एवं उसके तौर-तरीकों का प्रशिक्षण दिया और फिर गोपनीय परचे आदि बाँटने का काम उससे लिया जाने लगा। धीरे-धीरे प्रकाशवती क्रांतिकारी कार्यों में दक्ष हो गई।

पार्टी के काम का विस्तार होने लगा। बम बनाने की एक फैक्टरी दिल्ली में भी खोल दी गई। यशपाल को बम बनाने का काफी अनुभव हो चुका था। उन्हें और प्रकाशवती को दिल्ली की फैक्टरी में भेज दिया गया। प्रकाशवती के ठहरने का प्रबंध दिल्ली में महाशय कृष्णजी के घर पर किया गया। बम फैक्टरी में भी प्रकाशवती काम करने लगीं। धीरे-धीरे उन्हें कारखाने के संचालन की बातें मालूम हो गईं।

इस समंय तक योजनानुसार भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त दिल्ली असेंबली में बम विस्फोट करके गिरफ्तार हो चुके थे और उन्हें लाहौर जेल में पहुँचा दिया गया था। चंद्रशेखर आजाद ने योजना बनाई कि भगतसिंह को लाहौर जेल से छुड़ाया जाए। इस कार्य में सहयोग देने के लिए यशपाल को दिल्ली से लाहौर बुलाया गया। प्रकाशवती दिल्ली में ही रहीं।

साथी भगवतीचरण बोहरा की बम दुर्घटना में मृत्यु हो जाने के कारण तथा लाहौर की बहावलपुर कोठी में बमों के विस्फोट हो जाने के कारण भगतसिंह को जेल से छुड़ाने की योजना क्रियान्वित नहीं हो सकी। बहावलपुर कोठी में यशपाल द्वारा प्रकाशवती को लिखे गए एक पत्र के टुकड़ों को जोड़कर पुलिस ने दिल्ली में प्रकाशवती के ठहरने का पता मालूम कर लिया। उसे गिरफ्तार करने के लिए लाहौर की पुलिस दिल्ली जा पहुँची। यशपाल ने वह पत्र महाशय कृष्णजी के साले ध्रुवदेव के नाम लिखा था। पुलिस ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया। प्रकाशवती अपनी सूझबूझ से वहाँ से खिसककर खयालीराम गुप्त के घर पहुँच गईं और इस प्रकार गिरफ्तारी से बच गईं।

दिल्ली की बम फैक्टरी का पुलिस को पता चल गया और उसका संचालन करनेवाले कई लोग गिरफ्तार हो गए और कई इधर-उधर भाग गए। उन दिनों चंद्रशेखर आजाद कानपुर में चुन्नीगंज में रहते थे। प्रकाशवती को उनके पास पहुँचा

दिया गया। चंद्रशेखर आजाद ने प्रकाशवती को निशाना लगाने का अच्छा अभ्यास करा दिया। उनकी प्रेरणा से प्रकाशवती ने अपना अंग्रेजी का ज्ञान भी बढ़ाया और स्वास्थ्य सुधारने के लिए कसरत करने का नियम बना लिया।

इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में पुलिस के साथ युद्ध करते हुए २७ फरवरी, १९३१ को चंद्रशेखर आजाद शहीद हो गए। प्रकाशवती को उनकी शहादत से बहुत सदमा पहुँचा। आजाद के रूप में उन्होंने अपना संरक्षक और शुभचिंतक खो दिया। कुछ दिन पश्चात् इलाहाबाद में ही पुलिस के साथ मुकाबला करते हुए यशपाल भी गिरफ्तार हो गए। यशपाल की गिरफ्तारी के पश्चात् तो प्रकाशवती एक प्रकार से आश्रयहीन हो गईं। संकट के उस दौर में उन्होंने अपनी क्षमताओं का परिचय दिया और क्रांति संगठन के सूत्र अपने हाथ में लेकर वे काम करने लगीं।

गिरफ्तारियों का सिलसिला चलता रहा और सन् १९३४ के जून में प्रकाशवती भी दिल्ली में गिरफ्तार कर ली गईं।

यशपाल उन दिनों बरेली जेल में थे। एक दिन जेल सुपरिंटेंडेंट मेजर मलहोत्रा यशपाल के पास पहुँचे और पूछा—

''क्या आप मिस प्रकाशवती कपूर को जानते हैं?''

''जी हाँ, जानता हूँ। आप यह किस उद्देश्य से पूछ रहे हैं?'' यशपाल ने पूछा। मेजर मलहोत्रा ने कहा—

''मिस प्रकाशवती कपूर ने डिप्टी कमिश्नर की मार्फत बरेली जेल में आपके साथ शादी करने का प्रार्थना-पत्र दिया है।''

यह कहने के साथ ही मेजर मलहोत्रा ने भावुक होकर कहा—

''तुम्हें तो अभी दस-ग्यारह साल जेल में रहना है। इस लड़की का त्याग तो देखो। त्याग और धर्म की ऐसी भावना हिंदू नारी के अतिरिक्त संसार में कहीं संभव नहीं है।''

लिखित रूप में यशपाल की सहमति लेकर बरेली जेल को अदालत के रूप में परिणत करके डिप्टी कमिश्नर मि. पैडले और गवाहों की उपस्थिति में यशपाल एवं प्रकाशवती की शादी संपन्न हो गई। यशपाल की माताजी भी शादी के समय उपस्थित थीं। जेल में शादी होने की घटना सब लोगों के लिए कौतूहल और आश्चर्य की बात थी। शादी के उपलक्ष्य में मिठाइयाँ बाँटी गईं। उसके पश्चात् दूल्हा-दुलहिन को अलग कर दिया गया। अपने जेल जीवन से छूटने के बाद ही यशपाल और प्रकाशवती का मिलन हो सका।

चंद्रशेखर आजाद की दी हुई प्रेरणा भी प्रकाशवती के बहुत काम आई।

उन्होंने अपने अध्ययन का क्रम जारी रखा और कुछ दिन बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में भी शिक्षा प्राप्त की। यदि यह बात सत्य है कि यशपाल ने प्रकाशवती को क्रांतिकारी बनाया, तो यह भी सत्य है कि प्रकाशवती ने यशपाल को एक महान् लेखक बनाया। यशपाल की सफलता के पीछे प्रकाशवती की साधना का बहुत योगदान है।

□

★ प्रेमदत्त

लाहौर षड्यंत्र केस के अंतर्गत अदालत में भगतसिंह और उनके साथियों पर मुकदमा चल रहा था। भगतसिंह के साथियों में प्रेमदत्त भी अभियुक्त के रूप में था। प्रेमदत्त का कद कुछ छोटा था। जब कभी वह अपने साथियों के पीछे खड़ा हो जाता था तो दिखाई भी नहीं देता था। एक दिन उसने अपने छोटे कद का भरपूर लाभ उठाया।

अदालत में गवाह के कटघरे में जयगोपाल खड़ा हुआ था। पहले जयगोपाल क्रांतिकारी पार्टी का एक विश्वसनीय सदस्य था। सांडर्स के वध में उसने महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया था। लाहौर पुलिस ऑफिस के सामने वह साइकिल सुधारने का बहाना करता हुआ कुछ देर इसलिए खड़ा रहा था कि सांडर्स को पहचानकर वह भगतसिंह और राजगुरु को संकेत कर सके। सांडर्स जब कार्यालय से निकला तो उसने संकेत किया और भगतसिंह तथा राजगुरु ने सफलतापूर्वक उसका वध कर डाला। सांडर्स हत्याकांड में उसको वही सजा मिलती, जो भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव को मिली। बाद में जब जयगोपाल गिरफ्तार कर लिया गया तो अपना जीवन बचाने के लिए वह शीघ्र ही पुलिस का मुखबिर बन गया और सांडर्स हत्या का पूरा ब्योरा पुलिस को दे दिया। जिस तरह सांडर्स की हत्या में उसकी प्रमुख भूमिका रही, उसी प्रकार अपने साथियों को फाँसी और लंबी सजाएँ दिलाने में भी उसकी प्रमुख भूमिका रही।

अदालत में गवाहों के कठघरे में वह बड़ी शान के साथ खड़ा था। वह अपनी गद्दारी पर तनिक भी शर्मिंदा नहीं था। इसके विपरीत वह अपने साथी क्रांतिकारियों को चिढ़ाने के लिए अपनी मूँछों पर बट देने लगा। उसकी यह हरकत देखकर क्रांतिकारियों ने 'शेम! शेम!' भी कहा; पर जयगोपाल ने मूँछों पर ताव देना बंद नहीं किया।

छोटे कद का क्रांतिकारी प्रेमदत्त गद्दार जयगोपाल की यह हरकत बरदाश्त नहीं कर सका। उसने धीरे से अपना जूता निकाला और निशाना साधकर जयगोपाल के मुँह पर दे मारा। जूता उसके ठीक मुँह पर लगा और 'भड़' की आवाज हुई। भगतसिंह ने अंग्रेजी में प्रेमदत्त को प्रोत्साहित करते हुए कहा—

''बढ़िया निशाना लगाया है, मेरे भाई! दूसरा जूता और।''

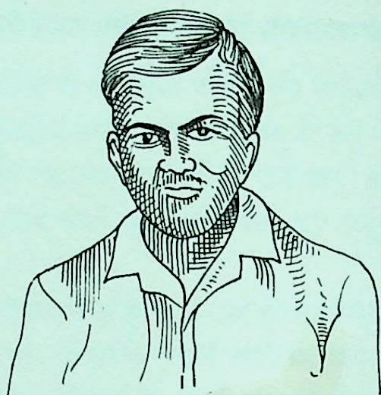
प्रेमदत्त दूसरे जूते का संधान कर सके, इसके पहले ही वह पकड़ लिया गया। ७ अक्तूबर, १९३० को जब लाहौर षड्यंत्र केस का फैसला सुनाया गया तो प्रेमदत्त को तीन वर्ष की सजा सुनाई गई। उसकी प्रतिक्रिया थी—

''यदि गद्दार जयगोपाल को एक जूता और मारने दिया जाए तो मैं छह वर्ष का कारावास भुगतने के लिए सहर्ष तैयार हूँ।''

□



★ बटुकनाथ अग्रवाल



बटुकनाथ अग्रवाल

बटुकनाथ अग्रवाल क्रांतिकारियों का पोस्ट बॉक्स था। वैसे तो पोस्ट बॉक्स एक निर्जीव डाक का डिब्बा हुआ करता है, पर क्रांतिकारी लोग चलते-फिरते व्यक्तियों को पोस्ट बॉक्स की भाँति प्रयुक्त करते थे। यदि क्रांतिकारियों के नाम से सीधे डाक आती, तो डाक के द्वारा वे गिरफ्तार किए जा सकते थे। इस खतरे से बचने के लिए वे अपने भरोसेमंद साथियों के नाम से अपनी डाक मँगाते थे। इसी कारण इन साथियों को क्रांतिकारियों का पोस्ट बॉक्स कहा जाता था।

बटुकनाथ अग्रवाल इलाहाबाद विश्वविद्यालय में बी.एस-सी. द्वितीय वर्ष का छात्र था और हिंदू होस्टल में रहता था। इलाहाबाद जिले में शहजादपुर में उसका घर था।

वह घटना सन् १९३० के अक्तूबर मास की थी। एक दिन एक युवक बटुकनाथ अग्रवाल के पास पहुँचा और उससे पूछा—

''क्या आप श्रीमती दुर्गा देवी बोहरा को जानते हैं?''

बटुक की स्वीकारोक्ति पर उस युवक ने फिर कहा—

''आप आगामी रविवार को अल्फ्रेड पार्क में विक्टोरिया की मूर्ति के पीछे पहुँच जाइए। वहाँ श्रीमती दुर्गा देवी आपकी प्रतीक्षा करेंगी।''

जिस युवक ने बटुकनाथ अग्रवाल को यह सूचना दी थी, उसका नाम सुखदेवराज था। वह लाहौर का रहनेवाला था और उस समय चंद्रशेखर आजाद के

साथ कार्य कर रहा था।

बटुकनाथ अग्रवाल रविवार के दिन सुबह आठ बजे अल्फ्रेड पार्क में विक्टोरिया की मूर्ति के पीछे पहुँच गया। वहाँ उसे श्रीमती दुर्गा देवी मिल गईं। उनके साथ क्रांतिकारी सुशीला दीदी और सुखदेवराज भी थे। उन दिनों ये तीनों ही फरार क्रांतिकारी थे। दुर्गा देवी और बटुकनाथ अग्रवाल एक ही गाँव के रहनेवाले थे और इस कारण उनमें भाई-बहन का रिश्ता था। उस दिन से बटुकनाथ सुशीला दीदी और सुखदेवराज के भी पोस्ट बॉक्स बन गए।

दुर्गा देवी के पिता ने अपनी पुत्री की शादी के पश्चात् संन्यास ले लिया था। कई हजार रुपए अपनी पुत्री को देने के लिए उन्होंने बटुकनाथ अग्रवाल के पास ही रख छोड़े थे। बटुकनाथ यथा आवश्यकता वह धन दुर्गा देवी को देते रहे। वे अल्फ्रेड पार्क में पिता-पुत्री की भेंट कराने में भी सहायक होते रहे।

२७ फरवरी, १९३१ को प्रातःकाल जब पुलिस द्वारा चंद्रशेखर आजाद घेर लिये गए और गोलियाँ चलने का समाचार बटुकनाथ को मिला तो उन्हें यह समझते देर नहीं लगी कि भैया चंद्रशेखर आजाद घेर लिये गए हैं। वे अपनी जेब में पिस्टल रख जब घटनास्थल की ओर लपके, तो वहाँ जाकर देखा कि खेल खत्म हो चुका था। आजाद के रूप में अपने वीर साथी को खोकर उन्हें बहुत दुःख हुआ। स्वाधीन भारत में क्रांतिकारियों की मूर्तियाँ स्थापित करना उन्होंने अपने जीवन का व्रत बना लिया।

□

★ बटुकेश्वर दत्त

कानपुर के फूल बाग में यद्यपि बटुकेश्वर दत्त एवं भगतसिंह की मुलाकात बहुत विचित्र प्रकार से हुई थी; लेकिन उन दोनों की मैत्री प्रगाढ़ होती गई और क्रांति योजनाओं में वे ज्यादातर साथ ही रहने लगे। वह कानपुरवाली घटना यह थी कि कानपुर के एक वरिष्ठ क्रांतिकारी सुरेश चंद्र भट्टाचार्य ने भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त के मिलन की व्यवस्था की थी। वे फूल बाग के एक कुंज में भगतसिंह को बैठाकर यह कह गए कि मैं यहाँ शीघ्र ही बटुकेश्वर दत्त को लेकर आता हूँ। थोड़ी देर पश्चात् बटुकेश्वर दत्त अकेले ही भगतसिंह के पास पहुँच गए और अपना कोई परिचय भी नहीं दिया। अपना परिचय उन्होंने इसलिए नहीं दिया कि शायद वह व्यक्ति भगतसिंह नहीं हो। भगतसिंह को उस व्यक्ति का इस प्रकार

पहुँचना संदिग्ध लगा और वह बटुकेश्वर दत्त को पुलिस का भेदिया समझ बैठा। वह क्रोधित होकर आगंतुक पर हमला करने ही वाला था कि इतने में ही सुरेश भट्टाचार्य वहाँ पहुँच गए। उन्होंने उन दोनों क्रांतिकारियों का एक-दूसरे से परिचय कराया।


बटुकेश्वर दत्त

बटुकेश्वर दत्त और भगतसिंह की जोड़ी बहुत प्रिय जोड़ी बन गई। दोनों ही बहुत खूबसूरत, मेधावी और अध्ययनशील थे। दोनों के चिंतन में अंतर यह था कि भगतसिंह प्रत्येक तथ्य को तर्क की कसौटी पर कसकर उसे ग्रहण करता था और बटुकेश्वर दत्त भावना में बहकर तथ्य की छानबीन करना उचित नहीं समझता था। एक बुद्धि द्वारा संचालित होता था तो दूसरा हृदय द्वारा। दोनों ही सुरुचिसंपन्न निष्कलुष भावनाओं के व्यक्ति थे और दोनों ही साहसी भी।

कुछ समय के लिए क्रांतिकारियों को आगरा नगर को अपना केंद्र बनाना पड़ा। वहाँ उन लोगों ने दो मकान किराए पर ले लिये। एक मकान कुछ सदस्यों के रहने के काम आता था और दूसरे मकान में बम निर्माण का कार्य होता था। वहाँ कम लोग रहते थे। बम निर्माण का प्रशिक्षण इन लोगों को दे रहे थे बंगाल के प्रसिद्ध क्रांतिकारी यतींद्रनाथ दास। बम निर्माण का प्रशिक्षण लेनेवालों में थे चंद्रशेखर आजाद, भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरु, बटुकेश्वर दत्त, शिव वर्मा, जयदेव कपूर, सदाशिवराव मलकापुरकर, भगवानदास माहौर तथा कुछ अन्य। बम निर्माण से बचे हुए समय में बटुकेश्वर दत्त कोई-न-कोई पुस्तक पढ़ने में लगे रहते थे। खाने-पीने की चिंता किसीको थी ही नहीं। यदि मिल गया तो खा लिया और नहीं मिला तो भूखे ही सो गए। कुछ लोग ऐसे थे, जो भूखे होने पर हाय-तौबा मचाने लगते थे और कुछ उस पीड़ा को चुपचाप सह लिया करते थे। बटुकेश्वर दत्त उन व्यक्तियों में थे, जो कभी किसी अभाव की शिकायत नहीं करते थे।

एक बार ऐसा संयोग आया कि एक मकान में बटुकेश्वर दत्त, विजयकुमार सिन्हा, शिव वर्मा और जयदेव कपूर ही रह गए। शेष साथी किसी कार्य से आगरा के बाहर चले गए। उन लोगों के पास जितने पैसे थे, वे समाप्त हो गए और स्थिति फाकेकशी की आ गई। उन्हें लगातार तीन दिन तक भोजन नहीं मिला। इस अप्रत्याशित अनशन को तोड़ने का उपक्रम किया साथी शिव वर्मा ने।

शिव वर्मा का एक साथी आगरा कॉलेज में पढ़ता था और वह एक छात्रावास में रहता था। अपने उस मित्र के पास शिव वर्मा पहुँच गए और अपने अनशन की कहानी उन्हें कह सुनाई। साथी ने कह दिया कि दोपहर के भोजन के लिए मेरे छात्रावास में आ जाओ। शिव वर्मा वहाँ पहुँच गए। साथी ने जब यह निश्चय कर लिया कि सभी छात्रावासी भोजन कर चुके हैं तो वे शिव वर्मा को लेकर छात्रावास के भोजनालय में पहुँच गए और रसोइए को संबोधित करते हुए बोले—

''महाराज! आज भूख बहुत कड़कड़ाकर लगी है और एक मेहमान को भी साथ लाया हूँ तथा इनकी खुराक भी बहुत अच्छी है। आप घबराइए नहीं, हम लोग आज जमकर भोजन करेंगे।''

महाराज ने उत्तर दिया—

''अरे भैया, कैसी बातें करते हो! मैं क्यों घबराने लगा? मैंने तो पंच-सेरियों को भी भोजन कराया है। आप लोग इतमीनान के साथ खाते जाइए।''

दोनों ही साथी पालथी मारकर, भूमि पर आसन डालकर बैठ गए और इतमीनान के साथ भोजन करने लगे। सर्दी के दिन थे और दोनों ही साथी कोट पहने हुए थे। परोसनेवाला लड़का दोनों की थालियों में दो-दो रोटियाँ रख जाता था। जैसे ही उसकी पीठ फिरती, दोनों साथी एक-एक रोटी अपने कोट की जेबों में डाल लेते थे। महाराज कुछ ऐसा रुख करके बैठे थे कि उनकी नजर इनकी थालियों पर न रहकर तवे की तरफ रहती थी। जब बनाते-बनाते उनकी रोटियाँ चुकने लगतीं तो वे इतना अवश्य कह देते थे—

''भैया, जरा धीरे-धीरे और चबा-चबाकर खाओ। ऐसा लगता है जैसे तुम लोग रोटियों को पेट की टंकी में पटकते चले जा रहे हो।''

उस बेचारे को क्या पता कि ये लोग रोटियाँ कहाँ पटक रहे हैं! जब शिव वर्मा ने यह समझ लिया कि अपने भूखे साथियों के लिए भी पर्याप्त भोजन की व्यवस्था हो गई है तो उन्होंने ऐलान कर दिया—

''बस महाराज, अब पेट की टंकी भर चुकी है। आपने बहुत प्रेम से भोजन कराया है और भोजन बना भी बहुत अच्छा है।''

शिव वर्मा अपने मित्र के कमरे में पहुँच गए और बोले—

''यार, अब कुछ दक्षिणा और दे दो।''

मित्र की प्रश्नवाचक दृष्टि देखकर उन्होंने समझाया—

''हम लोगों ने रोटियाँ तो पर्याप्त चुरा ली हैं। सब्जी-तरकारी तो हम जेबों में भर नहीं सकते थे। अब कुछ पैसे दे दो तो एक डबले में दही और ये रोटियाँ ले जाकर अपने भूखे साथियों को भोजन कराऊँगा।''

मित्र ने शिव वर्मा को दो आने दे दिए। उन दिनों दो आने का एक सेर से अधिक दही आ जाता था। एक बंडल में रोटियाँ और एक बड़े डबले में दही लेकर शिव वर्मा अपने साथियों के पास जा पहुँचे।

जिस समय शिव वर्मा रोटियाँ और दही लेकर अपने निवास पर पहुँचे, उस समय वहाँ अकेले बटुकेश्वर दत्त थे। शिव वर्मा ने उन्हें शुभ समाचार सुनाया कि मैं आप लोगों के लिए भोजन ले आया हूँ। सचमुच ही यह समाचार सुनकर बटुकेश्वर दत्त को प्रसन्नता हुई; लेकिन वे बोले—

"भोजन यहीं ताक में रख दो। साथी लोग घूमने चले गए हैं। उन्हें आ जाने दो। सब लोग साथ ही खाएँगे।"

शिव वर्मा ने प्रतिवाद करते हुए कहा—

"साथी लोग कब लौटेंगे, इसका ठिकाना नहीं। मैं अपने मित्र के साथ खा आया हूँ। मैं तुम्हारे लिए भोजन लगाए देता हूँ। तुम भोजन कर लो। जब साथी लोग आ जाएँगे तो वे भी खा लेंगे। सभी के लिए पर्याप्त भोजन है।"

बटुकेश्वर दत्त को साथी का यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं हुआ। वे बोले—

"साथियों को छोड़कर मुझसे कैसे खाया जाएगा! उन्हें आ ही जाने दो। तब तक मैं पुस्तक में डूबा रहूँगा। समय का पता ही नहीं चलेगा।"

और सचमुच ही बटुकेश्वर दत्त ने अपनी आँखें पुस्तक के पृष्ठों पर गड़ा दीं। शिव वर्मा मित्रों को खोजने चले गए। बटुकेश्वर दत्त खुले सहन में बैठे पुस्तक में डूबे हुए थे और दीवार की ताक में रोटियों का बंडल तथा दही का डबला रखे हुए थे। ऊपर छत पर से लाल मुँह का एक बंदर यह सबकुछ ताड़ रहा था। अवसर का लाभ उठाकर वह चुपके से नीचे उतरा और रोटी का बंडल मुँह में दबा लिया। दही के डबले पर कागज को धागे से लपेटा गया था। बंदर ने धागे में अपनी उँगलियाँ फँसा लीं और जोरदार छलाँग मारी। छलाँग मारने के क्रम में पतला धागा टूट गया और डबला बटुकेश्वर दत्त के सामने आकर गिरा तथा दूर-दूर तक दही फैल गया। हड़बड़ाकर बटुकेश्वर दत्त ने स्थिति का निरीक्षण किया और पाया कि छत पर बैठे हुए बंदर महाशय के पास रोटियों का बंडल है तथा दही नीचे छिटका हुआ है। जब साथी लोग आए तो सहन में दही की चाँदनी छिटकी हुई देखी। श्री दत्त ने स्थिति का स्पष्टीकरण देते हुए कहा—

"बड़ा श्रम करके साथी शिव वर्मा हमारे लिए रोटियाँ लाए थे। वे तो सब हनुमानजी को अर्पित हो चुकी हैं और भरपेट भोजन की तृप्ति के फलस्वरूप यह आशीर्वाद उन्होंने हमारे सहन में बिखरा दिया है।"

शिव वर्मा ने अपनी टिप्पणी इस प्रकार की—

"मैंने बटुक से खा लेने का बहुत आग्रह किया था। इन्होंने खुद भी नहीं खाया और साथियों को भी भोजन से वंचित कर दिया। तीन दिन के पश्चात् भोजन नसीब हुआ था। अब पता नहीं कितने दिन बाद भोजन के दर्शन होंगे!"

सब लोगों ने भूख की पीड़ा को ठहाकों में उड़ा दिया। वे उस योजना पर विचार करने लगे, जिसके अंतर्गत पुलिस पार्टी पर हमला करके साथी योगेशचंद्र चटर्जी को छुड़ाना था।

योगेशचंद्र चटर्जी को पुलिस ने गिरफ्तार करके काकोरी ट्रेन डकैती के षड्यंत्र में सम्मिलित कर लिया था। उन्हें दस वर्ष के कारावास का दंड सुनाकर लखनऊ जेल से आगरा की जेल में स्थानांतरित किया जा रहा था। भगतसिंह, आजाद और साथियों ने यह तय किया कि जब योगेशचंद्र पुलिस की हिरासत में आगरा पहुँचे तो पुलिस पार्टी पर तगड़ा हमला करके योगेशचंद्र चटर्जी को छुड़ा लिया जाए।

योजना को अंतिम रूप प्रदान कर दिया गया। यह सभी कार्य चंद्रशेखर आजाद की निगरानी में होना था। हमला भी उन्हींके आदेश से होना था।

लखनऊ से आनेवाली ट्रेन आगरा स्टेशन पर आकर रुकी। पुलिस का बहुत बड़ा दल योगेशचंद्र चटर्जी के साथ आया था। आगरा पुलिस का दल भी वहाँ पहुँच चुका था। जिस स्थल से क्रांतिकारियों को पुलिस दल पर हमला करना था, वहाँ से आजाद और उसके सभी साथी स्थिति को देख रहे थे। आजाद के साथी प्रतीक्षा कर रहे थे कि आजाद उन्हें हमले का संकेत दें और वे पुलिस दल पर टूट पड़ें। योगेशचंद्र चटर्जी बेड़ियाँ खनकाते हुए निकल गए। उनके आगे-पीछे पुलिस का काफी जमघट था। उन्हें जेल ले जाने के लिए लॉरी में बिठा दिया गया; लेकिन चंद्रशेखर आजाद ने अपने साथियों को आक्रमण का आदेश नहीं दिया। स्पष्टीकरण में उन्होंने इतना ही कहा—

"यदि मैं आक्रमण का आदेश दे देता तो हम लोग योगेश दा को छुड़ा भी नहीं सकते थे और शायद हम लोगों में से कोई भी जीवित नहीं बचता। बिना कोई ठोस उपलब्धि के इतनी जानें झोंक देना कोई अक्लमंदी की बात नहीं होती।"

यद्यपि आजाद ने आक्रमण का आदेश न देकर अक्लमंदी का काम ही किया था, लेकिन कुछ लोगों को इससे बड़ी निराशा हुई और बटुकेश्वर दत्त तो फफक-फफककर रोने लगे। उनका भावुक मन इसलिए क्रंदन कर रहा था कि उनका अपना साथी सामने से निकल गया और बिना कुछ किए वे सब देखते रह गए। भावुकता के होते हुए भी बटुकेश्वर दत्त में हौसले की कमी नहीं थी।

क्रांतिकारी चक्र बहुत तेजी से घूमता गया और वह समय भी आ गया, जब

पार्टी ने यह निश्चय किया कि दो काले कानूनों के विरोध में केंद्रीय असेंबली में बम के धड़ाके किए जाएँ। केंद्रीय असेंबली में बम के धमाके कौन करे, इसके लिए कई तरह से विचार-विमर्श किया गया; लेकिन अंत में भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त की जोड़ी ही इस कार्य के लिए चुनी गई।

८ अप्रैल, १९२९ का दिन था। केंद्रीय असेंबली के सदस्यों के पैर असेंबली भवन की ओर बढ़ रहे थे। कुछ दर्शकगण भी थे, जो उस दिन की कार्यवाही देखने-सुनने के लिए दर्शक-दीर्घाओं में शीघ्र पहुँचकर अच्छे स्थान लेने के लिए आतुर थे। पहले पहुँचनेवाले इन्हीं दर्शकों में थे भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त।

भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त को केंद्रीय असेंबली के सभाभवन में पहुँचाने के लिए अनुमति-पत्र की व्यवस्था की थी क्रांतिकारी साथी जयदेव कपूर ने। उन दोनों को अंदर भेजकर उनके अनुमति-पत्र बाहर मँगा लिये गए थे। ऐसा इसलिए किया गया था, जिससे असेंबली के उस सदस्य पर आँच न आए, जिसका नाम सिफारिश के बतौर लिखा गया था।

दर्शक-दीर्घा के अंतिम छोर पर भगतसिंह और दत्त ने अपने आसन ग्रहण कर लिये। वे दोनों सफेद कमीज और खाकी नेकर पहने हुए थे। नेकर पहनने का कारण यह था कि उसकी जेब में बम इस तरह रखे जा सकते थे कि जेबें फूली हुई दिखाई न दें। जेबों में बम रखने के पश्चात् उन दोनों ने उस दिन के ताजे अखबार भी जेबों में इसलिए घुसेड़ लिये थे कि यदि जेबें फूली हुई दिखाई भी दें तो लोग यह समझें कि अखबार के कारण वे फूली हुई हैं।

असेंबली की कार्यवाही प्रारंभ हुई। अध्यक्ष का आसन ग्रहण किया श्री विट्ठलभाई पटेल ने। जन सुरक्षा बिल और श्रम विवाद बिल को वाइसराय की विशेष अनुमति से पारित होने की घोषणा के पूर्व ही भगतसिंह ने खड़े होकर खाली स्थान पर एक बम फेंक दिया। बड़े जोर का धमाका हुआ और सभा भवन में धुआँ-ही-धुआँ भर गया। लोग स्थिति को समझने का प्रयत्न करें, इसके पूर्व ही बटुकेश्वर दत्त ने भी अपने बम का संधान खाली बेंच की ओर कर दिया। लोगों में भगदड़ मच गई। जिसको जिधर से रास्ता मिला, भाग खड़ा हुआ। साइमन कमीशन के सदस्य भी सभाभवन में बैठे हुए थे। वे सब टेबिलों के नीचे घुस गए। सर जान शुस्टर ने भी इसी प्रकार अपने आपको छिपाया। भारतीय सदस्यों में से विट्ठलभाई पटेल, पं. मोतीलाल नेहरू और मोहम्मद अली जिन्ना अपनी कुरसियों पर निर्विकार बैठे रहे।

सभाभवन का धुआँ छँट जाने पर लोगों ने देखा कि दर्शक-दीर्घा में दो नौजवान बैठे हुए मुसकरा रहे हैं। वे भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ही थे। वे

भागे नहीं। उन्होंने 'इनकलाब जिंदाबाद' के नारे लगाए और भवन में कुछ छपे हुए परचे बिखराए, जिनमें यह लिखा हुआ था कि उनका उद्देश्य क्या है। इसके पश्चात् उन्होंने अपनी पिस्तौलें फेंक दीं और स्वयं ही सारजेंट टेरी को अपनी गिरफ्तारियाँ दीं।

भगतसिंह एवं बटुकेश्वर दत्त पर मुकदमा चलाया गया और दोनों को आजीवन कारावास का दंड सुनाया गया। बाद में यह तथ्य स्थापित हो जाने पर कि सांडर्स हत्याकांड में भगतसिंह सम्मिलित था, उसे फाँसी का दंड सुनाया गया।

बटुकेश्वर दत्त जब आजीवन कारावास का दंड भुगतकर दिल्ली लौटे तो वे वह जेल देखने गए, जहाँ गिरफ्तारी के पश्चात् उन्हें और भगतसिंह को रखा गया था। उन्होंने देखा कि उस स्थान पर एक अस्पताल का भवन बनाया जा रहा है। इंजीनियर ने भवन का नक्शा देखकर उन्हें बताया कि पुरानी जेल की वह कोठरी किस स्थान पर थी। उस कोठरी के स्थान पर खेल का एक छोटा मैदान था, जहाँ कुछ युवक-युवतियाँ बैडमिंटन खेल रहे थे। जब उनका खेल समाप्त हो गया तो एक युवक ने उनसे पूछा—"आप हमें खेलते हुए देख रहे थे, क्या आप भी इस खेल में रुचि रखते हैं?"

दत्तजी ने उत्तर दिया—"मैं इस खेल में रुचि तो नहीं रखता; पर मैं इस मैदान को इसलिए देख रहा था, क्योंकि किसी समय इसी स्थान पर जेल की वह कोठरी थी, जहाँ असेंबली भवन में बम विस्फोट करने के पश्चात् भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त को रखा गया था।"

दत्तजी का यह कथन सुनकर वे लोग आश्चर्य से उनकी ओर देखने लगे। उस युवक ने उनसे प्रश्न किया—"ये भगतसिंह और बटुकेश्वर कौन थे?"

उस युवक का यह प्रश्न सुनकर दत्तजी की समझ में यह नहीं आया कि वे उस युवक के प्रश्न का क्या उत्तर दें। वे सोच रहे थे कि यह पीढ़ी क्या करके दिखाएगी, जो अभी से भूल गई है कि भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त कौन थे!

□

★ बैकुंठनाथ शुक्ल

लाहौर षड्यंत्र केस का सरकारी गवाह फणींद्रनाथ घोष जलगाँव की अदालत में गवाह के कठघरे में खड़ा हुआ था। उसके सामने अभियुक्तों के कठघरों में खड़े थे चंद्रशेखर आजाद के क्रांतिकारी साथी भगवानदास माहौर और सदाशिवराव



बैकुंठनाथ शुक्ल

मलकापुरकर। भगवानदास माहौर अपने लँगोट में एक भरा हुआ रिवॉल्वर छिपाए हुए थे और इस मौके की तलाश में थे कि गोली चलाकर गद्दार फणींद्र घोष को समाप्त किया जाए। यह रिवॉल्वर चंद्रशेखर आजाद ने ही उनके पास जेल में भिजवाया था।

फणींद्र घोष का अपराध यह था कि वह क्रांतिकारियों की केंद्रीय समिति का सदस्य था। पकड़े जाने पर वह पुलिस का मुखबिर बन गया था और क्रांतिकारियों के सभी गोपनीय रहस्य उसने पुलिस को बता दिए थे।

अदालत में जब मध्यांतर हुआ तो अवसर पाकर भगवानदास माहौर ने गद्दार फणींद्र घोष पर गोली चला दी। गोली फणींद्र के कंधे को छीलती हुई निकल गई। भगवानदास माहौर का रिवॉल्वर जाम हो गया और फणींद्र घोष की जान बच गई। सचमुच ही उस दिन अर्थात् २१ फरवरी, १९३० को यह फणींद्र घोष का सौभाग्य था कि वह जिंदा बच गया। लेकिन क्रांतिकारियों ने संकल्प कर लिया कि दल के गद्दार फणींद्र घोष को जीवित नहीं रहने देना है। उसे समाप्त करने का बीड़ा उठाया बैकुंठनाथ शुक्ल ने।

बैकुंठनाथ शुक्ल बिहार का रहनेवाला था। वह भी 'हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र सेना' का सैनिक था। सरदार भगतसिंह, राजगुरु एवं सुखदेव की फाँसी के पश्चात् उसने फणींद्र घोष को मारने का संकल्प और दृढ़ कर लिया था। कुछ दिन उसने हाजीपुर के गांधी आश्रम में भी काम किया था।

पुलिस को बैकुंठनाथ शुक्ल पर संदेह था। एक दिन जब अपना सामान एक तालाब के किनारे रखकर बैकुंठनाथ तालाब में नहा रहा था तो एक थानेदार ने उसके सामान की तलाशी ली। उसके सामान में एक रिवॉल्वर पाया गया। तालाब से निकलकर बैकुंठनाथ भाग गया और उस दिन से वह फरार हो गया।

एक दिन अपने एक साथी को लेकर बैकुंठनाथ शुक्ल बेतिया जा पहुँचा। बेतिया में फणींद्र घोष रहने लगा था। क्रांतिकारियों के विरुद्ध गवाही देने के उपलक्ष्य में सरकार ने उसकी सुरक्षा का प्रबंध किया था और एक पुलिस गार्ड हमेशा उसके साथ रहता था। अपना व्यापार जमाने के लिए सरकार ने उसे धन भी दिया था।

बेतिया में ९ नवंबर, १९३२ को फणींद्र घोष अपने पास के दुकानदार गणेशप्रसाद गुप्ता के साथ गपशप कर रहा था कि बैकुंठनाथ शुक्ल ने उसके पास पहुँचकर नेपाली किस्म की अपनी भुजाली से फणींद्र के मस्तक पर प्रहार कर दिया। उसे बचाने के लिए गणेशप्रसाद गुप्ता आगे बढ़ा तो बैकुंठनाथ के साथी ने उसी प्रकार का प्रहार गणेशप्रसाद गुप्ता पर भी कर दिया। उन दोनों पर और प्रहार करके बैकुंठनाथ शुक्ल अपने साथी के साथ भाग खड़ा हुआ। वे दोनों अपनी साइकिलों से वहाँ पहुँचे थे। उनको लोगों ने एकदम घेरा, इस कारण अपनी साइकिलें छोड़कर वे दोनों पैदल ही भाग खड़े हुए।

एक साइकिल पर एक छोटी-सी पोटली मिली, जिसमें एक धोती में लिपटी हुई एक कटार थी। धोती पर धोबी द्वारा बनाए गए विशेष निशान थे। इस घटना के पाँच दिन पश्चात् लाल स्याही में हाथ से लिखे हुए कुछ परचे समस्तीपुर नगर की दीवारों पर चिपके हुए पाए गए, जिनमें लिखा था—

'इनकलाब जिंदाबाद! भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव की मृत्यु का बदला गद्दार को मौत के घाट उतारकर ले लिया गया।'

धोती के ऊपर पाए गए धोबी के निशान के आधार पर बैकुंठनाथ शुक्ल की खोज की गई। यह मालूम कर लिया गया कि मुजफ्फरपुर जिले के जलालपुर स्थान का रहनेवाला है।

६ जुलाई, १९३३ को जब बैकुंठनाथ शुक्ल सोनपुर में गंडक के पुल के ऊपर जा रहा था, पुलिस ने उसे गिरफ्तार कर लिया। उसके कुरते की जेब में नारियल के खोल के अंदर भरा गया एक जीवित बम भी पाया गया, जिसका कोई उपयोग वह कर नहीं सका। उसे ले जाकर छपरा जेल में बंद कर दिया गया।

पुलिस ने बैकुंठनाथ शुक्ल को इतना खतरनाक आदमी पाया कि खुली अदालत के बजाय मोतीहारी जेल में ही अदालत कायम करके उसपर मुकदमा चलाया गया। उसे फाँसी की सजा सुनाई गई। १४ मई, १९३४ को गया की सेंट्रल जेल में उस महान् क्रांतिकारी को फाँसी दे दी गई।

□



★ सरदार भगतसिंह



सरदार भगतसिंह

जन्म से ही भगतसिंह के सभी लक्षण बता रहे थे कि वह एक महान् क्रांतिकारी बनेगा। जिस दिन उसका जन्म हुआ, उसके पिता और दोनों चाचा जेलों से छूट गए। परिवार ने बालक को बहुत भाग्यशाली माना।

जब बालक भगतसिंह बड़ा हुआ कि वह खिलौनों से खेल सके तो वह बम और पिस्तौल के खेल खेलने लगा। एक दिन वह अपने आँगन में गड्ढा खोदकर उसमें अपना खेलने का तमंचा रखकर पानी डालने लगा। उसके पिता के साथ गए उनके एक मित्र ने पूछा—

''तुम यह क्या कर रहे हो?''

बालक भगत ने तत्काल उत्तर दिया—

''चाचाजी, मैं तमंचा बो रहा हूँ। तमंचों का झाड़ उगेगा और उसमें बहुत सारे तमंचे लगेंगे, जिन्हें मैं अपने साथियों को बाँटूँगा और हम अंग्रेजों के साथ युद्ध करेंगे।''

एक अन्य अवसर पर जब उसके पिता उसे बाहर घुमाने ले गए तो खेतों को देखकर उसने कहा—

''किसान लोग खेतों में गेहूँ क्यों बोते हैं? उन्हें बंदूकों की खेती करनी चाहिए। आज हमारे देश को बंदूकों की जरूरत है।''

इस प्रकार के विचारों से युक्त भगतसिंह ने जब प्रारंभिक शिक्षा समाप्त कर

ली तो उच्च शिक्षा के लिए वह लाहौर के राष्ट्रीय कॉलेज में प्रविष्ट हुआ। वह कॉलेज उस समय देशभक्तों का गढ़ था। कॉलेज में पढ़ते हुए उसके क्रांतिकारी विचार दृढ़ हो गए। कॉलेज में सुखदेव एवं भगवतीचरण और यशपाल उसके क्रांतिकारी साथी थे।

भगतसिंह के माता-पिता ने जब उसकी शादी की बात पक्की कर दी तो एक दिन वह घर छोड़कर भाग निकला। वह तो फाँसी के फंदे की वरमाला पहनकर मृत्यु-सुंदरी से विवाह रचाना चाहता था। लाहौर छोड़कर वह कानपुर जा पहुँचा।

कानपुर में भगतसिंह ने गणेशशंकर विद्यार्थी द्वारा संचालित 'प्रताप प्रेस' में कुछ दिन काम किया। वहीं उसका परिचय अन्य क्रांतिकारियों के साथ हुआ; जिनमें चंद्रशेखर आजाद, बटुकेश्वर दत्त, शिव वर्मा, जयदेव कपूर और कुंदनलाल प्रमुख थे। बाद में ये सभी 'हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र सेना' के सक्रिय सैनिक बने और उन्होंने बड़े-बड़े काम करके दिखाए।

क्रांतिकारी आंदोलन में भगतसिंह ने प्रमुख भूमिका अदा की थी। उसने सारे भारतवर्ष के क्रांतिकारियों को एक मंच पर एकत्रित करने में सफलता प्राप्त की। दिल्ली में एक मीटिंग करके उन लोगों ने क्रांतिकारियों की एक केंद्रीय समिति का निर्माण कर डाला।

क्रांतिकारी आंदोलन को भगतसिंह की सबसे बड़ी देन है समाजवाद की परिकल्पना। सन् १९२८ से ही भगतसिंह ने इस बात पर जोर देना प्रारंभ कर दिया कि स्वाधीन भारत में समाजवादी समाज की स्थापना की जाएगी।

भगतसिंह, चंद्रशेखर आजाद और उनके साथियों ने मिलकर कई बड़े नगरों में बम बनाने के कारखाने खोले। बंगाल के साथी यतींद्रनाथ दास ने इन्हें बम बनाना सिखाया था। महाराष्ट्र का एक जोशीला युवक शिवराम हरि राजगुरु भी अब इस दल का सक्रिय सदस्य था।

फलक की पंक्तियाँ, जो भगतसिंह को प्रिय थीं—

'दिल से निकलेगी न मरकर भी वतन की उल्फत,
मेरी मिट्टी से भी खुशबू-ए-वफा आएगी।'

भगतसिंह एक दार्शनिक और चिंतक था। उसने क्रांतिकारी आंदोलन को जन आंदोलन का स्वरूप प्रदान किया। लाहौर में जब लाठी प्रहारों के फलस्वरूप लाला लाजपतराय की मृत्यु हो गई तो भगतसिंह ने इस घटना का राजनीतिक उपयोग कर डाला। उसने चंद्रशेखर आजाद और राजगुरु को साथ लेकर लाहौर के

पुलिस कार्यालय पर पहुँचकर लाला लाजपतराय पर लाठियाँ चलानेवाले पुलिस अधीक्षक जे.पी. सांडर्स को गोलियों से उड़ा दिया तथा शहर की दीवारों पर परचे चिपका दिए कि हमने लाला लाजपतराय के हत्यारे को मृत्युदंड देकर राष्ट्रीय अपमान का बदला चुका दिया। इस घटना से सारे देश की सहानुभूति क्रांतिकारियों के साथ हो गई और क्रांतिकारी आंदोलन भी जन आंदोलन बन गया।

भगतसिंह के मस्तिष्क की दूसरी उपज थी—दिल्ली असेंबली का बम कांड। ८ अप्रैल सन् १९२९ को भगतसिंह एवं बटुकेश्वर दत्त ने केंद्रीय असेंबली में बम के दो विस्फोट करके उन कानूनों का विरोध किया, जो मजदूरों का शोषण करने और आम जनता की सुरक्षा का हनन करने को बनाए जा रहे थे। बम विस्फोट करके भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त भागे नहीं, उन्होंने स्वयं को पुलिस के हवाले कर दिया। उनकी योजना थी कि अदालत को प्रचार का मंच बनाया जाए, जिससे सारा भारत और दुनिया जान सके कि भारतवासी आजादी की लड़ाई लड़ रहे हैं। अंग्रेजी शासन ने दुनिया-भर में यह प्रचार कर रखा था कि भारतीय लोग हमारे शासन में बहुत सुखी हैं और वे स्वाधीनता नहीं चाहते।

गिरफ्तारी के पश्चात् जेलों में भगतसिंह और उनके साथियों के साथ दुर्व्यवहार किया गया, जिसके फलस्वरूप उन लोगों ने अनशन प्रारंभ कर दिया। तिरसठ दिन की लंबी भूख हड़ताल के पश्चात् उनके साथी यतींद्रनाथ दास की लाहौर जेल में मृत्यु हो गई।

भगतसिंह के एक साथी क्रांतिकारी भगवतीचरण बोहरा की मृत्यु पहले ही बम का परीक्षण करते हुए हो गई थी। अपने इन दो साथियों की शहादत के कारण भगतसिंह को बहुत मानसिक आघात पहुँचा।

भगतसिंह ने अपना एक और प्रिय साथी चंद्रशेखर आजाद भी खो दिया। चंद्रशेखर आजाद २७ फरवरी, १९३१ को इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में अंग्रेजी पुलिस के साथ युद्ध करते हुए शहीद हो गए।

भगतसिंह और उनके साथियों पर जो मुकदमा चला वह 'लाहौर षड्यंत्र केस द्वितीय' के नाम से जाना गया। इसके पहले गदर पार्टी के लोगों पर जो मुकदमा चला था, वह 'लाहौर षड्यंत्र केस प्रथम' के नाम से जाना गया था। अदालत में भगतसिंह ने अपने बयानों के माध्यम से जो क्रांति की व्याख्या की, वह अपने में एक थीसिस है।

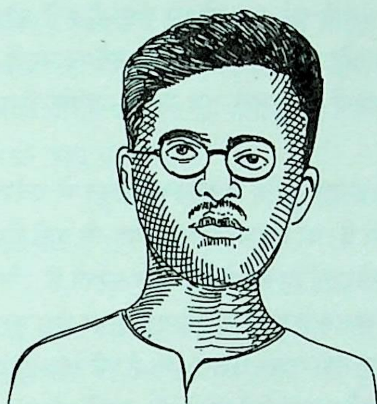
देश के बड़े-बड़े नेताओं ने लाहौर जेल में भगतसिंह से भेंट करके उसे समझाने का प्रयत्न किया कि फाँसी के दंड से बचने के लिए वह दया याचिका प्रस्तुत कर दे। भगतसिंह इस प्रस्ताव से सहमत नहीं हुआ। उसका तर्क था कि हमारे

बलिदान से देश में जो उत्तेजना और राजनीतिक चेतना फैलेगी, वह देश के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगी।

२३ मार्च, १९३१ को लाहौर जेल में भारत माता के तीन सपूतों—सरदार भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु को एक साथ फाँसी दे दी गई। 'इनकलाब जिंदाबाद!' और 'भारत माता की जय!' के नारे लगाते हुए भारत माता के तीनों लाल आजादी की बलिवेदी पर अपने प्राणों की भेंट चढ़ा गए।

□

★ भगवतीचरण बोहरा


भगवतीचरण बोहरा

नेशनल कॉलेज, लाहौर के लॉन में बैठे हुए दो नौजवान बातें कर रहे थे। उनमें से एक का नाम था सरदार भगतसिंह और दूसरे का भगवतीचरण बोहरा। भगतसिंह लंबे और इकहरे बदन का गोरा-चिट्टा नौजवान था। उसके चेहरे पर दाढ़ी एवं केश उसके व्यक्तित्व को और आकर्षण प्रदान कर रहे थे। उसकी पेशानी चौड़ी थी। भगवतीचरण का डील-डौल भी अच्छा था। उसका रंग गेहुँआ और चेहरा कुछ गोलाई लिये हुए था। वह सिर पर एक गोल टोपी लगाए हुए था और उसकी आँखों पर ऐनक था। उसके चेहरे पर उसकी अध्ययनजन्य भव्यता और आत्मविश्वास की झलक थी। अपने विषय को महत्त्व देते हुए भगतसिंह ने कहा—

"भगवती भाई! हमारे लिए यह गर्व की बात है कि हम क्रांतिकारी दल से अपना संबंध जोड़ चुके हैं। दूसरे शब्दों में इसी बात को मैं इस प्रकार कहूँगा कि अब हमारा जीवन देश का जीवन हो गया है। इस समय तो हम अपने परिवार में हैं, इस महाविद्यालय में हैं और अपने नगर लाहौर में हैं; लेकिन वह समय भी आ सकता है, जब सबकुछ छोड़कर हमें फरार होना पड़े और देश के कोने-कोने में घूमना पड़े।"

अपना वक्तव्य पूरा करके भगतसिंह ने अपने साथी भगवतीचरण की ओर

देखा, जैसे वह उनकी प्रतिक्रिया जानना चाहता हो। भगवतीचरण, जो अभी तक अपनी दृष्टि लॉन की हरी-भरी दूब पर गड़ाए हुए और अपने आसपास की दूब को सहलाते हुए भगतसिंह का वक्तव्य सुन रहा था, उसने अब अपनी दृष्टि उठाकर भगतसिंह के चेहरे पर गड़ा दी और कहा—

''भगतसिंह! मुझे लगता है कि अभी तुम्हारा वक्तव्य पूरा नहीं हुआ है। तुम कुछ और भी कहना चाहते थे, पर बीच में ही रुक गए। मैं चाहता हूँ कि तुम अपनी बात पूरी कर लो, फिर मैं तुम्हारे वक्तव्य पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करूँ।''

अपनी सही स्थिति में पकड़े जाने के कारण भगतसिंह कुछ सकपकाया; लेकिन अपनी सहज स्वाभाविकता से ही उसने मन की बात कह डाली। उसने कहा—

''बात यह है, भगवती भाई, कि हमारे दल के सभी लोग अभी कुँआरे हैं और गृहस्थी के प्रपंचों से दूर हैं। यदि हमें अपने घर-द्वार छोड़ने पड़े तो हमें कोई कष्ट नहीं होगा। आपकी शादी हो चुकी है और गृहस्थी का भार आपके ऊपर है। ऐसी दशा में घर-द्वार छोड़कर देश के काम में गले-गले डूब जाना आपके लिए कैसे संभव होगा?''

''देखो भगतसिंह! मैं यह स्वीकार करता हूँ कि मैं गृहस्थ जीवन में प्रवेश कर चुका हूँ और कुछ जिम्मेदारियाँ मेरे ऊपर हैं; पर इसका मतलब यह तो नहीं कि केवल इसी कारण मैं देश के काम से मुख मोड़ लूँ। हम लोग देश के पहले हैं और अपने परिवार के बाद में। मेरा तो यह दृढ़ निश्चय है कि देश की पुकार पर मेरा पूरा परिवार देश के लिए समर्पित हो जाएगा। जब तक गाड़ी धकल रही है, मैं धकेलूँगा और जब आवश्यक होगा, मैं भी फरार हो जाऊँगा एवं मेरी पत्नी भी। इसमें सोचने-विचारने की कोई बात ही नहीं है। जब तक हम लोग फरार नहीं होते, मैं सोचता हूँ कि हम लोग क्रांतिकारी पार्टी के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकेंगे।''

भगवतीचरण की बात सुनकर भगतसिंह ने परिहास के लहजे में कहा—

''अर्थात् आप जोड़े से देश की सेवा करेंगे और दुहरा पुण्य कमाएँगे। भई वाह! विचार तो बहुत अच्छा है और आपका यह संकल्प जानकर मेरी दुविधा भी दूर हो गई है। अब मैं एक दूसरे मुद्दे पर आपके विचार जानना चाहता हूँ। दूसरा मुद्दा यह है कि हमारे यहाँ रहने या न रहने की स्थिति में भी हमारे क्रांति के प्रयास समाप्त न हों, इसके प्रति आपका क्या चिंतन है?''

भगवतीचरण ने कुछ क्षण मौन रहकर कहना प्रारंभ किया—

''हम लोग अन्य देशों में हुई क्रांतियों का अध्ययन कर चुके हैं और उनकी अच्छाइयों तथा बुराइयों से भी परिचित हो चुके हैं। मैं चाहता हूँ, हम अपने पीछे

समर्पित नौजवानों को इस प्रकार तैयार रखें कि हमारे आंदोलन के लिए जन-शक्ति की कमी न पड़े। इसी बात को मैं और अधिक स्पष्ट रूप से इस तरह कह सकता हूँ कि हमारे संगठन के दो रूप हों। कुछ लोग तो भूमिगत रहकर कार्य करें और कुछ लोग खुले आंदोलन के रूप में कार्य करें तथा आवश्यकता पड़ने पर भूमिगत पंक्तियों में आ मिला करें। ऐसी स्थिति में जब हम लोग पकड़े जाएँ तो हमारा स्थान लेने के लिए हमारे दूसरे साथी तैयार रहें। इस प्रकार अपने उद्देश्य की पूर्ति होने तक हमारा आंदोलन निरंतर चलता रहेगा और कुछ लोगों के पकड़े जाने पर पूरा संगठन चरमराकर नहीं बैठ जाएगा।''

भगवतीचरण का विचार भगतसिंह को बहुत पसंद आया। उसने बात आगे बढ़ाई—

''भगवती भाई, इस मुद्दे पर मैं भी विचार कर चुका हूँ और यह प्रस्ताव आपके सामने मैं स्वयं भी रखना चाहता था। बात आपने पहले कह दी, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। यह विचार हम दोनों के द्वारा ही पुष्ट हो गया है। मैंने तो इसका नाम भी सोच डाला है। यदि अपने इस खुले संगठन का नाम 'नौजवान भारत सभा' रखा जाए तो कैसा रहे?''

''तुम्हारा सुझाया गया नाम सचमुच बहुत सार्थक है! इसके लिए मेरी सहमति है।''

''भगवती भाई, अब मैं आपको एक दायित्व सौंपना चाहूँगा और वह यह कि आप इस संगठन का उद्देश्य-पत्र तथा इसकी पूर्ण रूपरेखा लिखित रूप से तैयार कर लें। आपका अध्ययन और अभिव्यक्ति, दोनों ही अच्छे हैं। दूसरे शब्दों में मैं कहूँ कि आप इसका विधान तैयार कर दें।''

''इस जिम्मेदारी को मैं स्वीकार करता हूँ, भगतसिंह; पर इसका मतलब यह नहीं कि यह काम मुझे सौंपकर तुम छुट्टी पा जाओ। तुम्हें भी समय-समय पर इसके लेखन के लिए अपना रचनात्मक सहयोग देना पड़ेगा। हम लोग मिल-जुलकर इस काम को पूरा करेंगे और अपने साथियों के सामने रख देंगे। इसे अंतिम रूप से स्वीकार करने का दायित्व तो दल का ही होगा।''

भगतसिंह व भगवतीचरण के बीच हुए विचार-विमर्श ने अपना रचनात्मक परिवेश धारण कर लिया और 'नौजवान भारत सभा' केवल लाहौर का ही नहीं, वह पूरे पंजाब का एक खुला राष्ट्रीय मंच बन गया। धीरे-धीरे उसका विस्तार उत्तर भारत में भी हो गया।

भगवतीचरण ने दल का जो घोषणा-पत्र तैयार किया, वह एक पूर्ण दस्तावेज था। उसकी खूब प्रशंसा हुई। 'नौजवान भारत सभा' का काम तेजी से चल निकला।

यह काम प्रारंभ हो जाने पर अब वे क्रांतिकारी गतिविधियों को अधिक समय देने लगे। भगतसिंह और भगवतीचरण के अतिरिक्त गोपनीय कामों में उनके साथ सुखदेव एवं यशपाल भी थे।

जब साइमन कमीशन लाहौर पहुँचा तो उसके विरोध का झंडा नौजवान भारत सभा ने ही उठाया। उस सारे विरोध और बहिष्कार के पीछे भगवतीचरण तथा उनके साथियों के मस्तिष्क कार्य कर रहे थे। साइमन कमीशन के विरोध से खीजकर पुलिस ने बेतहाशा लाठियाँ चलाईं और लाठियों से घायल होकर कुछ दिन पश्चात् ही पंजाब के कांग्रेसी नेता लाला लाजपतराय की मृत्यु हो गई।

भगतसिंह जिस क्रांतिकारी दल में कार्य कर रहे थे, उसका नाम था 'हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र संघ'। इस संघ के सैन्य विभाग के कमांडर इन चीफ थे चंद्रशेखर आजाद। भगतसिंह, आजाद और उनके साथियों ने मिलकर निश्चय किया कि लाला लाजपतराय के हत्यारे सांडर्स को मृत्युदंड दिया जाए। पूरी योजना चंद्रशेखर आजाद की देखरेख में बनी और वह क्रियान्वित भी की गई। भगतसिंह, चंद्रशेखर आजाद तथा राजगुरु ने इस कार्य में प्रमुख रूप से भाग लिया और सांडर्स को लाहौर में गोलियों से उड़ा दिया गया। पुलिस ने पूरे नगर की ऐसी नाकाबंदी कर दी कि बिना तलाशी के कोई भी बाहर न जा सके।

भगवतीचरण परिवार ने इस संकट के समय पार्टी का खूब साथ दिया। उन दिनों भगवतीचरण तो कलकत्ता में थे, पर उनकी पत्नी श्रीमती दुर्गा देवी ने पार्टी की सहायता धन देकर भी की तथा वे स्वयं अपने और अपने तीन वर्ष के पुत्र शचींद्र के प्राणों को दाँव पर लगाकर भगतसिंह व राजगुरु को यत्नपूर्वक लाहौर से निकाल ले गईं। उस अभिनय में भगतसिंह एवं दुर्गा भाभी ने पति-पत्नी का और राजगुरु ने नौकर की भूमिका का निर्वाह किया। जब दुर्गा भाभी सुरक्षित रूप से भगतसिंह को लेकर कलकत्ता पहुँच गईं तो उनके पति भगवतीचरण ने बड़े गर्व से कहा—

"दुर्गा! मैं तो तुम्हें एक देहातिन बहू समझे हुए था, तुमने तो स्वयं को एक क्रांतिकारिणी के रूप में प्रस्तुत करके मुझे गर्वित होने का अवसर दिया है। आज तुम सही अर्थों में मेरी पत्नी सिद्ध हुई हो।"

अपने दल के निर्णय के अनुसार भगतसिंह तथा बटुकेश्वर दत्त ने दिल्ली असेंबली में बम विस्फोट करके अपनी गिरफ्तारियाँ दीं और न्यायालय को अपने प्रचार का मंच बनाया। अब भगवतीचरण आजाद के दाहिने हाथ बन गए। चंद्रशेखर आजाद ने अपनी उँगली भगवतीचरण के हाथ में दे दी।

भगवतीचरण दिल और दिमाग दोनों से ही पक्के क्रांतिकारी थे। उस समय वे दिल्ली में रहकर काम कर रहे थे। यशपाल भी वहीं थे। चंद्रशेखर आजाद वैसे

कानपुर को अपना मुख्यालय बनाए हुए थे, पर वे दिल्ली का चक्कर भी लगा आते थे। दिल्ली में भी बम का कारखाना खोल दिया गया था। दिल्ली में उस समय राजनीतिक सरगर्मी भी थी। वाइसराय लॉर्ड इरविन और महात्मा गांधी में कोई संधि-वार्त्ता होने वाली थी।

यशपाल तथा भगवतीचरण ने यह निश्चय कर डाला कि क्रांतिकारी कार्यों की शृंखला में सांडर्स हत्याकांड और दिल्ली असेंबली बम कांड के पश्चात् तीसरा धड़ाका वाइसराय लॉर्ड इरविन की ट्रेन को बम से उड़ाकर किया जाए। वे दोनों तथा उनके कुछ अन्य साथी योजना में जुट गए और वाइसराय की ट्रेन उड़ाने की पूरी तैयारी कर डाली। जब चंद्रशेखर आजाद दिल्ली पहुँचे तो उनके सामने यह योजना रख दी गई। आजाद का मत था कि यह योजना कुछ समय के लिए स्थगित कर दी जाए; पर ट्रेन उड़ाने की तैयारियाँ पूरी की जा चुकी थीं, इस कारण वह स्थगित नहीं की गई और नियत समय पर योजना क्रियान्वित की गई। पटरी के नीचे बम रख दिए गए और बिजली के तारों द्वारा उनको संबद्ध कर दिया गया। बिजली के तार के दूसरे सिरे का संबंध एक बैटरी से जोड़ा गया। निजामुद्दीन स्टेशन के पास एक खंडहर में से बैटरी का स्विच दबाना था।

वाइसराय की ट्रेन जैसे ही उधर से निकली, क्रांतिकारियों ने स्विच दबाकर बम का धड़ाका कर दिया। वाइसराय का डिब्बा आगे निकल चुका था। भोजनयान का कुछ भाग उड़ गया और क्षतिग्रस्त गाड़ी नई दिल्ली रेलवे स्टेशन पर पहुँच गई। सरकार के बहुत प्रयत्न करने पर भी कोई क्रांतिकारी पकड़ा नहीं जा सका।

क्रांतिकारियों के इस कृत्य की भर्त्सना करने के लिए महात्मा गांधी ने 'कल्ट ऑफ दि बॉम्ब' शीर्षक से एक लेख अपने पत्र 'यंग इंडिया' में प्रकाशित कराया। उस लेख द्वारा क्रांतिकारियों पर बहुत कीचड़ उछाला गया था। इस लेख को पढ़कर चंद्रशेखर आजाद तिलमिला उठे। वे उन आरोपों का उत्तर देना चाहते थे। किसी मंच पर भाषण के द्वारा वे उत्तर दे नहीं सकते थे। कोई समाचार-पत्र उनके उत्तर को छापता नहीं। उन्होंने उन आरोपों का उत्तर देने हेतु एक लेख लिखने के लिए भगवतीचरण से कहा। भगवतीचरण और यशपाल ने बहुत श्रम करके 'फिलॉसाफी ऑफ दि बॉम्ब' शीर्षक का एक लेख लिख डाला। उन्होंने गांधीजी के प्रत्येक आरोप का खंडन बहुत तार्किक ढंग से किया था और बम निर्माण के पीछे जो क्रांतिकारियों का चिंतन था, उसे बहुत प्रभावशाली ढंग से स्थापित किया था। उस लेख को एक परचे के रूप में छपवाया गया और ठीक २६ जनवरी, १९३० को वह परचा पूरे भारतवर्ष में एक साथ बँटवाया गया। इस लेख की सभी ने बहुत सराहना की।

भगवतीचरण ने जोखिम का एक और बहुत बड़ा काम अपने ऊपर ले लिया। यद्यपि स्वयं उनके विरुद्ध गिरफ्तारी का वारंट था, फिर भी चंद्रशेखर आजाद को आश्वस्त करके उन्होंने जलगाँव की जेल में जाकर वहाँ कैद अपने क्रांतिकारी साथी भगवानदास माहौर और सदाशिवराव मलकापुरकर से भेंट करने का निश्चय कर डाला। उनके ये दोनों साथी कुछ विस्फोटक पदार्थ ले जाते हुए भुसावल स्टेशन पर गिरफ्तार किए जाकर जलगाँव जेल में रखे गए थे। गिरफ्तार साथी चाहते थे कि ज़िस दिन जलगाँव अदालत में उनके गद्दार साथी फणींद्र घोष और जयगोपाल सरकारी गवाह के रूप में प्रस्तुत हों, उन्हें वहीं गोली से उड़ा दिया जाए। इसके लिए उन्होंने चंद्रशेखर आजाद के पास संदेश भेजा था कि उनके पास एक रिवॉल्वर भिजवा दिया जाए। आजाद ने रिवॉल्वर भेजने का दायित्व सदाशिवराव के भाई शंकरराव मलकापुरकर को दिया और जेल में पहुँचकर अपने बंदी साथियों को आवश्यक निर्देश देने का दायित्व अपने प्रिय साथी भगवतीचरण को दिया।

भगवतीचरण को तो खतरों से खेलने में मजा आता था। यद्यपि उनके सिर पर भी कच्चे धागे से गिरफ्तारी की तलवार लटक रही थी; फिर भी उसकी चिंता किए बिना वे वकील का रूप धारण करके जलगाँव जेल में अपने क्रांतिकारी साथी भगवानदास माहौर और सदाशिवराव मलकापुरकर से भेंट करने जा पहुँचे। वकील को हक होता है कि वह एकांत में अपने मुवक्किल को कानूनी परामर्श दे सके। अपने इस अधिकार का उपयोग करते हुए भगवतीचरण ने जेल में अपने साथियों से चर्चा की। उन्होंने दल के कमांडर इन चीफ चंद्रशेखर आजाद का संदेश उन दोनों को दे दिया। आजाद का परामर्श था कि यदि संभव हो तो दोनों ही सरकारी गवाह—फणींद्र व जयगोपाल को खत्म कर दिया जाए और यदि एक को मारना संभव हो तो पहले फणींद्र घोष को मारा जाए; क्योंकि वह क्रांतिकारियों की केंद्रीय समिति का सदस्य रह चुका है और उसे पार्टी के बहुत से रहस्य मालूम हैं। भगवतीचरण ने ये सभी बातें अपने साथियों को समझा दीं। उनके साथी चकित थे कि भगवतीचरण ने बहुत खतरा मोल लेकर उनसे जेल में भेंट की। यदि वे वकील की भूमिका में कहीं कमजोर पड़ जाते या कोई भूल कर बैठते तो वे भी गिरफ्तार होकर उसी जेल की मेहमानी कर रहे होते।

कालांतर में भगवानदास माहौर ने जलगाँव अदालत में अपने गद्दार साथी फणींद्र घोष पर गोली चलाई; पर वह गोली उस देशद्रोही की जान लेने में असफल रहीं। वह केवल घायल होकर रह गया।

भगवतीचरण ने खामोश बैठकर जीवन व्यतीत करना सीखा ही नहीं था।

उनका मत था कि कुछ उठा-पटक या उखाड़-पछाड़ होते ही रहना चाहिए। उन्होंने चंद्रशेखर आजाद के सामने प्रस्ताव रख दिया कि भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त को लाहौर जेल से छुड़ाने का यत्न करना चाहिए। उन्होंने उन्हें छुड़ाने की संभावनाओं से परिचित कराते हुए अपनी पूरी योजना बता दी। आजाद ने बहुत ठंडे दिमाग से उस योजना पर विचार किया और अपने साथियों से परामर्श भी लिया। सभी के हौसले बुलंद थे। भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त को जेल से छुड़ाने के विचार का सभी ने बड़े उत्साह के साथ समर्थन किया।

आजाद की योजना के अनुसार साथी यशपाल ने लाहौर में बहावलपुर रोड पर एक कोठी का आधा हिस्सा किराए पर ले लिया। उस कोठी के आधे हिस्से में कोई इंजीनियर साहब रहते थे। उनकी उपस्थिति से किसीको आपत्ति नहीं हुई, बल्कि इसको अच्छा समझा गया।

कोठी को फर्नीचर आदि से सज्जित किया गया। उसमें रहने के लिए सुशीला दीदी और दुर्गा भाभी को भी बुला लिया गया, जिससे वह एक भरी-पूरी गृहस्थी दिखाई दे। इस परिवार में खानसामा की भूमिका साथी मदनगोपाल और बैरा की भूमिका साथी छैलबिहारी को दी गई। कोठी में रहनेवाले पुरुष सदस्यों में थे—भगवतीचरण, चंद्रशेखर आजाद, यशपाल, धनवंतरी, विश्वनाथ वैशंपायन और सुखदेवराज। उस कोठी में एक कार भी रखी गई। उस समय तक पार्टी ने एक पुरानी कार भी खरीद ली थी। कार का ड्राइवर बनाया गया साथी टहलसिंह को। कोठी में रहकर साथी भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त को जेल से छुड़ाने की योजना की तैयारियाँ होने लगीं। आजाद कानपुर केंद्र से बम के खोल भी ले आए थे। उनमें मसाला भरकर बम भी तैयार कर लिये गए। यह मसाला रोहतक में बने कारखाने से मँगवाया गया था।

२८ मई, १९३० को दिन के लगभग ग्यारह बजे भगवतीचरण, सुखदेवराज और विश्वनाथ वैशंपायन साइकिलों से रावी नदी की तरफ चल दिए। वे उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ विश्वविद्यालय बोट क्लब की नाव बँधी रहती थी। सुखदेवराज उस बोट क्लब का सेक्रेटरी था, अत: नाविक मोहम्मदीन ने नाव देने में कोई आपत्ति नहीं की। साइकिलें वहीं छोड़ दी गईं। सामान के नाम पर उन लोगों के पास एक बड़ा थैला था, जिसमें सबसे नीचे एक तरबूज रखा गया था और उसके ऊपर कुछ संतरे। एक जीवित बम था, जो संतरों के बीच इस प्रकार रखा गया था कि वह हिले-डुले नहीं।

भगवतीचरण और सुखदेवराज को नाव चलाना आता था। नदी के किनारे नाव ले जाने के पश्चात् उसे एक खूँटे के साथ बाँध दिया गया। तरबूज नाव में ही

छोड़ा गया। विचार हुआ कि लौटकर यह तरबूज खाया जाएगा। संतरे साथ में ले लिये गए। जंगल में उन्हें एक ऐसा स्थान मिला, जहाँ एक गड्ढा था। बम का परीक्षण करने के लिए वह स्थान उपयुक्त समझा गया।

भगवतीचरण ने थैले में से बम निकाला और उसे देखकर बोले—

''इसका पिन ढीला है।''

सुखदेवराज व वैशंपायन ने भी हाथ में बम लेकर देखा और पाया कि उसका पिन सचमुच ही ढीला था। वैशंपायन ने कहा—

''भगवती भाई! इस बम का परीक्षण खतरे से खाली नहीं है। आज परीक्षण स्थगित रखा जाए। हम लोग कल एक नया बम लेकर आएँगे और तब उसका परीक्षण करेंगे।''

प्रस्ताव अमान्य करते हुए भगवतीचरण बोले—

''आज २८ मई हो गई है। १ जून को एक्शन करना है। यदि बम का परीक्षण आज नहीं करेंगे तो कैसे काम चलेगा; यह काम किसी भी कीमत पर टाला नहीं जा सकता। तुम लोग हटो, मैं इसे चलाकर देखता हूँ।''

सुखदेवराज और वैशंपायन—दोनों ने ही उन्हें रोका; पर उन्होंने किसीकी नहीं सुनी। जब उन दोनों में से प्रत्येक ने स्वयं बम चलाने का प्रस्ताव रखा तो वे बोले—

''बेफिक्र रहो, मुझे कुछ नहीं होने वाला; और यदि कुछ हो भी जाए तो चिंता की कोई बात नहीं। यदि तुम लोगों में से किसीको कुछ हो गया तो मैं मुँह दिखाने लायक नहीं रहूँगा।''

यह कहते हुए भगवतीचरण ने अपने दोनों साथियों को दूर भेज दिया। उन्होंने स्वयं एक चट्टान की ओट लेकर अपने दोनों हाथों में बम थामकर उसका पिन खींचने के लिए हाथ ऊँचे किए। उन्होंने हाथ ऊँचे किए ही थे कि बम उनके हाथों में ही फट गया। उनके साथियों ने समझा कि बम का परीक्षण सफल रहा। बधाई देने के लिए वे उनके पास पहुँचे। धुआँ छँटने पर उन्होंने देखा कि भगवती भाई लहूलुहान भूमि पर पड़े हुए हैं। उनका एक हाथ कलाई के पास से पूरा उड़ गया था। दूसरे हाथ की उँगलियाँ उड़ गई थीं। सबसे बड़ा जख्म उनके पेट में था। पेट की आँतें निकलकर बाहर आ गई थीं।

सुखदेवराज के बाएँ पैर में भी बम का एक टुकड़ा घुस गया था और उससे खून बह रहा था।

सुखदेवराज ने अपनी बनियान फाड़ी और अपने जख्म पर पट्टी बाँध ली। वैशंपायन ने अपनी कमीज तथा बनियान उतारकर उन्हें फाड़ा और वे भगवतीचरण

के जख्मों पर पट्टियाँ बाँधने लगे। वे लाहौर के मार्गों से परिचित नहीं थे, अतः डॉक्टरी सहायता भगवतीचरण भाई को उपलब्ध कराने के लिए सुखदेवराज लँगड़ाते-लँगड़ाते नगर की ओर चल पड़े।

मृत्यु के इतने निकट पहुँचकर भी भगवतीचरण के चेहरे पर दिव्य मुसकान थी। उनका रक्त बह-बहकर मातृभूमि का अभिसिंचन कर रहा था। वैशंपायन संतरे की कलियाँ साफ करके उनके मुँह में दे रहे थे। पानी माँगने पर वे अपने टोप में पानी भरकर लाते और बूँद-बूँद पानी उनके मुँह में टपकाते रहे। असह्य वेदना से कराहते हुए भगवतीचरण रुक-रुककर यह कह सके—

''मेरे चले जाने के बाद भी भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त को जेल से छुड़ाने की योजना स्थगित मत करना। दुर्गा को पार्टी में ही रखना।''

उधर घिसटते-घिसटते सुखदेवराज नगर के बाहर एक प्याऊ तक पहुँच गया। उधर से आ रहे एक ताँगे को उसने रोका। ताँगेवाला उसका बहता हुआ खून देखकर घबरा गया। सुखदेवराज ने उसे बताया—

''वृक्ष से गिर पड़ा हूँ। नुकीले पत्थर पर पैर पड़ जाने के कारण जख्मी हो गया हूँ।''

प्याऊवाले और ताँगेवाले की सहायता से सुखदेवराज ताँगे में बैठा। सनातन धर्म कॉलेज तक पहुँचने पर वह ताँगा छोड़कर उसने दूसरा ताँगा ले लिया और कोठी जा पहुँचा। कोठी पर ताँगे का पहुँचना ही लोगों के लिए कौतूहल था। ताँगे की आहट पाते ही आजाद, मदनगोपाल व यशपाल बाहर निकले और घायल सुखदेवराज को देखकर दुर्घटना का अनुमान लगा लिया।

सुखदेवराज का अनुमान था कि उस समय तक भगवतीचरण बचे नहीं होंगे; पर डरते-डरते उसने इतना ही कहा—

''बम विस्फोट से भगवती भाई बुरी तरह घायल हो गए हैं। वैशंपायन को उनके पास छोड़कर सूचना देने आया हूँ। फौरन टैक्सी, स्ट्रेचर और डॉक्टर घटनास्थल पर भेजने का प्रबंध कीजिए।''

सुखदेवराज ने घटनास्थल का भी ब्योरा दे दिया। चंद्रशेखर आजाद ने घटनास्थल नहीं देखा था। कोठी की स्थिति को सँभालने के लिए उनका वहाँ रहना आवश्यक था। डॉक्टरी सहायता ले जाने के लिए उन्होंने यशपाल को नियुक्त किया।

यशपाल छैलबिहारी को साथ लेकर चल दिए। उनका विचार हुआ कि डॉक्टर को खोजने में देर लगेगी और डॉक्टर को ले जाने में भेद खुल जाने का भी भय था। उन्होंने एक टैक्सी का प्रबंध कर लिया और उसे लेकर वे घटनास्थल पर

पहुँच गए। उन्होंने कहा—

"टैक्सी लाया हूँ, भगवती भाई को उसमें डालकर लिये चलते हैं।"

इस विचार से सभी लोगों ने भगवतीचरण को भूमि से उठाने का उपक्रम किया। वे उन्हें पूरा उठा भी न पाए थे कि भगवतीचरण के मुँह से बड़ी जोर की चीख निकल गई। उन्हें फिर उठाने का प्रयत्न नहीं किया गया। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि उन्हें उठाकर ले जाना असंभव था।

अब छैलबिहारी को भगवतीचरण के पास छोड़कर यशपाल और वैशंपायन टैक्सी से वापस हो लिये। वे मेडिकल कॉलेज पहुँचे, जहाँ पार्टी के एक सदस्य सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन का भाई ब्रह्मानंद पढ़ता था। ब्रह्मानंद अपने कुछ विश्वस्त साथियों तथा आवश्यक ओषधि और मरहम-पट्टी का सामान लेकर घटनास्थल पर जा पहुँचे। उस समय अँधेरा हो चुका था। टॉर्च की रोशनी की सहायता से वे उस स्थल को खोजने लगे, जहाँ भगवतीचरण को रखा गया था। उन्हें झाड़ियों पर कहीं-कहीं सफेद कपड़े की धज्जियाँ मिलीं। उन्हें देखते-देखते वे उस स्थल पर पहुँचे, जहाँ भगवतीचरण पड़े थे। इस दल ने देखा कि छैलबिहारी वहाँ नहीं थे और भगवतीचरण निष्प्राण पड़े हुए थे। अनुमान लगाया गया कि भगवती भाई का प्राणांत होने पर जंगली जानवरों के उत्पात के कारण छैलबिहारी ने वह स्थान छोड़ा होगा। रास्ते की पहचान के लिए उसने झाड़ियों पर जो सफेद कपड़े की चिंदियाँ बाँध दी थीं, वह बहुत सूझबूझ का काम था।

दल ने भगवतीचरण के शव को ले जाना उचित नहीं समझा। एक सफेद चादर में उनके शव को लपेटकर वहीं छोड़ा गया। घटना की सूचना देने वे लोग कोठी पर जा पहुँचे।

भगवतीचरण के बलिदान का समाचार जब बहावलपुर कोठी पर पहुँचा तो वहाँ उपस्थित सभी लोग हतप्रभ और किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए। एक कमरे में एकत्र उन लोगों का मौन विलाप और अश्रुधाराएँ वातावरण को वेदनामय बना रही थीं। लोगों ने सेनापति चंद्रशेखर आजाद को पहली बार रोते हुए देखा। यदि कोई नहीं रो रहा था तो वे थीं दुर्गा भाभी। अपने पति के निधन के समाचार ने उन्हें संज्ञाशून्य कर दिया था। एक जैसा भाव उनके चेहरे पर जमकर रह गया और उनकी आँखें फटी-की-फटी रह गईं। लोग चाहते थे कि वे रोएँ और अपने दुःख को हलका करें; पर शायद वेदना के आधिक्य और स्थिति की गंभीरता ने उन्हें रोने नहीं दिया। जोर-जोर से विलाप करने का अर्थ होता—पति की मृत्यु का विज्ञापन, लोगों का सहानुभूति-प्रदर्शन के लिए उनके पास पहुँचना, क्रांतिकारी योजना का भंडाफोड़ होना और भगतसिंह-बटुकेश्वर दत्त को छुड़ाने की योजना

का निरस्त होना। दुर्गा देवी ने पति के चिर वियोग का दारुण दुःख झेल लिया और पार्टी को संकट से बचा लिया।

जब चंद्रशेखर आजाद का चित्त ठिकाने पर आया तो वे दुर्गा भाभी से बोले—

"अब आज से तुम हमारी माँ-बहन सबकुछ हो। तुमने देश की आजादी और पार्टी की भलाई के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया है। तुम्हारे त्याग और तुम्हारे प्रति अपने कर्तव्य को हम लोग कभी नहीं भूलेंगे।"

सुशीला दीदी ने दुर्गा भाभी को पलँग पर लिटा दिया और वे स्वयं तथा धनवंतरी रात-भर जागकर सांत्वना देते रहे। उस कोठी के अन्य आधे भाग में रहनेवाले इंजीनियर श्रीपाल को घटना का आभास नहीं हुआ।

जब सुबह होने को हुई तो आजाद ने अपने साथी का अंतिम संस्कार करने का प्रस्ताव रख दिया। दुर्गा भाभी और सुशीला दीदी ने भी संस्कार में सम्मिलित होने का आग्रह किया; पर आजाद ने आगा-पीछा बताते हुए उन्हें समझा दिया।

कुदालियाँ-फावड़े लेकर आजाद, धनवंतरी और मदनगोपाल घटनास्थल पर पहुँच गए। यदि दाह-संस्कार करते तो धुआँ उठता और मृत्यु का विज्ञापन होता। धरतीपुत्र को धरती माता की गोद में सुलाकर वे लोग कोठी पर लौट आए।

गजल का एक शेर, जो भगवतीचरण को बहुत प्रिय था, वह उन्हींके लिए चरितार्थ हो गया—

'दरे-तदवीर पर सिर फोड़ना शेवा रहा अपना,
वसीले हाथ ही आए न किस्मत आजमाई के।'

□

★ भगवानदास माहौर ★ मणिलाल

सरदार भगतसिंह और भगवानदास माहौर में छेड़खानी चल रही थी। भगवानदास माहौर का गला सधा हुआ और स्वर बहुत मीठा था। उनके गाने की प्रशंसा करते हुए भगतसिंह ने कहा—

"यार हनुमानजी, आप गाते सचमुच बहुत अच्छा हैं। क्या फाँसी के फंदे में भी आप इसी प्रकार गा सकेंगे?"



भगवानदास माहौर



मणिलाल

भगवानदास कब चूकने वाले थे। उनका त्वरित उत्तर था—

"हाँ, फाँसी के फंदे में भी मैं इसी प्रकार गा सकूँगा, यदि आप जैसा जामवंत मुझे याद दिला दे।"

"रही बात पक्की। लो ठोको हाथ!" कहते हुए भगतसिंह ने अपना हाथ भगवानदास माहौर की तरफ बढ़ा दिया। भगवानदास माहौर ने भगतसिंह के हाथ पर हाथ मारते हुए कहा—

"बात मेरी तरफ से भी पक्की रही।"

भगतसिंह जब छेड़खानी के मूड में होते तो वे भगवानदास माहौर को 'हनुमानजी' कहकर पुकारते। इसका कारण यह था कि भगवानदास माहौर के नाक के नीचे का भाग काफी चौड़ा था—जैसा बंदरों का हुआ करता है। जब भगवानदास से भगतसिंह की पहली भेंट हुई थी, उस समय भी भगतसिंह ने छेड़ते हुए कहा था—

"चार्ल्स डारविन का सिद्धांत झूठा नहीं है। मनुष्य और बंदर के बीच की कड़ी आज मिल गई।"

यह सुनकर भगवानदास ने कसकर एक घूँसा भगतसिंह को लगा दिया था; क्योंकि उन्हें अपनी पहलवानी पर भी गुमान था। यदि भगवानदास एक सेर पहलवान थे तो भगतसिंह सवा सेर पहलवान थे। घूँसेबाजी में भगवानदास माहौर को मात खानी पड़ी थी। जब चंद्रशेखर आजाद ने सुलह का प्रस्ताव रखा तो भगतसिंह ने शर्त रखी थी—

"संधि तभी होगी, जब हनुमानजी कोई गाना सुनाएँ।"

और तब कुट-पिटकर भगवानदास माहौर ने गाना सुनाया था। बहुत अच्छा

गाया था। उन्होंने एक मराठी गीत गाया था, जिसमें 'कुठे गुंतला' शब्द बार-बार आता था। भगतसिंह ने अपने साथी के गाने की प्रशंसा तो की ही थी, साथ में उनका नया नाम भी रख दिया था—कुठे गुंतला।

बात लौटकर उसी बिंदु पर पहुँचती है, जब भगवानदास माहौर ने फाँसी के तख्ते पर भी गाने का वादा किया। उन्होंने फाँसी का फंदा अर्जित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। यह संयोग की बात ही थी कि फाँसी का फंदा उनके हाथ में आकर खिसक गया। वह घटना इस प्रकार थी—

क्रांतिकारी राजगुरु चंद्रशेखर आजाद से रूठकर यह कहकर पूना चले गए कि मैं वहाँ अपनी अलग पार्टी बनाऊँगा और फाँसी का फंदा अर्जित करके दिखा दूँगा। वे चंद्रशेखर आजाद से इसलिए रूठ गए थे, क्योंकि आजाद ने दिल्ली की असेंबली में बम फेंकने के लिए उनको नहीं चुना था। राजगुरु की भगतसिंह के साथ प्रतिद्वंद्विता थी। उनका कहना था—

''जो काम भगतसिंह कर सकता है, वह मैं भी कर सकता हूँ। यह आपका पक्षपात है, जो आप असेंबली में बम फेंककर भगतसिंह को फाँसी कमाने का अवसर दे रहे हैं और मुझे उस अवसर से वंचित कर रहे हैं।''

राजगुरु इश्के-शहादत के जीते-जागते नमूने थे। जब वे रूठकर महाराष्ट्र चले गए और चंद्रशेखर आजाद को मालूम पड़ा कि उन्होंने अकोला में अपना एक क्रांतिकारी संगठन खड़ा कर लिया है तो आजाद ने भगवानदास माहौर और सदाशिवराव मलकापुरकर को समझाते हुए कहा—

''तुम लोग कुछ हथियार और गोला-बारूद लेकर राजगुरु के पास अकोला चले जाओ। वहाँ यह सामान उसे देकर कहना कि मैं शीघ्र ही वहाँ पहुँचकर उसके साथ काम करूँगा। मैं उसे अकेला नहीं छोड़ सकता।''

अपने नेता का यह आदेश मानकर भगवानदास माहौर एवं सदाशिवराव मलकापुरकर एक पेटी में बम का मसाला और कुछ रिवॉल्वर रखकर अकोला के लिए चल दिए। उन्हें भुसावल से अकोला के लिए गाड़ी बदलनी थी। कुली के सिर पर अपनी पेटी रखवाकर वे अकोला की गाड़ी पकड़ने के लिए चल दिए। जैसीकि उसकी आदत थी, कुली उन्हें आबकारी के नाके की तरफ से ले गया। आबकारी के अधिकारियों ने सामान की जाँच करने का बहुत आग्रह किया। आखिर उन्होंने वह पेटी खुलवा ही ली। पेटी में आपत्तिजनक सामान तो था ही। दोनों को वहाँ से भागना पड़ा। मलकापुरकर भागे तो सिगनल के तारों में उनका पैर उलझ गया। गिर पड़ने पर उन्हें दबोच लिया गया।

भगवानदास उधर भागे, जिधर पुलिस की चौकी थी। पीछा करनेवालों पर

उन्होंने कुछ गोलियाँ चलाईं; लेकिन उनकी पिस्तौल जाम हो गई और उन्हें पकड़ लिया गया। उन दोनों को जेल में डाल दिया गया। जब लोगों को मालूम हुआ कि दो क्रांतिकारी पकड़े गए हैं तो उनके पक्ष में जोरदार प्रदर्शन किया।

भगवानदास और सदाशिवराव को पुलिस लाहौर ले गई; पर उन्हें लाहौर षड्यंत्र केस में सम्मिलित न करके भुसावल बम केस चलाने के लिए जलगाँव ले आई। उनपर मुकदमा चलने लगा। २१ फरवरी, १९३० को उनके विरुद्ध गवाही देने लाहौर पुलिस के साथ मुखबिर जयगोपाल और फणींद्र घोष आने वाले थे। सदाशिवराव के मन में यह विचार कौंध गया कि जैसे भी हो, दोनों मुखबिरों को अदालत में मारना चाहिए। इन दोनों की ओर से झाँसी के प्रसिद्ध वकील श्री धुलेकर निःशुल्क मुकदमा लड़ रहे थे। वे क्रांतिकारियों के बहुत भरोसे के आदमी थे। अभियुक्त को अपने वकील से एकांत में मुलाकात करने की सुविधा दी जाती है। जब श्री धुलेकर से इन लोगों की भेंट हुई तो इन लोगों ने कहा कि यदि चंद्रशेखर आजाद हमारे पास एक पिस्तौल भेज दें तो हम अदालत में दोनों मुखबिरों को मार दें। श्री धुलेकर ने वह संदेश चंद्रशेखर आजाद के पास भेज दिया। चंद्रशेखर आजाद ने अपने एक फरार क्रांतिकारी साथी भगवतीचरण को वकील के वेश में भगवानदास माहौर और सदाशिवराव मलकापुरकर से भेंट करने के लिए जलगाँव की जेल में भेजा।

भगवतीचरण के सिर पर भी नंगी तलवार लटक रही थी; लेकिन जोखिम उठाकर वकील के रूप में वे जेल में उन दोनों से मिले। उन्होंने कहा—

''आप लोगों के पास एक पिस्तौल समय पर पहुँच जाएगी। चंद्रशेखर आजाद का कथन है कि यदि दोनों मुखबिर मारे जा सकें तो दोनों को ही मारा जाए और यदि केवल एक मुखबिर को मारने की सुविधा हो तो फणींद्र घोष को मारा जाए; क्योंकि वह क्रांतिकारियों की केंद्रीय समिति का सदस्य रह चुका है। आजाद ने यह भी कहा है कि गोली चलाने का काम अकेला भगवानदास करे और सदाशिव को मुक्त रखा जाए; क्योंकि एक ही मामले में दो आदमी फाँसी पाएँ, यह अच्छा नहीं है।''

सदाशिवराव और भगवानदास दोनों ही खुश थे कि यदि काम हो गया तो आजाद की नाराजगी दूर हो जाएगी। २० फरवरी की शाम को सदाशिवराव मलकापुरकर के बड़े भाई शंकरराव मलकापुरकर चावल के एक बड़े कटोरे के नीचे भरी हुई पिस्तौल रखकर जेल में उन लोगों को दे आए। अपने अच्छे चाल-चलन से उन दोनों ने जेल के कर्मचारियों को अपने पक्ष में कर लिया था और उन्हें बाहर से भी भोजन पहुँचाया जा सकता था।

२१ फरवरी, १९३० को भगवानदास और सदाशिवराव को जलगाँव की अदालत में ले जाया गया। भगवानदास अपने कोट की जेब में पिस्तौल रखे हुए थे। जेल और पुलिस के लोगों का उनपर विश्वास जम ही गया था, अत: मामूली तलाशी लेकर उन्हें अदालत के कक्ष में ले जाया गया। अदालत में दोनों मुखबिर उनके सामने ही थे; पर वहाँ गोली चलाने पर और किसीको भी लग सकती थी। जब भोजन का समय हुआ तो अदालत कुछ देर के लिए उठ गई। इन दोनों को भी पास के बगीचे में ले जाया गया। बगीचे में एक तंबू लगाया गया था, जिसमें दोनों मुखबिर कुरसियों पर बैठकर खाना खाने लगे। तंबू के दरवाजे पर लाहौर का लहीम-शहीम पुलिस इंस्पेक्टर नानकशाह कारतूसों की पेटी लटकाए बैठा हुआ था।

भगवानदास माहौर का दाहिना हाथ और सदाशिवराव का बायाँ हाथ एक ही हथकड़ी में बँधे हुए थे। उसी समय सदाशिवराव के बड़े भाई शंकरराव ने उन दोनों को खाने का कुछ सामान लाकर दे दिया। उन्हें भोजन करने की सुविधा देने के लिए उनकी हथकड़ी खोलकर सदाशिवराव के बाएँ हाथ में डाल दी गई। भगवानदास के दोनों हाथ पूर्णरूप से मुक्त कर दिए गए।

भगवानदास माहौर ने इसे बहुत अच्छा अवसर समझा। अपनी पिस्तौल निकालकर वे उस तंबू की तरफ झपट पड़े, जिसमें गद्दार जयगोपाल और फणींद्र घोष बैठे हुए थे। पहली गोली उन्होंने पुलिस इंस्पेक्टर नानकशाह पर छोड़ी, जो तंबू के दरवाजे पर पहरे के लिए डटा हुआ था। गोली उसके कूल्हे को छीलती हुई निकल गई। गोली खाकर नानकशाह एक तरफ को भागा। इस बीच भगवानदास ने तंबू में पहुँचकर दोनों गद्दारों पर एक-एक गोली छोड़ी। नानकशाह पर छोड़ी गई गोली से वे लोग सचेत हो गए थे और जान बचाने के लिए टेबिलों के नीचे छिप गए। गोलियों से वे घायल अवश्य हो गए, लेकिन चोट घातक नहीं थी। तीन गोलियाँ छोड़ने के बाद भगवानदास की पिस्तौल जाम हो गई। उसे ठीक करने का अवसर था नहीं।

भगवानदास को ध्यान आया कि अदालत के हॉल में प्रदर्शन के लिए वह माउजर पिस्तौल रखी हुई है, जो हमसे भुसावल में छीनी गई थी। उसे उठाने के लिए भगवानदास अदालत के मुख्य कक्ष की तरफ लपके। रास्ते में लाहौर का पुलिस इंस्पेक्टर नानकशाह था। यह कहते हुए कि 'बाबू, मुझ निरपराध को क्यों मारते हो', वह भगवानदास के ऊपर गिर पड़ा। उसके लहीम-शहीम शरीर के नीचे भगवानदास माहौर दब गए। अब तो लोगों को वीरता दिखाने का अवसर मिल गया। कोई उन्हें लात की ठोकर से मार रहा था तो कोई बंदूक के कुंदे से। नानकशाह उनके ऊपर पड़ा हुआ था, इसलिए भगवानदास मार खाने से बच गए।

उन्हें और सदाशिवराव को हथकड़ियों-बेड़ियों में जकड़ दिया गया। दर्शक लोग, जो अदालत में इकट्ठे हुए थे, वे 'मारनेवाले क्रांतिकारी की जय' के नारे लगाने लगे। दोनों क्रांतिकारियों को देखने के लिए मकानों की छतों पर और वृक्षों पर लोगबाग लद गए। क्रांतिकारियों के पक्ष में दंगा भड़क उठा और लाठीचार्ज हुआ। चालीस दंगाई पकड़े गए और उनपर मुकदमा चलाया गया।

गद्दारों को मारने में असफल होने पर भगवानदास माहौर को बहुत खेद हो रहा था। वे सोच रहे थे कि चंद्रशेखर आजाद कहेंगे कि मूर्ख ने बिना कुछ किए दो पिस्तौल खो दीं। उन्हें इस विचार से संतोष हो रहा था कि इस मामले में शायद उन्हें फाँसी की सजा मिल जाए और फाँसी के तख्ते पर कोई गीत गाकर वे कह सकें—

'देख भगतसिंह, मैंने जो बात कही थी, वह पूरी कर रहा हूँ। मैं फाँसी के तख्ते पर भी उसी मस्ती के साथ गा रहा हूँ, जिस मस्ती के साथ पहले गाया करता था।'

भगवानदास माहौर को उस समय धक्का लगा, जब इस मुकदमे में उन्हें फाँसी की सजा न सुनाई जाकर आजन्म कारावास की सजा सुनाई गई। उनकी आँखों के सामने वे दिन घूम गए, जब चंद्रशेखर आजाद झाँसी पहुँचे थे और उन्होंने भगवानदास माहौर, सदाशिवराव मलकापुरकर तथा विश्वनाथ वैशंपायन को अपनी पार्टी में सम्मिलित किया था। उस समय भगवानदास की उम्र सत्रह वर्ष के आसपास रही होगी और वे इंटर कॉलेज में पढ़ रहे थे। भगवानदास काम का आदमी है या नहीं, इसकी जाँच करने के लिए आजाद ने बहुत अच्छा नाटक रचा था।

एक कमरे के अंदर आजाद के साथी शचींद्रनाथ बख्शी इन नए रंगरूटों को पिस्तौल भरना और उसे चलाने का प्रशिक्षण देने का अभिनय कर रहे थे। उन्होंने पिस्तौल में कारतूस भरे और उसकी विधि समझाने लगे। पिस्तौल की नली भगवानदास माहौर की ओर थी। बख्शीजी ने कहा—"देखो, घोड़ा इस तरह दबाया जाता है।" यह कहकर वे घोड़ा दबाने वाले थे कि पास में बैठे चंद्रशेखर आजाद ने बख्शीजी का हाथ ऊँचा कर दिया और गोली छूटकर मकान की छत में लगी। बख्शीजी ने घबराहट का अभिनय किया। चंद्रशेखर आजाद ने यह जानने के लिए कि भगवानदास घबराए या नहीं, उनकी नाड़ी की गति देखी तथा धड़कन जानने के लिए उनके दिल पर हाथ भी रखा। भगवानदास मुसकरा रहे थे। घबराहट का कोई चिह्न उनके चेहरे पर नहीं था। आजाद और बख्शीजी की आँखें आपस में मिलीं। उन आँखों में भाव था—

'अपनी पार्टी के लिए ऐसा ही आदमी चाहिए। हमारी परीक्षा में यह खरा उतरा है।'

प्रकट में चंद्रशेखर आजाद ने भगवानदास माहौर से कहा—

''भाग्यशाली हो, ऐसे थोड़े ही मर जाओगे। कुछ करके मरोगे।''

उस दिन से भगवानदास पर बहुत भरोसा किया जाने लगा। उन्हें यह नहीं बताया गया कि उनकी परीक्षा ली गई थी।

चंद्रशेखर आजाद काकोरी कांड के पश्चात् अज्ञातवास के लिए झाँसी पहुँचे थे। वे बुंदेलखंड मोटर कंपनी में मैकेनिक का काम सीख रहे थे। अपने भोजन की उन्होंने कोई नियमित व्यवस्था नहीं की थी। कभी-कभी वे मास्टर रुद्रनारायण के घर भोजन कर लिया करते थे और कभी-कभी रोटियाँ उनके डेरे पर ही पहुँच जाया करती थीं। भगवानदास माहौर अपनी थाली में से रोटियाँ तथा अचार चुराकर और उन्हें कागज में लपेटकर आजाद को दे आते थे। उनकी माँ को प्रसन्नता थी कि मेरे बेटे की भूख बढ़ रही है और वह ज्यादा रोटियाँ खाने लगा है। उन्हें क्या पता था कि उनका बेटा रोटियाँ चुराकर अपने क्रांतिकारी साथी को खिलाता है। सदाशिवराव मलकापुरकर और विश्वनाथ वैशंपायन भी इसी प्रकर रोटियाँ चुराकर आजाद के पास ले जाते थे। एक दिन भगवानदास ने आजाद से कहा भी—

''हमें यह अच्छा नहीं लगता कि हम तो अपने घरों पर अच्छा खाना खाते हैं और आपके हिस्से में केवल रूखी रोटियाँ ही पड़ती हैं।''

इसके उत्तर में आजाद ने कहा—

''अरे, मैं तो तुम लोगों से अच्छा खाना खाता हूँ। मुझे तीन घरों की रोटियाँ और तीन तरह के अचार मिलते हैं; और तीन साथियों का प्यार भी तो मिलता है।''

चंद्रशेखर आजाद ने अपने इन तीन साथियों को निशाना लगाना भी सिखा दिया। पास ही खनियाधाना एक छोटा राज्य था, जिसके राजा खलकसिंह जूदेव आजाद को बहुत मानते थे। उन्हें मालूम था कि आजाद क्रांतिकारी हैं। आजाद उनके यहाँ मैकेनिक के रूप में ही पहुँचते थे। उन्हें आया देख राजा साहब खड़े होकर उनका स्वागत करते थे। राजा साहब के सभासदों को यह अच्छा नहीं लगता था कि राजा साहब एक मामूली मैकेनिक के स्वागत के लिए खड़े हों। उन लोगों ने चंद्रशेखर आजाद को नीचा दिखाने का एक षड्यंत्र रच डाला।

एक दिन जब राजा खलकसिंह जूदेव बगीचे में अपने सभासदों से घिरे बैठे थे तो उसी समय चंद्रशेखर आजाद वहाँ पहुँचे। उनके साथ मास्टर रुद्रनारायण, भगवानदास माहौर और सदाशिवराव मलकापुरकर भी थे। राजा साहब ने उठकर अतिथियों का स्वागत किया। चंद्रशेखर आजाद वहाँ पंडित हरीशंकर के नाम से जाने जाते थे।

उस समय राजा साहब के सभासदों में एक ठाकुर साहब कंधे पर बंदूक

लटकाए हुए थे। ठाकुरों की ठकुरास तो जग-जाहिर ही है। उन ठाकुर साहब ने पंडित हरीशंकर को नीचा दिखाने का यह अच्छा अवसर समझा।

जिस प्रकार अलाव के आसपास बैठनेवालों में से हर एक के पास चिलम घूमती है, उसी प्रकार उन ठाकुरों में वह बंदूक घूम गई। 'काकाजू आप', 'दाऊजू आप' करते-करते वह बंदूक चंद्रशेखर आजाद के हाथों में थमा दी गई। एक ठाकुर साहब बोले—

"पंडितजी! आज तो आप ही निशाना साधिए।"

एक झाड़ी की टहनी में अनार का एक सूखा हुआ फल खोंस दिया गया था। उसीको गोली का निशाना बनाया जाना था। राजा साहब जानते थे कि आजाद अचूक निशानेबाज हैं; पर वे यह नहीं चाहते थे कि उनकी परीक्षा ली जाए। उन्होंने साभिप्राय मास्टर रुद्रनारायण की ओर देखा। मास्टर साहब उनका आशय समझ गए। वे आजाद से बोले—

"पंडितजी, आप तो लक्ष्यभेद कर ही लेंगे; लेकिन आप अपने शिष्य भगवानदास की परीक्षा कब लेंगे। आज इसीको निशाना साधने दीजिए।"

भगवानदास भी इस कथन का आशय समझ गए। बालहठ का प्रदर्शन करते हुए वे बोले—

"हाँ, पंडितजी, आज सही निशाना लगाकर मैं आपका आशीर्वाद प्राप्त करके ही रहूँगा।"

यह कहते हुए भगवानदास माहौर ने वह बंदूक आजाद के हाथों से ले ही ली। आजाद को इसके अलावा कुछ नहीं बचा था कि वे भगवानदास को कुछ निर्देश देते। बोले—

"देखो, बंदूक को कंधे से चिपकाओ। एक आँख बंद करके नली को सीध में लो; और जब बंदूक की मक्खी और लक्ष्य एक सीध में आ जाएँ तो घोड़ा दबा दो। इसका ध्यान रखना कि नली हिलने न पाए।"

भगवानदास ने ऐसा ही किया। उन्होंने बंदूक का बट अपने कंधों से भिड़ाया तथा बंदूक की नली की मक्खी एवं अनारफल को एक सीध में किया और घोड़ा दबा दिया। 'धाँय' की एक जोरदार आवाज हुई और अनारफल झाड़ी से गायब हो गया। आजाद ने भगवानदास की पीठ ठोंकी। राजा साहब, मास्टर साहब और सदाशिवराव ने भी उनके निशाने की खूब प्रशंसा की। राजा साहब के सरदारों ने लक्ष्यभेद की कोई प्रशंसा नहीं की। उनमें से एक बोल उठे—

"कभी-कभी तो अंधे के हाथ भी बटेर लग जाती है।"

राजा साहब ने स्थिति को सँभालते हुए कहा—

''जिसका चेला इतना सही निशानेबाज है, उस गुरु का निशाना कैसा होगा, इसकी परीक्षा हम किसी और दिन लेंगे।''

आजाद को सचमुच उस दिन अपने शिष्य भगवानदास के सही निशाने पर गर्व हुआ।

भगवानदास ने इंटर की परीक्षा पास कर ली थी और उन्हें झाँसी में एक नौकरी भी मिल गई थी; लेकिन आजाद तो उन्हें कुछ और ही बनाना चाहते थे। आजाद ने उन्हें प्रेरणा दी कि वे आगे और शिक्षा ग्रहण करने के लिए ग्वालियर के विक्टोरिया कॉलेज में भरती हो जाएँ। उन्होंने कहा—

''तुम्हारे ग्वालियर पहुँच जाने से हम बम बनाने के कारखाने वहाँ खोल सकेंगे और पार्टी के लिए रियासतों से हथियार भी हमें मिलने लगेंगे तथा ठाकुरों व मराठों के लड़के भी हम अपनी पार्टी के लिए छाँट सकेंगे।''

आजाद का परामर्श मानकर भगवानदास माहौर ग्वालियर के विक्टोरिया कॉलेज के छात्र बन गए। पहले तो वे छात्रावास में रहते थे; लेकिन जब क्रांतिकारी साथी वहाँ अधिक संख्या में पहुँचने लगे तो उन्होंने चंद्रबदनी का नाका मोहल्ले में एक मकान किराए पर ले लिया। इस मकान में भगतसिंह, विजयकुमार सिन्हा और बटुकेश्वर दत्त भी ठहरा करते थे। आजाद के तो वहाँ चक्कर लगते ही रहते थे।

कुछ समय पश्चात् भगतसिंह और चंद्रशेखर आजाद के प्रयत्नों से आगरा में बम बनाने के प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई। बंगाल के साथी यतींद्रनाथ दास इन लोगों को बम बनाने का प्रशिक्षण दे रहे थे। चंद्रशेखर आजाद ने झाँसी के साथियों को भी बम बनाने का प्रशिक्षण दिलवा दिया। अब तो उन्होंने ग्वालियर के जनकगंज मोहल्ले में बम बनाने का एक कारखाना खोल दिया। इस कारखाने का संचालन स्वयं आजाद कर रहे थे।

चंद्रशेखर आजाद अपने हर साथी की विशेषताओं से परिचित थे और वे जानते थे कि किस काम में किस साथी का उपयोग किया जाए। जब लाहौर में उन्होंने लाला लाजपतराय के हत्यारे पुलिस अफसर सांडर्स को मारने की योजना बनाई तो भगवानदास माहौर को लाहौर बुलवा लिया। सांडर्स को मारने के लिए उन्होंने जो मोरचाबंदी की, वह इस प्रकार की थी कि सांडर्स किसी भी प्रकार जीवित न बच सके। पहले मोरचे पर उन्होंने भगतसिंह और राजगुरु को नियुक्त किया। साथी जयगोपाल के इशारे पर इन लोगों को सांडर्स पर गोलियाँ चलानी थीं। दूसरे मोरचे पर आजाद स्वयं इसलिए डट गए थे कि यदि भगतसिंह और राजगुरु की गोलियों से सांडर्स बचता है तो वे स्वयं उसको भून डालेंगे। उनका एक उद्देश्य यह भी था कि यदि भगतसिंह तथा राजगुरु दुश्मन को मारने में सफल हो

गए तो वे पीछे लौटेंगे और उनका पीछा करनेवालों से आजाद मुकाबला करेंगे। तीसरा मोरचा उन्होंने काफी दूर उस सड़क पर कायम किया था, जिधर से अपना ऑफिस समाप्त करके सांडर्स जाया करता था। इस तीसरे मोरचे पर उन्होंने भगवानदास माहौर और विजयकुमार सिन्हा को नियुक्त किया। उन्हें भगवानदास की निशानेबाजी पर भरोसा था। हुआ यह कि पहले मोरचे पर ही भगतसिंह एवं राजगुरु ने सांडर्स को भून डाला और सभी साथी अपने ठहरने के स्थानों पर सुरक्षित पहुँच गए। कौन कहाँ ठहरेगा, इसकी व्यवस्था की थी साथी सुखदेव ने।

घटनाचक्र तेजी से घूमने लगा। भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त दिल्ली असेंबली में बम विस्फोट करने के लिए भेजे गए। जब राजगुरु को इस कार्य के लिए नहीं चुना गया तो वह रूठकर महाराष्ट्र चला गया। इसके बाद की वे ही घटनाएँ कि चंद्रशेखर आजाद ने भगवानदास माहौर तथा सदाशिवराव मलकापुरकर को राजगुरु के पास अकोला भेजा और वे दोनों भुसावल स्टेशन पर गिरफ्तार कर लिये गए तथा फिर योजना बनाकर उन लोगों ने जलगाँव की अदालत में गद्दार साथी जयगोपाल एवं फणींद्र घोष को मारने का प्रयत्न किया और उस अपराध में दोनों को आजीवन कारावास की सजाएँ मिलीं।

अपने जेल जीवन के अंतर्गत भगवानदास माहौर कई जेलों में रखे गए और बेंतों को छोड़कर जेल के अंदर दी जानेवाली सभी प्रकार की सजाओं का अनुभव उन्होंने प्राप्त किया। उन्हें बेंतों की सजा भी सुनाई गई थी, लेकिन वह टल गई। वह घटना इस प्रकार है—

अपने जेल जीवन के लिए भगवानदास माहौर ने जो सिद्धांत अपनाया था, वह था 'बिगड़कर रहना और रगड़कर खाना'। बिगड़ने की वृत्ति से यह होता है कि पहले कुछ दिन तक तो बिगड़ैल कैदी को कष्ट में रहना पड़ता है, लेकिन बाद में वह आराम के साथ रहता है। जेल के अधिकारी बिगड़ैल कैदी को अनावश्यक रूप से छेड़ते नहीं हैं। बिगड़ने का भी सिद्धांत यह होता है कि पहले दिन ही जेल के अधिकारियों से झगड़ा करके उन्हें यह सोचने के लिए विवश किया जाए कि इस कैदी को न छेड़ने में ही सार है। भगवानदास माहौर ने यह शिक्षा एक कहानी से ली थी। कहानी इस प्रकार है—

दो बहनें बहुत खूबसूरत और पैसेवाली थीं। हर व्यक्ति उनसे शादी करने के लिए लालायित था। उन बहनों की शर्त थी कि जो कोई भी हर दिन हमसे पाँच जूतियाँ खाने के लिए तैयार हो, वह हमसे शादी कर सकता है। दो सगे भाई इस शर्त पर तैयार हो गए। उन्होंने सोचा, पत्नी खूबसूरत मिलेगी और साथ में काफी पैसा भी; फिर औरतों की जूतियों से कोई चोट थोड़े ही लगती है। उन

दोनों भाइयों ने उन दोनों बहनों से शादी कर ली। छोटा भाई जब पहले दिन अपनी पत्नी के पास गया तो उसी समय कहीं से एक बिल्ली आ गई। छोटे भाई ने अपनी तलवार निकाली और उस बिल्ली के दो टुकड़े कर दिए। उसकी नवविवाहिता पत्नी उसका क्रोध देखकर डर गई। उसने सोचा कि अगर मैंने इनको जूतियाँ मारीं तो ये मेरा हाल भी बिल्ली की तरह न कर दें। वह अपने पति से दबकर रहने लगी। बड़े भाई अपने वादे के अनुसार हर दिन अपनी पत्नी की जूतियाँ खाते रहे। एक दिन दोनों भाइयों ने एक-दूसरे को अपने-अपने अनुभव सुनाए। बड़े भाई ने सोचा कि अभी क्या बिगड़ा है, मैं भी एक बिल्ली मारकर अपनी पत्नी पर रोब गालिब किए लेता हूँ। एक दिन वह खुद एक बिल्ली पकड़कर ले गया और उसे अपनी पत्नी के कमरे में छोड़कर उसे अपनी तलवार से काट डाला। यह देखकर उसकी पत्नी बोली—

'मियाँ, बिल्ली तो पहले दिन ही मारी जाती है। इतने दिन तो तुम्हें जूतियाँ खाते हो गए, अब बिल्ली मारने से कुछ नहीं होने वाला।'

भगवानदास माहौर जिस जेल में भी गए, उन्होंने पहले दिन ही बिल्ली मारी। लोग उनसे कतराकर रहते थे।

उस समय भगवानदास अहमदाबाद जेल में थे। एक दिन उस जेल के कैदियों ने 'महात्मा गांधी की जय' के नारे लगा डाले। इसे विद्रोह समझा गया। जय बोलनेवालों को बेंतों की सजा देने का निश्चय हुआ। नंगा करके कैदी को तिपाई से बाँध दिया जाता था। इसे कैदी लोग तीन पैर की घोड़ी कहते थे। जल्लाद पूरी ताकत के साथ बेंत का प्रहार करता था और हर बेंत के साथ कुछ खाल उधड़ जाती थी। कोई-कोई कैदी रोने और गिड़गिड़ाने भी लगते थे तथा कुछ लोग गंदगी भी कर देते थे। उस विद्रोह के फलस्वरूप भगवानदास माहौर को भी बेंतों की सजा सुनाई गई। उनकी कोठरी के सामने तिपाई रख दी गई। जेलर बेंतों की सजा के लिए उन्हें कोठरी से निकलवाने ही वाला था कि उसे उनके बिगड़ैल स्वभाव की याद आ गई। बेंतों की सजा देने के लिए जेल सुपरिंटेंडेंट स्वयं जल्लाद को साथ लेकर आए थे। उन्होंने भगवानदास माहौर को नीचे से ऊपर तक कठोर दृष्टि से देखा। फिर कुछ सोचकर उन्होंने जेलर से पूछा—

''इस कैदी ने क्या अपराध किया है?''

उत्तर जेलर ने नहीं, सूबेदार ने दिया—

''हुजूर, इसने कोठरी में बंद होने से इनकार किया था। इसे हाथों में उठाकर बंद करना पड़ा।''

साहब ने फिर प्रश्न किए—

"इसने कुछ गाली-वाली बका? किसीको धमकाया?"

सूबेदार का उत्तर था—

"नहीं, हुजूर, इसने ऐसा कुछ भी नहीं किया।"

साहब का निर्णय था—

"अच्छा, इसे बेंत नहीं लगाए जाएँगे। इसे तीन महीने तक टाट के कपड़े, तीन महीने तक डंडा बेड़ी और तीन महीने कोठरी बंद की सजा दी जाती है।"

भगवानदास बेंत खाने से बच गए। उन्होंने सोचा कि बेंत खाते हुए किसी कमजोरी का प्रदर्शन हो जाता तो लज्जित होना पड़ता; क्योंकि उनकी गिनती पहलवानों में होती थी।

अहमदाबाद जेल में माहौर के साथ एक और साथी क्रांतिकारी थे, जिनका नाम मणिलाल था। मणिलाल दूसरे मोरचे के क्रांतिकारी थे। दूसरा मोरचा उन लोगों के लिए खोला गया था, जो प्रकट रूप से क्रांतिकारी दल में सम्मिलित न होकर उस समय की प्रतीक्षा करते रहते थे, जब क्रांतिकारियों की कमी हो और उनको बुलाया जाए। बाद में वे घर-परिवार छोड़कर क्रांतिकारी दल में सम्मिलित हो जाते थे। मणिलाल भी ऐसे ही क्रांतिकारी थे। शासन ने गिरफ्तार करके उनको अहमदाबाद जेल में रखा था।

सन् १९३८ में कांग्रेसी मंत्रिमंडलों की स्थापना के कारण भगवानदास माहौर जेल से छोड़ दिए गए। उस समय तक वे आठ वर्ष की सजा भुगत चुके थे। सन् १९४० में वे भारत रक्षा कानून के अंतर्गत फिर गिरफ्तार कर लिये गए और उनको देवली नजरबंद कैंप में भेज दिया गया। कुछ लोगों को शरारत सूझी। उनका प्रस्ताव था कि 'घी आंदोलन' छेड़ा जाए। भगवानदास माहौर इस जरा-सी बात के लिए आंदोलन करने के पक्ष में नहीं थे। यार लोग नहीं माने। उन्हें भी 'घी आंदोलन' में सम्मिलित होना पड़ा। नारे लगाए जाने लगे—

'बिना घी लिये बैरकों में बंद नहीं होंगे।'

यार लोगों ने भाषण देने के लिए भगवानदास माहौर को एक टेबिल पर खड़ा कर दिया। वे अच्छे कवि भी थे। कुछ पंक्तियाँ वहीं जोड़ लीं। वे एक पंक्ति कहते और अन्य लोग उसे दुहराते। वे कह रहे थे—

'शेर चलते हैं दर्राते हुए
बादलों की तरह मँडराते हुए,
जिंदगी की रागिनी गाते हुए
आज झंडा हमारे हाथ में।'

यह दृश्य देखकर पहले से मचान पर बैठे हुए संतरी ने खतरे की घंटी बजा दी। उसने सोचा कि भयंकर दंगा भड़क गया है। अपनी कारगुजारी दिखाने के लिए उसने अपनी थ्री-नॉट-थ्री बंदूक में गोलियाँ डालीं और बंदूक की नली भगवानदास माहौर की तरफ सीधी कर ली; क्योंकि मेज पर खड़े होने के कारण नेता वे ही लग रहे थे। भगवानदास को लगा कि थ्री-नॉट-थ्री की गोली अब आई और सीने के पार हुई। उन्हें चंद्रशेखर आजाद की भविष्यवाणी याद आ गई—

एक बार आगरा में रहते हुए साथी क्रांतिकारियों ने गाना सुनाने के लिए भगवानदास माहौर से आग्रह किया। माहौर ने अ-अ ऽऽऽ करके पहले तो आलाप भरा और फिर गीत का मुखड़ा छेड़ दिया—

'हृदय लागी प्रेम की बात निराली मन्मथ-शर हो।'

यह मुखड़ा सुनते ही आजाद उखड़ गए और डाँटने के स्वर में बोले—

''साला प्रेम-फ्रेम पिनपिनाता रहता है। अबे क्यों अपना और दूसरों का मन खराब करता है! कहाँ मिलेगा इस जिंदगी में प्रेम-फ्रेम का अवसर और कहाँ लगेगा हृदय में मन्मथ-शर। साला जानता नहीं है, हृदय में लगेगी थ्री-नॉट-थ्री की गोली और कहीं लुढ़कता हुआ नजर आएगा। अगर कुछ गाना ही है तो 'बम-पटक, झूम-झटक, डाँट-डपट' ऐसा कुछ गा।''

मचान के संतरी को अपनी ओर थ्री-नॉट-थ्री बंदूक ताने देखकर भगवानदास माहौर को लगा कि अपने शहीद साथी चंद्रशेखर आजाद की बात अब सच हुई। वह तो यह अच्छा रहा कि खतरे की घंटी सुनकर जेल के अधिकारी वहाँ तुरंत पहुँच गए और उन्होंने संतरी को गोली न चलाने का हुक्म दे दिया।

भगवानदास माहौर उस जेल से भी छूटे; लेकिन किसी-न-किसी आंदोलन में वे जेलों में जाते-आते रहे।

भगवानदास माहौर आजीवन क्रांतिकारी रहे। आजीवन कारावास की सजा भुगतने के बाद उन्होंने अपनी पढ़ाई फिर से प्रारंभ की, जहाँ से उसे छोड़ा था। क्रांतिकारी आंदोलन में कूद पड़ने के कारण वे बी.ए. पास नहीं कर पाए थे। अपनी पूरी जवानी जेलों में घुला देने के पश्चात् उन्होंने बी.ए. पास किया, एम.ए. पास किया और निरंतर छह वर्षों तक कठिन शोध कार्य करके 'सन् १८५७ के स्वाधीनता संग्राम का हिंदी साहित्य पर प्रभाव' विषय पर उन्होंने आगरा विश्वविद्यालय से पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। मदनेशकृत 'लक्ष्मीबाई रासो' पर हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ने उन्हें 'साहित्य महामहोपाध्याय' का अलंकरण प्रदान किया। बुंदेलखंड के साहित्य पर कार्य करने के उपलक्ष्य में झाँसी विश्वविद्यालय ने उन्हें

डी.लिट. की उपाधि प्रदान की।

माहौरजी काव्य और संगीत के मर्मज्ञ रहे। ज्योतिष पर उनका असाधारण अधिकार था। गद्य में लिखी हुई उनकी पुस्तक 'यश की धरोहर' बहुत ही लोकप्रिय हुई है। माहौरजी एक सफल और लोकप्रिय प्राध्यापक भी रहे हैं। मध्य प्रदेश के दतिया जिले के बड़ौनी ग्राम में भगवानदास माहौर का जन्म २७ फरवरी, १९०९ में हुआ था। १२ मार्च, १९७९ को लखनऊ में उनका निधन हुआ।

आज महान् क्रांतिकारी डॉ. भगवानदास माहौर हमारे बीच नहीं हैं; लेकिन उनका संपूर्ण जीवन और उनका यशस्वी लेखन आगामी कई पीढ़ियों को प्रेरणा देता रहेगा।

□

★ भवानीसहाय ★ राजेंद्रदत्त निगम

जब भवानीसहाय की पहली भेंट चंद्रशेखर आजाद से हुई तो सहाय को लगा कि उसे वह व्यक्ति मिल गया, जिसके साथ जीने और मरने में आनंद आएगा। आजाद ने भी उसके रूप में एक विश्वासपात्र साथी पा लिया।


भवानीसहाय

आजाद ने भवानीसहाय को दिल्ली की बम फैक्टरी में काम करने का दायित्व सौंपा। भवानीसहाय ने मनोयोगपूर्वक बम बनाने का मसाला बनाना सीख लिया।

भवानीसहाय और आजाद का साथ अधिक नहीं रह सका। घटनाओं के वात-चक्र में फँसकर चंद्रशेखर आजाद इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में पुलिस के साथ युद्ध करते हुए शहीद हो गए। भवानीसहाय को यह समाचार सुनकर बहुत सदमा पहुँचा। सदमे का विशेष कारण यह था कि उसने सुना कि उन्हींकी पार्टी के एक सदस्य वीरभद्र तिवारी ने पुलिस को यह सूचना दी कि चंद्रशेखर आजाद अल्फ्रेड पार्क में हैं। भवानीसहाय का मन वीरभद्र तिवारी को गद्दारी का पुरस्कार देने के लिए मचल उठा। अपने एक साथी रनवीरसिंह के साथ इस संबंध में उसकी

चर्चा भी हुई। रनवीरसिंह का कथन था—

"इसमें संदेह नहीं है कि चंद्रशेखर आजाद की हत्या कराने में वीरभद्र तिवारी का हाथ है। पार्टी में वह हमेशा ही एक रहस्यमय व्यक्ति रहा है।"

भवानीसहाय ने विषय की गहराई में जाने के उद्देश्य से पूछा—

"वे कौन से तथ्य हैं, जिनके आधार पर यह सिद्ध किया जा सके कि वीरभद्र तिवारी दल के प्रति निष्ठावान् नहीं रहा?"

रनवीरसिंह ने अपने कथन की पुष्टि में तर्क दिए—

"पहला धोखा तो वीरभद्र तिवारी ने काकोरी केस के अपने साथी क्रांतिकारियों को दिया। उन लोगों को खतरे में धकेलकर वह साफ अलग हो गया।

"जब वह चंद्रशेखर आजाद का सहयोगी बना तो हमेशा ही अपना अंग बचाकर कार्य करता रहा। किसीके कत्ल या डाका डालने की योजना में वह कभी सम्मिलित नहीं हुआ। इन कामों से वह इसलिए बचता रहा कि कहीं वह फाँसी या आजीवन कारावास की कमाई न कर ले। आजाद ने उसकी निष्ठा को ही परखने के लिए कानपुर में 'नहर पार एक्शन' की योजना बनाई थी। इस कार्य से बचने के लिए वीरभद्र तिवारी कांग्रेस सत्याग्रह में भाग लेकर कुछ दिन के लिए जेल में चला गया।

"जब दिल्ली में कैलाशपति गिरफ्तार हो गया और उसने क्रांतिकारियों का कच्चा चिट्ठा खोलकर रख दिया, फिर भी वीरभद्र तिवारी को पुलिस ने गिरफ्तार नहीं किया; जबकि अन्य कई क्रांतिकारी कैलाशपति की सूचना पर गिरफ्तार कर लिये गए।

"सी.आई.डी. विभाग के इंस्पेक्टर शंभूनाथ और वीरभद्र तिवारी एक छत के नीचे ही पड़ोसी के रूप में रहते रहे हैं और वीरभद्र क्रांतिकारियों के भेद शंभूनाथ को देता रहा है।

"जिस दिन २७ फरवरी, १९३१ को आजाद इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में शहीद हुए, उस दिन घटना के कुछ समय पूर्व ही वीरभद्र तिवारी अल्फ्रेड पार्क के पास से निकला। उसे चंद्रशेखर आजाद ने भी देख लिया; लेकिन वीरभद्र अनदेखी करके निकल गया और लगता है कि उसीने आजाद की उपस्थिति की सूचना पुलिस को दे दी।"

रनवीरसिंह के तर्क सुनकर भवानीसहाय की आँखें खुल गईं। उसने कहा—

"इतना होने पर भी यदि हम लोग अपने प्रिय नेता आजाद के हत्यारे को मृत्युदंड न दे सके तो हमको धिक्कार है!"

दोनों इस बिंदु पर सहमत हो गए और वीरभद्र तिवारी को मारने की योजना

बना ली गई। एक दिन कानपुर के नारियल बाजार की गली में वीरभद्र तिवारी को घेर लिया गया और उसपर रनवीरसिंह एवं भवानीसहाय ने गोलियाँ चलाईं। वीरभद्र तिवारी इतना चालाक निकला कि पहली गोली चलते ही वह जमीन पर गिरकर छटपटाने का अभिनय करने लगा और 'मार डाला! मार डाला!' चिल्लाने लगा। रनवीरसिंह और भवानीसहाय ने समझा कि गद्दार मारा गया। स्वयं को बचाने के लिए वे भाग खड़े हुए। उनके चले जाने पर वीरभद्र तिवारी भी उठकर भाग गया। अपनी चालाकी से उसने अपनी जान बचा ली।

वीरभद्र तिवारी को किसी अन्य अवसर पर घेरने के इरादे से आजाद के साथी लोग कानपुर के आसपास मँडराते रहे।

आजाद की शहादत के बाद कुछ प्रश्न ऐसे उठ खड़े हुए, जिन्हें सुलझाना आवश्यक था। तय हुआ कि उन प्रश्नों को सुलझाने के लिए क्रांतिकारी लोग कानपुर में सरसैया घाट पर एक मंदिर में एकत्र हों। निश्चय के अनुसार यशपाल, काशीराम, भवानीसहाय और राजेंद्रदत्त निगम वहाँ पहुँच गए। उन्होंने देखा कि वहीं पास में एक इक्का खड़ा है और चार लोग इनकी तरफ घूर रहे हैं। यशपाल ने उन लोगों से कहा कि "या तो आप लोग हमारे पास आकर बैठ जाइए या कहीं दूर चले जाइए।"

उनमें से एक ने कहा, "हम लोग पुलिस के आदमी हैं और आपके साथी काशीराम को थाने पर ले जाएँगे।" उन्होंने काशीराम की तरफ इशारा भी किया।

काशीराम ने कहा कि "मेरा नाम तो जगदीश है, काशीराम नहीं।"

पुलिस का आदमी बोला कि "इसका निर्णय तो थाने पर होगा कि आपका नाम जगदीश है या काशीराम।"

यशपाल ने सोचा कि इस समय इनसे झगड़ा करना ठीक नहीं। उन्होंने काशीराम की ओर भेद-भरी दृष्टि से देखकर कहा—

"अच्छा जगदीश! तुम इन लोगों के साथ पुलिस स्टेशन चलो। हम लोग भी तुम्हारे भाई को लेकर पुलिस स्टेशन पहुँचते हैं।" काशीराम इक्के पर बैठ गया और पुलिस के लोग उसकी साइकिल इक्के के पीछे बाँधने लगे। यशपाल ने उन लोगों को उलझा हुआ देख उनपर गोलियाँ चला दीं। दो व्यक्ति गोली खाकर वहीं गिर पड़े और दो भाग खड़े हुए। क्रांतिकारी भी गोलियाँ चलाते हुए वहाँ से चलते बने।

कुछ दिन बाद सभी क्रांतिकारी गिरफ्तार हो गए। भवानीसहाय के विरुद्ध कोई अभियोग सिद्ध नहीं हो सका और वह छोड़ दिया गया। काशीराम को आजीवन कारावास मिला और यशपाल एवं राजेंद्रदत्त निगम को क्रमशः चौदह वर्ष व दस वर्ष की सजाएँ मिलीं।

□

★ भवानीसिंह

दिल्ली में हिंदू कॉलेज के प्राध्यापक नंदकिशोर निगम कॉलेज छात्रावास के अधीक्षक भी थे। उनका छात्रावास ४, रामचंद्र लेन, मैटकॉट हाउस रोड पर स्थित था। प्रो. निगम को रहने के लिए एक क्वार्टर मिला हुआ था। उनके साथ क्रांतिकारी लोग बेखटके ठहरा करते थे। गरमियों की छुट्टियों में एक सुविधा और मिल जाती थी। पूरा छात्रावास खाली हो जाता था और प्रो. निगम उसे क्रांतिकारी निवास बना देते थे। इसी व्यवस्था के अंतर्गत उन्होंने एक कमरा क्रांतिकारी भवानीसिंह को दे रखा था। गरमी की छुट्टियाँ थीं। भवानीसिंह के साथ चंद्रशेखर आजाद भी उसी कमरे में ठहरे हुए थे।

एक बार भवानीसिंह किसी काम से बाजार गए और घंटे-भर बाद जब अपने कमरे पर लौटे तो उन्होंने अपने कमरे में चंद्रशेखर आजाद के स्थान पर एक सेठजी को बैठा पाया। अपने कमरे में एक नए व्यक्ति को बैठा देखकर भवानीसिंह को भी बुरा लगा और उन्हें यह भी खयाल आया कि आजाद जैसा व्यक्ति इतनी गैर जिम्मेदार बात कैसे कर गया कि वह क्रांतिकारी का सूना कमरा एक अपरिचित व्यक्ति को सौंपकर चला गया।

भवानीसिंह के पहुँचने पर सेठजी खड़े हो गए और उन्होंने अपने हाथ जोड़कर भवानीसिंह को नमस्कार किया। भवानीसिंह ने नमस्कार का उत्तर दिया और सेठजी से पूछ बैठे—''क्या मैं आपका परिचय प्राप्त कर सकता हूँ ?''

इस प्रश्न के उत्तर में सेठजी मुसकरा-भर दिए। यदि बोलते तो उनकी आवाज पहचान ली जाती। यद्यपि वे बोले नहीं, फिर भी उनकी मुसकराहट ने उनका भेद खोल दिया। उन्हें पहचानकर भवानीसिंह ने आश्चर्य से कहा—''कौन, पंडितजी ?''

चंद्रशेखर आजाद हँस पड़े और बोले—''जब इस वेश में मेरा क्रांतिकारी साथी ही मुझे नहीं पहचान सका तो साले पुलिसवाले क्या पहचानते !''

चंद्रशेखर आजाद ने उस समय चूड़ीदार पायजामा, रेशमी कुरता और कुरते के ऊपर शेरवानी पहन रखी थी। सिर पर वे एक पगड़ी बाँधे हुए थे। उन्होंने यह पोशाक स्कॉटलैंड यार्ड के चार जासूसों को ठिकाने लगाने के लिए बनवाई थी।

जब दिल्ली में लॉर्ड इरविन की ट्रेन के नीचे बम विस्फोट किया गया और भारत के जासूस क्रांतिकारियों का पता नहीं लगा पाए तो भारत सरकार ने क्रांतिकारियों का पता लगाने के लिए स्कॉटलैंड यार्ड से चार चुने हुए जासूस बुलाए थे। वे लोग

अत्यंत गोपनीय रूप से एक बंगले में रह रहे थे। चंद्रशेखर आजाद की नजरों से वे कैसे बचते। वे लोग तो आजाद की जासूसी नहीं कर पाए, लेकिन आजाद ने उनकी जासूसी कर ली। आजाद का विचार हुआ कि किसी दिन उन जासूसों से बंगले पर भेंट की जाए और उन्हें वहीं खत्म कर दिया जाए। इसी काम के लिए उन्होंने वह पोशाक बनवाई थी। बाद में जब साथी भगवतीचरण से उन्होंने इस विषय में परामर्श किया तो भगवतीचरण ने उन्हें यह एक्शन करने की सलाह नहीं दी। उनका कहना था कि इतने बड़े कांड के पश्चात् पुलिस इतनी सक्रिय हो जाएगी कि क्रांतिकारियों का दिल्ली में रहना मुश्किल हो जाएगा और हमारी सारी योजनाएँ ठप्प पड़ जाएँगी। अपने साथी का परामर्श मानकर आजाद ने वह एक्शन नहीं किया। उसी पोशाक को पहनकर उन्होंने भवानीसिंह को चक्कर में डाल दिया।

वह पोशाक आजाद के लिए बेकार हो चुकी थी। उन्होंने वह पोशाक कॉलेज होस्टल के चौकीदार को बख्शीश में दे दी। इतने बढ़िया कपड़े पाकर चौकीदार निहाल हो गया। वह आजाद और उनके साथियों की रोक-टोक कभी नहीं करता था।

जब चंद्रशेखर आजाद दिल्ली के गाडोदिया स्टोर में मनी एक्शन करने गए तो वे अपने साथ भवानीसिंह को भी ले गए और सफलतापूर्वक मनी एक्शन करने के बाद लूट का माल भवानीसिंह के कमरे में ही लाए तथा सारा रुपया वहीं गिना गया। भवानीसिंह की सेवाएँ उन्होंने दिल्ली के बम कारखाने के लिए भी लीं।

कानपुर में गयाप्रसाद पुस्तकालय में जब पुलिस ने प्रो. नंदकिशोर निगम को गिरफ्तार किया तो उसने उन्हें भवानीसिंह समझकर गिरफ्तार किया था। बाद में भवानीसिंह भी गिरफ्तार हो गए; लेकिन गाडोदिया स्टोर के मालिक ने मुकदमा नहीं चलाया और सरकार ने दो साल तक चलाने के पश्चात् 'दिल्ली षड्यंत्र केस' वापस ले लिया। फिर भी भवानीसिंह को दो वर्ष तक जेल में रहने का अनुभव तो हो ही गया।

□

★ भागराम

लाहौर से फरार होकर जब यशपाल जम्मू पहुँचा तो उसका परिचय भागराम नाम के एक नौजवान से हुआ। भागराम से मिलते ही यशपाल को लगा जैसे उसे एक अच्छा क्रांतिकारी साथी मिल गया है और उन दोनों का अच्छा साथ निभेगा।

भागराम उस प्रकार का व्यक्ति था, जिसपर विश्वास किया जा सकता था।

भागराम की एक विशेषता और थी, वह यह कि वह एक बहुत अच्छा दस्तकार था। दस्तकारी के अतिरिक्त उसका अन्य कलाओं में भी दखल था। उसे अच्छा कारीगर या मिस्त्री कहा जा सकता था। यशपाल को ऐसे ही व्यक्ति की आवश्यकता थी। अपने क्रांतिकारी साथियों से बिछुड़ जाने के बाद यशपाल को आवश्यकता इस बात की थी कि कुछ नए साथियों को तलाश करके क्रांति योजना को आगे बढ़ाया जाए।

भागराम और यशपाल ने मिलकर एक नए किस्म का बम बनाने की योजना पर विचार किया। बम का मसाला बनाने का ज्ञान यशपाल को था ही। जम्मू क्षेत्र में रहते हुए दो काम सामने थे। एक काम तो यह था कि सामग्री का संचय करके बम का मसाला बनाया जाए और दूसरा काम था, उस मसाले को भरने के लिए खोल ढलवाने का। मसाला दोनों ने मिलकर तैयार कर लिया। लोहे के खोल ढलवाने में संदेह की गुंजाइश थी, इस कारण एक स्थानीय लुहार से पीतल की एक नली के टुकड़े कटवा लिये गए और प्रत्येक टुकड़े के एक सिरे पर एक पीतल की ही टिकली झलवा ली गई। इस खोल में मसाला भरकर उसका दूसरा सिरा प्लास्टर ऑफ पेरिस से बंद कर दिया गया। जंगल में जाकर दोनों ने इस नए बम का परीक्षण किया। बम ने आवाज तो बहुत की, पर उसमें संहारक शक्ति नहीं पाई गई। अपने इस प्रयोग से उन दोनों को निराशा तो हुई, पर उन्होंने अपने प्रयत्न नहीं छोड़े।

यशपाल का साथी भगवतीचरण से संपर्क स्थापित हो गया और दोनों ने मिलकर वाइसराय लॉर्ड इरविन की ट्रेन को बम से उड़ाने की योजना बना डाली। इस कार्य में सहयोग देने के लिए लाहौर से इंद्रपाल को और जम्मू से भागराम को बुला लिया गया। एक पुरानी मोटर साइकिल खरीदकर उसे चलाने का अभ्यास यशपाल और भागराम ने कर लिया।

वाइसराय लॉर्ड इरविन २३ दिसंबर, १९२९ को कोल्हापुर से दिल्ली लौटने वाले थे। यशपाल, भगवतीचरण और अन्य साथियों ने दिल्ली में अपना अड्डा जमा रखा था। २३ दिसंबर की सुबह चार बजे यशपाल और भागराम अपनी मोटर साइकिल पर सवार होकर तेहखंड के पास रेलवे लाइन के निकट पहुँचे, जहाँ उन्हें बम विस्फोट करना था। यशपाल ने मिलिट्री के मेजर की वरदी पहन रखी थी और भागराम उनके अर्दली की भूमिका का निर्वाह करने के लिए एक कबाड़ी की दुकान से खरीदा गया गरम ओवरकोट पहने हुए था।

नियत स्थान पर पहुँच जाने पर भागराम को मोटर साइकिल के पास छोड़ दिया गया। उसे यह समझा दिया गया कि बम विस्फोट के पश्चात् यदि गोलियाँ

चलने की आवाज सुनाई दे तो समझ लेना कि मैं मुकाबले में मारा गया और उस स्थिति में तुम मोटर साइकिल से भाग निकलना।

यशपाल ने बम विस्फोट किया। भागराम ने बम की आवाज तो सुनी, पर उसे गोलियाँ चलने की आवाज सुनाई नहीं दी। वह यशपाल के आने की प्रतीक्षा करने लगा। थोड़ी देर पश्चात् यशपाल के आ जाने पर दोनों मोटर साइकिल से भाग जाने के लिए उद्यत हुए। मोटर साइकिल चालू नहीं हुई। दोनों ने जोर आजमाया; पर वह चालू होने का नाम नहीं ले रही थी। इसके बाद बारी-बारी से वे दोनों उसे काफी दूर तक धकेलते ले गए; पर वह फिर भी चालू नहीं हुई। आखिर वे उसे धकेलते हुए शहर तक ले गए, जहाँ बाहरी बस्ती में एक मिस्त्री की दुकान खुली हुई दिखाई दी। भागराम ने दुकानवाले से कहा—

"हमारे मेजर साहब की मोटर साइकिल खराब हो गई है। तुम इसे ठीक करके रखना, मैं इसे आकर ले जाऊँगा।"

मोटर साइकिल वहाँ छोड़कर वे लोग एक ट्रेन से गाजियाबाद जा पहुँचे, जहाँ भगवतीचरण बहुत अधीरता से उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। वहाँ से भागराम को लाहौर भेज दिया गया। इंद्रपाल भी लाहौर पहुँच गया।

इंद्रपाल को यशपाल के सहायक के रूप में काम करना अच्छा नहीं लगा। उसने अपना स्वतंत्र संगठन खड़ा कर लिया और उसका नाम रख दिया 'आतिशी चक्कर'। भागराम भी इंद्रपाल के साथ मिलकर काम करने लगा।

क्रांतिकारियों के पास धन का अभाव हमेशा ही रहता था। पंजाब के ये क्रांतिकारी लोग पैसा एकत्रित करने के लिए डाके डालने के पक्ष में नहीं थे। भागराम ने सुझाव दिया कि धन के अभाव को दूर करने के लिए रुपए के सिक्के ढालने का काम क्यों न प्रारंभ किया जाए। योजना निश्चित हो गई। रुपए ढालने के लिए आवश्यक सामग्री लाहौर से खरीदी गई और उसको लेकर भागराम जम्मू चला गया। वह अपने साथ एक अन्य नौजवान क्रांतिकारी गुलाबसिंह को भी ले गया। गुलाबसिंह उस समय लाहौर के खालसा हाई स्कूल में पढ़ रहा था।

जम्मू पहुँचकर भागराम ने कार्य की सुविधा के लिए एक मकान किराए पर लिया। उसने तथा गुलाबसिंह ने तीन महीने तक निरंतर श्रम करके रुपए का पहला सिक्का ढालने में सफलता प्राप्त की। आकार में हू-ब-हू रुपए जैसा ही था; पर उसके किनारों में उतनी सफाई नहीं थी। भागराम ने इस काम को श्रमसाध्य और अनुपयोगी समझकर उसे हमेशा के लिए छोड़ दिया।

जम्मू छोड़कर भागराम लाहौर पहुँच गया। 'आतिशी चक्कर' के क्रांतिकारियों ने पंजाब के छह शहरों में एक साथ बम विस्फोट करके पुलिस के लोगों को दंडित

करने की योजना बना डाली। १९ जून, १९३० को लाहौर, अमृतसर, लायलपुर, शेखूपुरा, गुजराँवाला और रावलपिंडी में एक साथ बम विस्फोट किए गए। इन विस्फोटों के परिणामस्वरूप पुलिस के दो आदमी मारे गए।

पंजाब के नगरों में बम विस्फोटों के परिणामस्वरूप पुलिस सक्रिय हो गई और 'आतिशी चक्कर' के क्रांतिकारियों की गिरफ्तारियाँ होने लगीं। जम्मू से भागराम को भी गिरफ्तार करके लाहौर पहुँचा दिया गया। क्रांतिकारियों के भेद जानने के लिए पुलिस ने भागराम को भाँति-भाँति की यातनाएँ दीं; पर वह टस-से-मस नहीं हुआ।

लाहौर जेल में वे सभी साथी एकत्र हो गए, जो पहले बाहर रहकर कार्य कर रहे थे। जेल में उन लोगों को पुस्तकें या अखबार पढ़ने की सुविधाएँ नहीं दी गई थीं। कुछ-न-कुछ करके तो समय निकालना ही था। भागराम ने जेल में 'गप्प क्लब' का निर्माण कर डाला। गप्प मारने में वह स्वयं भी बहुत होशियार था। उसके गले में मोटर की तरह शायद गीयर भी थे। वह अपनी आवाज को मोटी या पतली कर सकता था। कभी-कभी वह जम्मू-कश्मीर के मजदूर दंपतियों के अच्छे-अच्छे संवाद सुनाकर साथियों का भरपूर मनोरंजन करता था। जब 'साहित्य क्लब' बनाया गया तो वह उसमें भी अपना योगदान देने लगा।

धीरे-धीरे भागराम को हिस्टीरिया की बीमारी ने धर दबोचा। उसे बेहोशी के दौरे पड़ने लगे। जेल अधीक्षक और जेल के डॉक्टर ने उसे बहानेबाजी की संज्ञा दी। उसकी बीमारी बढ़ने लगी और उसके दौरे देर तक चलने लगे तथा उनकी सघनता भी बढ़ गई। इतना होने पर भी जेल के अधिकारियों ने केवल इतना ही किया कि उसे अस्पताल की एक कोठरी में डाल दिया। अपने साथियों से बिछुड़ जाने के कारण उसके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ा।

विशेष ट्रिब्यूनल कोर्ट में मुकदमा प्रारंभ हो गया। भागराम की स्थिति यह थी कि वह अदालत में नहीं जा सकता था। अदालत की कार्यवाही स्थगित करने का अर्थ था—हजारों रुपए प्रतिदिन का खर्च। प्रबंध यह किया गया कि भागराम को स्ट्रेचर पर लिटाकर अदालत में ले जाया जाने लगा। अदालत में भी वह स्ट्रेचर पर ही पड़ा रहता था। वह बयान भी नहीं दे सकता था। इतना होने पर भी जेल का डॉक्टर यही कहता रहा कि उसे कोई बीमारी नहीं है।

कुछ दिन बाद साथियों ने इस मुद्‌दे को लेकर भूख हड़ताल प्रारंभ कर दी। उन लोगों के वकील लाला श्यामलाल के हस्तक्षेप का परिणाम यह निकला कि भागराभ के स्वास्थ्य की जाँच एक वैद्य द्वारा कराई गई और उसे अस्पताल से हटाकर साथियों के बीच पहुँचा दिया गया।

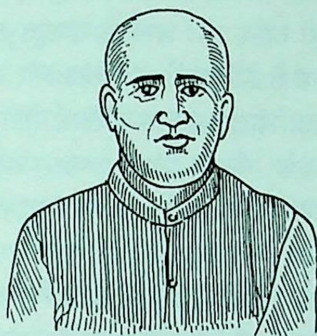
भागराम के शरीर को लकवा भी मार गया। जब वह मृत्यु के बिलकुल निकट पहुँच गया तो उसके ऊपर से मुकदमा उठा लिया गया; लेकिन उसे मुक्त नहीं किया गया। उसको स्थानांतरित करके फिर से रावलपिंडी की जेल में डाल दिया गया।

जब भागराम के जीवन के दीये का तेल बिलकुल ही समाप्त हो गया तो जेल में उसकी मृत्यु के आरोप से बचने के लिए शासन ने उसे मुक्त कर दिया। भागराम पूरे एक दिन भी तो मुक्ति का आनंद नहीं उठा सका। अगले दिन ही वह इस संसार से बिदा हो गया। वह भारत की मुक्ति तो नहीं देख सका, पर उसने जेल से अपनी मुक्ति अवश्य देख ली।

□



★ मनमोहन गुप्त ★ मार्कंडेय ★ हरेंद्र भट्टाचार्य



मनमोहन गुप्त

वे लोग दिलों में अरमान और जेबों में बम लिये हुए जा रहे थे। उनके दिलों में अरमान थे जॉन साइमन को जान से मार डालने के। जॉन साइमन व्यक्तिगत रूप से उनके शत्रु नहीं थे। उस समय वे इंग्लैंड की साम्राज्य-लिप्सा के प्रतीक और भारत राष्ट्र के शत्रु थे। जॉन साइमन की अध्यक्षता में एक कमीशन इंग्लैंड से भारत के लिए भेजा गया था कि वह यह देखे कि भारत को कितने राजनीतिक अधिकार दिए जा सकते हैं। भारत के जले पर नमक छिड़कने की बात यह थी कि उस कमीशन में एक भी भारतीय नहीं था।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने योजना बनाई कि भारत में साइमन कमीशन के आगमन पर उसे स्थान-स्थान पर काले झंडे दिखाए जाएँ और उसके विरोध में प्रदर्शन किए जाएँ। क्रांतिकारी लोगों को इस सात्त्विक विरोध में विश्वास नहीं था। वे तो इस पार या उस पार में विश्वास करते थे। उनका चिंतन था कि या तो हम जॉन साइमन के प्राण ले लेंगे अथवा अपने प्राण दे देंगे।

बनारस के क्रांतिकारी दल ने अपने साथियों में से मार्कंडेय, हरेंद्र भट्टाचार्य और मनमोहन गुप्त को यह कर्तव्य-भार दिया कि वे जॉन साइमन के बंबई आगमन पर उनका पहला स्वागत वहीं करें। दिलों में अरमान और जेबों में बम लिये हुए ये क्रांतिकारी युवक चल दिए। मनमाड स्टेशन पर यह दुर्घटना घटित हो गई कि ट्रेन में यात्रा करते समय उन लोगों का एक बम फट गया। ट्रेन के डिब्बे का एक भाग

विस्फोट के परिणामस्वरूप उड़ गया। मार्कंडेय दुर्घटनास्थल पर ही शहीद हो गए और हरेंद्र भट्टाचार्य जख्मी हो गए। मन्मथनाथ गुप्त के भाई मनमोहन गुप्त गिरफ्तार कर लिये गए। नासिक में 'मनमाड बम केस' नाम से मुकदमा चला और हरेंद्र भट्टाचार्य तथा मनमोहन गुप्त को सात-सात वर्ष के कठोर कारावास के दंड मिले। □

★ महावीरसिंह



महावीरसिंह

उस क्रांतिकारी में ठकुरास की पूरी ठसक थी। जन्म से राजपूत और कर्म से क्रांतिकारी—'करेला और नीम चढ़ा' वाली कहावत चरितार्थ होती थी उसके लिए। नाम था उसका महावीरसिंह। सिंह के लिए महावीर होना आवश्यक होता है। सिंह स्वभाव पाया था वंशानुक्रम से और शक्ति तथा वीरता उसकी अपनी अर्जित संपत्ति थी। प्रतिदिन पाँच सौ दंड और एक हजार बैठकें भला शरीर पर अपना प्रभाव क्यों न दिखाते! शिलाखंड की बराबरी करनेवाला शरीर था। उस कसरती डील-डौल ने चेहरा भी अत्यंत रोबीला पाया था। चेहरे पर बिच्छू के डंक की भाँति तनी हुई मूँछें व्यक्तित्व को धारदार बनाए रखती थीं। कुल मिलाकर उसूल यह था कि टूट जाएँगे, पर झुकेंगे नहीं।

चंद्रशेखर आजाद एवं भगतसिंह का साथी और 'हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र सेना' के वीर सैनिक होने के नाते 'द्वितीय लाहौर षड्यंत्र केस' के अंतर्गत जब महावीरसिंह को आजन्म कारावास का दंड मिला और वे वेल्लारी जेल में पहुँचे तो पहले दिन से ही उनकी अंग्रेज जेल सुपरिंटेंडेंट से ठन गई। महावीरसिंह ने जेल की तनीदार टोपी पहनने से इनकार कर दिया। जेल सुपरिंटेंडेंट ने जेल में पल रहे चार-छह पहलवानों की सहायता से बलपूर्वक महावीरसिंह को टोपी पहनवा दी। महावीरसिंह ने अपने सिर को झटके के साथ घुमाया और टोपी जमीन पर पड़ी दिखाई दी। बेड़ियों से कसे हुए पैरों से उन्होंने उस टोपी को कुचलते हुए

कहा—''भविष्य में महावीरसिंह को टोपी पहनाने का प्रयत्न मत करना।''

अंग्रेज सुपरिंटेंडेंट इस अपमान को बरदाश्त कैसे करता! वह अपने समय का अच्छा मुक्केबाज था। उसके हाथ खुजला उठे। उसने पालतू पठान कैदियों को हुक्म दिया कि वे कसकर महावीरसिंह के हाथ पकड़ लें। पैरों में तो बेड़ियाँ पड़ी ही थीं। उस ओर से कोई खतरा नहीं था। पठान कैदियों में से दो ने महावीरसिंह का एक हाथ पकड़ा और दो ने दूसरा। अंग्रेज सुपरिंटेंडेंट महावीरसिंह पर मुक्कों की बौछार करने लगा। महावीरसिंह ने अपनी शक्ति बटोरकर एक जोरदार झटका दिया और अपना सीधा हाथ छुड़ा लिया। उन्होंने भी इतने जोर का मुक्का जेल सुपरिंटेंडेंट की कनपटी पर दे मारा कि वह धाड़ से जमीन पर गिर पड़ा और अपना सिर थामकर बैठ गया। उस दिन से महावीरसिंह तो क्या, अन्य कैदी भी उसके मुक्कों से छुटकारा पा गए।

महावीरसिंह क्रांति के पथ पर किसी झोंक के वशीभूत होकर नहीं बढ़ गए थे, उन्होंने मन के दृढ़ निश्चय और संकल्प के साथ इस कठिन मार्ग पर कदम रखा था। क्रांति के पथ पर आनेवाली मुसीबतों का अनुमान उन्होंने पहले ही लगा लिया था।

महावीरसिंह के छात्र जीवन की एक घटना कम मनोरंजक नहीं है। उस समय बालक महावीरसिंह उत्तर प्रदेश के जिला एटा के कासगंज नगर में कक्षा आठ का विद्यार्थी था। उधर स्वराज्य के दीवाने विदेशी कपड़ों की होलियाँ जला रहे थे तथा नौकरियाँ छोड़कर सरकार के साथ असहयोग कर रहे थे और इधर अपने अंग्रेज मालिकों के टुकड़ों पर पल रहे कुछ हाँ-हुजूर अपने अन्नदाता की प्रशंसा करते नहीं अघाते थे। इसी प्रकार की एक सभा का आयोजन था, जिसमें प्रत्येक हाँ-हुजूर अंग्रेजी शासन की प्रशंसा करता और शासन के प्रति वफादारी की शपथ भी लेता था। गांधीजी तो उन दिनों विद्रोही थे, अत: वक्तागण गांधीजी की आलोचना करने में गर्व का अनुभव करते थे। उस सभा में अंग्रेज जिला कलेक्टर, पुलिस के अधिकारी और शिक्षा विभाग के अफसर लोग भी उपस्थित थे। सभा भरी-पूरी मालूम पड़े, इस कारण स्कूल के विद्यार्थियों को भी वहाँ अध्यापकों द्वारा घेरकर बैठाया गया था।

सभा चल ही रही थी कि एक विद्यार्थी ने जोरदार नारा लगाया—

''महात्मा गांधी की जय!''

सारे विद्यार्थियों ने इस नारे को जोरदार सहयोग दिया। जहाँ खुशामद और चापलूसी की बातें हो रही थीं, वहाँ गांधीजी की जय के नारे गूँजने लगे। अंग्रेज जिलाधीश ने क्रोध की मुद्रा में शिक्षा निरीक्षक की ओर देखा। शिक्षा निरीक्षक ने अपना क्रोध अध्यापकों के ऊपर उतारा और गांधीजी की जय का नारा लगानेवाले

छात्र को पकड़ने का आदेश दिया। अध्यापकों ने बालक महावीरसिंह को पकड़कर प्रधानाध्यापक को देने में बड़े गर्व का अनुभव किया। प्रधानाध्यापक ने भी तत्काल दो-चार बेंत उस बालक को जड़कर अपनी मुस्तैदी और खैरख्वाही का परिचय दिया। बेंत खाकर महावीरसिंह का विद्रोह और भड़क उठा और उस दिन से वह छात्रों का क्रांतिकारी नेता बन गया।

जब सन् १९२५ में क्रांतिकारियों ने काकोरी स्टेशन के निकट ट्रेन रोककर अंग्रेजी खजाना लूट लिया तो उस समय महावीरसिंह कानपुर के डी.ए.वी. कॉलेज में पढ़ रहे थे। कानपुर का वह कॉलेज उन दिनों राष्ट्रीय चेतना का केंद्र था और यह हवा थी कि उस कॉलेज के कुछ विद्यार्थी भी क्रांतिकारी गतिविधियों में संलग्न हैं। महावीरसिंह की पैनी दृष्टि ने अपने लिए इस प्रकार का एक साथी खोज लिया। उनके साथी का नाम था शिव वर्मा। शिव वर्मा और महावीरसिंह में खूब पटने लगी।

एक दिन शिव वर्मा ने देखा कि महावीरसिंह मुँह लटकाए चले आ रहे हैं। उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने कभी महावीरसिंह को उदास नहीं देखा था। जहाँ महावीरसिंह हो वहाँ मनहूसियत तो रहती ही नहीं थी—वहाँ तो हँसी के ठहाके ही सुनाई पड़ते थे। हँसना-हँसाना और मित्रों के साथ छेड़खानी करना, यही तो पहचान थी महावीरसिंह की। शिव वर्मा पूछ बैठे—

''कहिए कुँअर महावीरसिंहजी! आज आपके चाँद पर यह ग्रहण कैसा लग गया है?''

महावीरसिंह ने डूबे हुए स्वर में उत्तर दिया—

''यार! बहुत बुरी खबर है। मेरे पिताजी ने मेरी शादी तय कर दी है और लड़की देखने के लिए मुझे बुलाया है।''

शिव वर्मा ने उसके कंधे पर हाथ मारते हुए कहा—

''अपनी शादी की खुशखबरी लाए हो और कहते हो कि बहुत बुरी खबर है। कहीं मिठाई से बचने के लिए तो यह युक्ति नहीं सोची है?''

महावीरसिंह ने उसी लहजे में उत्तर दिया—

''नहीं, शिव भाई! यह खबर मेरे लिए खुशखबरी नहीं है। तुम तो जानते ही हो कि मैं तुम्हारे साथ क्रांति के पथ पर प्रतिबद्ध हो चुका हूँ। एक क्रांतिकारी के लिए तो मृत्यु का निमंत्रण ही खुशखबरी होती है। क्या तुम मुझे यह परामर्श दोगे कि देश के प्रति अपने कर्तव्य से मैं विमुख हो जाऊँ?''

''आखिर तुम चाहते क्या हो?'' उत्तर देने के स्थान पर शिव वर्मा ने यह प्रश्न किया।

महावीरसिंह का कथन था—

''अब समय आ गया है कि शादी के बंधन में बँधने के स्थान पर मुझे पारिवारिक बंधनों को तोड़कर, घर और कॉलेज छोड़कर चले जाना चाहिए।''

शिव वर्मा ने कहा, ''मित्र के नाते मैं तुम्हें एक परामर्श देना चाहता हूँ। जो परामर्श मैं तुम्हें दूँगा, वह तुम्हारी परिस्थिति में किसी अन्य व्यक्ति को नहीं देता। तुम्हारी पारिवारिक पृष्ठभूमि का मुझे ज्ञान है, इसी कारण मैं तुम्हें यह परामर्श दे रहा हूँ कि तुम घर छोड़ने के स्थान पर एक पत्र द्वारा सारी स्थितियाँ स्पष्ट करते हुए अपना संकल्प उनपर व्यक्त कर दो। यदि पिताजी ने तुम्हारी बात नहीं मानी और वे स्वयं तुम्हें लेने भी आ जाएँ तो भाग जाने के अवसर तो तुम्हें अपने घर से भी मिल सकते हैं। यदि पिताजी ने क्रांति पथ पर जाने की तुम्हारी बात मान ली तो उनका आशीर्वाद तुम्हारे साथ हो जाएगा।''

महावीरसिंह को अपने मित्र शिव वर्मा का यह प्रस्ताव बहुत पसंद आया। सारी स्थितियाँ स्पष्ट करते हुए और क्रांति पथ के वरण का अपना संकल्प व्यक्त करते हुए उन्होंने अपने पिताजी को एक पत्र लिख दिया।

कुछ दिन पश्चात् जब महावीरसिंह शिव वर्मा के पास पहुँचे तो खुशी के मारे पागल जैसे हो रहे थे। उन्होंने शिव वर्मा को प्रगाढ़ आलिंगन में कस लिया। शिव वर्मा विरोध करते रहे, ''यह क्या कर रहे हो? कहाँ तुम्हारी कसरती पहलवानी देह और कहाँ मैं हड्डियों का ढाँचा! ज्यादा ताकत मत दिखाओ, नहीं तो मेरी पसलियाँ चरमरा जाएँगी। आखिर इतने प्रस न क्यों हो?''

महावीरसिंह ने शिव वर्मा को बाहुपाश से मुक्त करते हुए अपने पिताजी का पत्र उनके हाथ में दे दिया। पत्र में लिखा था—

'मुझे यह जानकर बड़ी खुशी हुई है कि तुमने अपना जीवन देश के काम में लगाने का निश्चय किया है। मैं तो समझता था कि हमारे वंश में पूर्वजों का खून अब नहीं रहा और हमने दिल से गुलामी कबूल कर ली है। तुम्हारा पत्र पाकर आज मैं अपने को बड़ा भाग्यशाली समझ रहा हूँ।

'शादी की बात जहाँ चल रही थी, उन्हें आज जवाब लिख दिया है। निश्िंचत रहो, मैं ऐसा कोई काम नहीं करूँगा, जो तुम्हारे मार्ग में बाधा बने।

'देश की सेवा का जो मार्ग तुमने चुना है, वह बड़ी तपस्या का और बड़ा कठिन मार्ग है। जब तुम उसपर चल ही पड़े हो तो पीछे न मुड़ना, साथियों को धोखा मत देना और अपने वृद्ध पिता के नाम का ध्यान रखना।

'तुम जहाँ भी रहोगे, मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ रहेगा।

तुम्हारा पिता

देवीसिंह'।

पत्र पढ़कर शिव वर्मा ने कहा, ''ऐसा पत्र पाकर तो जितनी खुशी मनाओ, कम है। बहुत भाग्यशाली हो यार, जो तुमने ऐसे प्रगतिशील विचारोंवाला पिता पाया है। अब यह मेरी बारी है कि इस प्रसन्नता के उपलक्ष्य में तुम्हें मैं अपने आलिंगन में लूँ। पर भाई, मुझपर ज्यादा ताकत मत आजमाना।''

अगले ही क्षण दोनों मित्र फिर प्रगाढ़ आलिंगन में बँध गए।

पार्टी के आह्वान पर कॉलेज की पढ़ाई छोड़कर महावीरसिंह लाहौर पहुँच गए। वहाँ उन्हें मोटर चलाने का प्रशिक्षण दिया गया। अपनी लगन और निष्ठा के कारण वे बहुत अच्छे ड्राइवर बन गए। जब भगतसिंह, राजगुरु और चंद्रशेखर आजाद ने योजनानुसार लाला लाजपतराय के हत्यारे सांडर्स का वध किया तो उसमें महावीरसिंह की भी प्रमुख भूमिका थी। सांडर्स वध के पश्चात् पहले तो साथी लोग साइकिलों से निकले, पर बाद में साइकिलें एक मित्र के पास छोड़ दी गईं और महावीरसिंह कार में बिठाकर उन्हें सुरक्षित स्थान तक ले गए।

लाहौर में महावीरसिंह को भयंकर पेचिश हो गई। उनकी हालत बहुत बिगड़ गई। साथी शिव वर्मा ने परामर्श देते हुए उनसे कहा—

''अभी तुम्हारे विरुद्ध गिरफ्तारी का वारंट नहीं है। इस समय घर चले जाने में कोई हानि नहीं है। तबीयत ठीक हो जाए तो फिर आ जाना।''

महावीरसिंह ने पहले तो प्रश्नवाचक दृष्टि से साथी शिव वर्मा की ओर देखा और फिर बोल उठे—

''तुमने तो मेरे पिताजी का वह पत्र पढ़ा था। उन्होंने लिखा था—'पीछे मुड़कर मत देखना'। पीछे मुड़कर न देखने में यह भी तो शामिल हैं कि घर का मोह, ममता के बंधन और अपनी सुख-सुविधाओं को तिलांजलि दे दी जाए। यदि मैं घर पहुँचा तो पिताजी मेरे साथ सहानुभूति नहीं दिखाएँगे। पीछे मुड़कर देखने के लिए वे मुझे प्रताड़ित करेंगे। तुम चिंता मत करो, मैं यहीं ठीक हो जाऊँगा।''

महावीरसिंह ने अपने आत्मबल के सहारे बीमारी से छुट्टी पा ली और उनकी पहलवानी फिर से चल निकली।

भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने दिल्ली असेंबली में बम विस्फोट करके स्वेच्छा से गिरफ्तारी दी। पुलिस की सरगर्मी से पार्टी के अधिकांश सदस्य गिरफ्तार कर लिये गए। महावीरसिंह भी गिरफ्तार होकर लाहौर जेल में पहुँच गए।

भगतसिंह का कथन था—'शासन के साथ हमारी लड़ाई किसी-न-किसी रूप में चलती ही रहनी चाहिए।' महावीरसिंह को भगतसिंह का यह कथन बहुत पसंद आया। लाहौर जेल में पहुँचते ही पुलिस और जेल के अधिकारियों के साथ उनकी उठा-पटक प्रारंभ हो गई। सभी क्रांतिकारी उस महायुद्ध में कूद पड़े। जेल

के नियमों की अवहेलना प्रारंभ हो गई और वार्डरों तथा जेल के अधिकारियों के साथ हाथापाई एवं मारपीट की घटनाएँ सामान्य बातें हो गईं। क्रांतिकारियों में जो तगड़े थे, वे शौर्य-प्रदर्शन में भी आगे रहते थे और मार खाने में भी। पुलिस के मुस्टंडे उनपर टूट पड़ते और जमकर उनकी धुनाई की जाती थी। उन तगड़े सदस्यों में भगतसिंह, महावीरसिंह, जयदेव कपूर और डॉ. गयाप्रसाद प्रमुख थे। पिटाई इनके हिस्से अधिक आती थी। महायुद्ध की समाप्ति के पश्चात् आपस में हँसी-मजाक भी चलता रहता। महावीरसिंह अपने दुबले-पतले साथियों से कहते—

''तुम लोगों की पिटाई हम लोगों ने अपने हिस्से में ले ली है। अब तुम लोग हमारी चरण-सेवा करो और चोटों को सेंको।''

इस प्रकार के हँसी-मजाक में वे अपना दुःख-दर्द भूल जाते और अगले दिन की लड़ाई के लिए स्वयं को फिर तैयार कर लेते थे।

निश्चय हुआ कि जेल के दुर्व्यवहार के विरोध में भूख हड़ताल प्रारंभ कर दी जाए। जेल अधिकारियों को नोटिस दे दिया गया और सामूहिक भूख हड़ताल प्रारंभ हो गई।

प्रारंभ के दस-बारह दिन तक तो जेल अधिकारियों ने अनशनकारियों की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। जब वे लोग अनशन पर दृढ़ता के साथ जमे रहे और उनकी हालत बिगड़ने लगी तो जेल अधिकारियों को चिंता हुई कि कहीं ये लोग मर न जाएँ। उन्हें जीवित रखने के लिए बलात्पान की योजना बना ली गई।

बलात्पान दल में दो डॉक्टर होते थे और आठ-दस तगड़े-तगड़े पहलवाननुमा कैदी। ये लोग अनशनकारी को भूमि पर पटककर उसके हाथ-पैरों को मजबूती के साथ जकड़ लेते थे। एक तगड़ा व्यक्ति अनशनकारी का सिर मजबूती के साथ अपने घुटनों में दबा लेता था। एक डॉक्टर अनशनकारी की छाती पर बैठकर, बलपूर्वक रबर की नली उसकी नाक में घुसेड़कर उसके पेट में पहुँचा देता था और दूसरा डॉक्टर नली के दूसरे सिरे पर एक कीप लगाकर अनशनकारी के शरीर के मान से काफी मात्रा में दूध उसके पेट में पहुँचा देता था। कोई-कोई होशियार अनशनकारी खाँसकर या हिचकी लेकर रबर की नली को गले में से अपने मुँह में लेकर उसे कसकर दाँतों से दबा लेता था। उस दशा में डॉक्टर लोग उसके पेट में दूध नहीं पहुँचा पाते थे। उँगलियाँ काटे जाने के भय से वे लोग उसका मुँह खुलवाने का दुस्साहस नहीं करते थे। अगले दिन देख लेने की धमकी देकर वह दल अन्य अनशनकारी की कोठरी में पहुँच जाता था।

महावीरसिंह को वश में करना इस दल के लिए सबसे कठिन बात होती थी। वे शरीर के माध्यम से भी कुश्ती लड़ते थे और गले के माध्यम से भी। जैसे ही

वे देखते कि बलात्पान करानेवाला दल उनकी कोठरी की तरफ बढ़ रहा है, वे लोहे के जंगले के सामने स्वयं अड़कर खड़े हो जाते कि वह खुल न सके। जंगले का ताला खोला जाता और जंगले को अंदर की तरफ धकेला जाता। जब आठ-दस व्यक्ति पूरी शक्ति लगाते, तभी दरवाजा खुल पाता था। कभी-कभी महावीरसिंह शरारत से भी बाज नहीं आते थे। जब बाहर के व्यक्ति पूरी ताकत से जंगले को अंदर की ओर ढकेल रहे होते, तो महावीरसिंह एकदम हट जाते थे और धकेलनेवाले एक के ऊपर एक गिर पड़ते थे। फिर महावीरसिंह की कोठरी के अंदर एक बनाम आठ का युद्ध प्रारंभ हो जाता। पहलवान कैदी उन्हें जमीन पर पटकने का प्रयत्न करते और महावीरसिंह प्रयत्न करते कि लोग उन्हें जमीन पर न पटक सकें। एक अनशनकारी आठ तरोताजा पहलवानों के सामने कैसे टिकता। आखिर वे पटक लिये जाते और पहलवान कैदी कसकर उनके हाथ-पैर दबाकर बैठ जाते तथा एक पहलवान उनके सिर को अपने घुटनों के बीच दबोच लेता। एक डॉक्टर उनकी छाती पर बैठकर बेरहमी के साथ एक नली उनकी नाक के नथुने में घुसेड़ देता था। अब महावीरसिंह गले से युद्ध प्रारंभ कर देते। खाँसकर या हिचकी लेकर वे नली का सिरा मुँह के अंदर ठेलते और उसे दाँतों से दबा लेते थे। उस स्थिति में कोई भी उनके दाँत खोलने का प्रयत्न नहीं करता था; क्योंकि उँगलियाँ काटे जाने का भय रहता था। यदि डॉक्टर नली का सिरा पेट के अंदर पहुँचाने में सफल हो जाता तो दूसरा डॉक्टर नली के दूसरे सिरे पर कीप लगाकर पेट के अंदर दूध उड़ेल देता था। दो महीने के अनशन की स्थिति में भी ऐसा कोई दिन नहीं आया, जब महावीरसिंह को काबू में करने के लिए आधा घंटे का समय न लगा हो।

जेल के अधिकारियों के साथ शारीरिक कुश्ती लड़ने के साथ-ही-साथ महावीरसिंह ने अदालत के साथ बौद्धिक कुश्ती लड़ना भी प्रारंभ कर दिया। उन्होंने अंग्रेज सरकार की अदालत को मान्यता देना बंद कर दिया।

महावीरसिंह तथा उनके अन्य चार साथी—कुंदनलाल, बटुकेश्वर दत्त, डॉ. गयाप्रसाद और जितेंद्रनाथ सान्याल ने एक बयान देकर कहा कि हम लोग अदालत को मान्यता देना बंद कर रहे हैं और उसकी कार्रवाई में भाग नहीं लेंगे। उनका एक वाक्य था—

'हमपर ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध युद्ध छेड़ने का अभियोग लगाया गया है। हम ब्रिटिश सरकार की बनाई हुई किसी भी अदालत से न्याय की आशा नहीं करते और इसलिए हम इस न्याय-नाटक में भाग नहीं लेंगे।'

केस की सुनवाई समाप्त हो जाने पर उसका फैसला सुना दिया गया। महावीरसिंह तथा उनके अन्य सात साथियों को आजन्म कारावास का दंड सुनाया

गया। कुछ दिन पंजाब की जेलों में रखने के पश्चात् महावीरसिंह को वेल्लारी जेल (अब मैसूर) में स्थानांतरित कर दिया गया।

वेल्लारी जेल की उस घटना की गूँज दूर-दूर तक हो गई, जब महावीरसिंह ने मुक्केबाज जेल सुपरिंटेंडेंट पर 'सौ सुनार की एक लुहार की' वाली कहावत चरितार्थ कर दी। उनके एक मुक्के ने उस जालिम को दिन में तारे दिखा दिए और उस दिन से उसने किसी अन्य कैदी के साथ मुक्केबाजी का साहस नहीं किया। लेकिन वह महावीरसिंह का मुक्का खाकर उन्हें कोई अन्य दंड दिए बिना कैसे छोड़ता। उसने महावीरसिंह को तीस बेंतों की सजा सुना दी।

वेल्लारी जेल में महावीरसिंह को तीस बेंतों की सजा देने की तैयारियाँ होने लगीं। जिस बेंत से मारना था, उसे पानी में गला दिया गया। सुपरिंटेंडेंट ने जेल का मुआयना करके एक तगड़े कैदी वार्डर को बेंत मारने के लिए चुना। उसे शराब पिलाई गई और कहा गया कि बेंत के साथ कुछ खाल उधड़ना जरूरी है। उसे चेतावनी दी गई कि जितने बेंतों से पीठ पर जख्म नहीं होंगे, उतने बेंत तुमको भी लगाए जाएँगे। हर बेंत के साथ चमड़ी उधड़ने पर उसे पुरस्कृत करने का आश्वासन दिया गया।

महावीरसिंह को बेंतों की सजा देने के लिए कोठरी से निकाला गया। अन्य कैदियों में कानाफूसी होने लगी—

एक का कथन था—

''कहीं ऐसा न हो कि महावीरसिंह बेंतों की मार से विचलित होकर रोने-चिल्लाने लगें। यदि ऐसा हुआ तो बहुत भद होगी।''

दूसरे का कथन था—

''यह अधिक संभव है कि बेंत खाते-खाते वह बेहोश हो जाएँ; क्योंकि जो लोग अपनी पीड़ा को जब्त करते हैं, वे बेहोश हुए पाए जाते हैं।''

तीसरे ने कहा—

''मेरा तो विश्वास है कि महावीरसिंह एक क्रांतिकारी की शान और ठकुरास की ठसक को बट्टा नहीं लगने देगा।''

महावीरसिंह को टिकटिकी के पास ले जाया गया। वह लकड़ी की एक भारी तिपाई थी, जिसके तीनों पैर जमीन में गहरे गाड़ दिए गए थे, जिससे वह हिले-डुले नहीं। महावीरसिंह को निर्वसन किया गया। उनके दोनों हाथ टिकटिकी के ऊपरी भाग में लटकते हुए लोहे के कड़ों के साथ बाँध दिए गए। दोनों पैर भी टिकटिकी की नीचे की टाँगों से बाँध दिए गए। उसकी कमर भी एक बेल्ट से टिकटिकी के मध्यम भाग के साथ कसकर बाँध दी गई। निर्वसन नितंबों और पीठ

पर बेंतों की चित्रकारी की सभी संभावनाएँ पूर्ण कर दी गईं।

जेल सुपरिंटेंडेंट अपने पूरे अमले के साथ बेंत प्रहार का आनंद लेने के लिए पहुँच गया। मुख्य वार्डर ने आदेश पाने की दृष्टि से जेल सुपरिंटेंडेंट की ओर देखा। जेल सुपरिंटेंडेंट ने आँखों के इशारे से अपनी स्वीकृति दे दी। मुख्य वार्डर ने बेंत लगानेवाले कैदी वार्डर को बेंत लगाने का आदेश दिया। कैदी वार्डर ने भीगा हुआ बेंत अपने सीधे हाथ में थामा और एक बार उसे हवा में घुमाकर 'साँय' की आवाज पैदा की। फिर उसने दो कदम पीछे हटकर एक भरपूर हाथ महावीरसिंह के नंगे बदन पर उतार दिया। पहले हाथ ने ही उतने स्थान की चमड़ी उधेड़ दी और खून की कुछ बूँदें भूमि पर टपक पड़ीं। मुख्य वार्डर ने पहली गिनती गिनी—"एक!"

कैदी वार्डर ने फिर बेंत सँभाला और दूसरे स्थान पर उतनी ही ताकत के साथ फिर उसे महावीरसिंह के शरीर पर उतार दिया। उस स्थान की भी खाल उधड़ गई और उस स्थान से भी खून टपकने लगा। मुख्य वार्डर ने गिनती आगे बढ़ाई—"दो!"

कैदी वार्डर का हर हाथ पूरी तरह और पूरे संकल्प के साथ महावीरसिंह के निर्वसन नितंबों पर पड़ने लगा। अब तो खून की फुहार उड़ने लगी और ताजा मांस के रेशे भी उड़ने लगे। टिकटिकी के नीचे खून की धाराएँ बहने लगीं। वह क्रांति वीर भी हर बेंत के साथ अधिक उत्साह और अधिक जोश के साथ 'इनकलाब-जिंदाबाद' का नारा बोलता गया। तीस की गिनती पूरी हुई। टिकटिकी से महावीरसिंह के हाथ-पैर खोल दिए गए। उसे लिटाकर ले जाने के लिए स्ट्रेचर तैयार रखा गया था। मुख्य वार्डर स्ट्रेचर लेकर उसकी तरफ बढ़ा। महावीरसिंह ने स्ट्रेचर में ठोकर मार दी और घृणा के साथ जेल सुपरिंटेंडेंट की ओर देखा। वह बिना किसीका सहारा लिये अपनी कोठरी की तरफ बढ़ गया। जेल सुपरिंटेंडेंट उसकी तरफ देखता रह गया। उसकी आँखों में भाव थे—

'यह कैदी अपने किस्म का एक ही है। यदि हर कैदी इसीकी तरह होने लगे तो अपनी छुट्टी हो जाए।'

शासन ने योजना बनाई कि महावीरसिंह जैसे उद्दंड कैदियों की अक्ल ठिकाने पर लाने के लिए उन्हें अंडमान की काल कोठरियों में स्थानांतरित कर दिया जाए।

जनवरी सन् १९३३ में कुछ चुने हुए क्रांतिकारियों को कालापानी भेज दिया गया। बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश और पंजाब के चौरासी क्रांतिकारी कालापानी की काल कोठरियों में आबाद हो गए।

कालापानी का नाम सुनते ही कैदियों के होश गुम होने लगते थे। वहाँ क्रांतिकारियों पर विशेष रूप से अत्याचार किए जाते थे और उन्हें भाँति-भाँति

की यातनाएँ दी जाती थीं। जेल के अंग्रेज प्रशासक पहले दिन से ही राजबंदियों को दमनचक्र में पीसना प्रारंभ कर देते थे, जिससे वे यह अनुभव करें कि ब्रिटिश हुकूमत से बगावत करना अच्छी बात नहीं है। लेकिन जब चौरासी क्रांतिकारियों का यह जत्था अंडमान पहुँचा तो उन्होंने भी पहले दिन से ही मस्ती बिखराना प्रारंभ कर दिया।

मस्ती के आलम में महावीरसिंह किसीसे पीछे क्यों रहते! कभी वे एक को छेड़ते तो दूसरे को गुदगुदाते और किसी तीसरे की चुप्पी को प्रताड़ित करते। उनके ठहाकों से सैलुलर जेल की दीवारें गूँजने लगीं। कहावत बन गई—

'महावीरसिंह हैं जहाँ, जीवन है वहाँ।'

जेल के अधिकारियों को क्रांतिकारियों की यह मस्ती पसंद नहीं आई। साथी यतींद्रनाथ दास के बलिदान से जेलों में जो सुधार किए गए थे, वे भी इन मस्त-मौलाओं को नहीं दिए गए। उन्हें घटिया भोजन दिया जाने लगा और उनसे सख्ती के साथ काम लिया जाने लगा। जेल अधिकारियों ने सोचा कि अंडमान की खबरें बाहर पहुँच ही नहीं सकतीं, फिर अत्याचार करने से क्यों चूका जाए!

क्रांतिकारियों ने विचार किया कि इस दुर्व्यवहार का प्रतिकार किस तरह किया जाए। एक दिन सब लोगों ने मिलकर विचार किया। क्रांतिकारियों के पास जेल के अंदर लड़ने का एक ही तो हथियार हुआ करता था—अनशन। महावीरसिंह ने प्रस्ताव रख दिया—''सामूहिक अनशन का रास्ता अपनाया जाए।''

एक साथी ने स्थिति की समीक्षा करते हुए कहा—

''भारत की मुख्य भूमि की किसी जेल में अनशन का अनुष्ठान किया जाता तो कुछ प्रचार भी होता और शासन के कानों पर जूँ भी रेंगती; पर कालापानी की इन काल कोठरियों से बाहर हमारी खबर भी तो नहीं पहुँच सकती। फिर अनशन करने से क्या लाभ! हम लोग अनशन करके प्राण-विसर्जन भी करते जाएँ तो भी शासन लिखता जाएगा कि अमुक कैदी हैजा हो जाने से मर गया, अमुक पेचिश हो जाने से मर गया और अमुक निमोनिया से मर गया। जनता को तो शासन के वक्तव्य पर विश्वास करना ही पड़ेगा। ऐसी स्थिति में हमारा अनशन करना व्यर्थ जाएगा और हम लोग अपने दो-चार साथी और गँवा बैठेंगे।''

बात अपनी जगह सटीक थी, फिर भी महावीरसिंह आसानी से हथियार डालने वाले नहीं थे। उन्होंने अपनी बात पर जोर देते हुए कहा—

''हम लोग अपना अनशन लंबा नहीं चलाएँगे। प्रारंभ से ही प्रयत्न होना चाहिए कि हममें से दो-चार व्यक्ति अपना बलिदान दे दें। यदि हम लोग मरने पर उतारू हो जाएँ तो दुनिया की कोई ताकत हमें जिंदा नहीं रख सकती। हम लोग इस

बात का प्रयत्न भी करें कि तिकड़म के सहारे अपने अनशन के समाचार भारत की जनता के पास भी पहुँचा दें। इस तिकड़म का दायित्व मैं अपने ऊपर लेता हूँ।''

यह बात क्रांतिकारी साथियों को जम गई। सब लोग अनशन प्रारंभ करने के लिए सहमत हो गए। महावीरसिंह ने फिर कहा—

''अच्छा, यह तो तय हुआ कि हम लोग सामूहिक अनशन प्रारंभ करेंगे। अब यह बताया जाए कि पहले कौन दो साथी आत्मबलिदान के लिए तैयार हैं ?''

सभी कंठों से आवाज उठी—''हम सब तैयार हैं। हम सब तैयार हैं।''

महावीरसिंह ने उत्साहित होते हुए कहा—

''बलिदान की यह भावना देखकर मुझे बहुत हर्ष और गर्व का अनुभव हुआ है। मैं चाहता हूँ कि प्रारंभ में हममें से कोई दो साथी अपना बलिदान दें। एक नाम तो मैं अपना ही ले रहा हूँ। एक नाम की परची निकाल ली जाए।''

एक साथी ने संशोधन रखते हुए कहा—

''यदि परची उठाकर ही नाम तय करने हैं तो दो परचियाँ निकाली जाएँ। यदि आप अपने नाम पर जोर देते हैं तो हममें से प्रत्येक अपने नाम पर जोर देगा और मसला कभी तय नहीं होगा।''

यह संशोधन सर्वसम्मति से मान लिया गया। चौरासी नामों की परचियाँ बना ली गईं और उन सबको एक मटके में डालकर खूब हिलाया गया। निष्पक्षता का निर्वाह करने के लिए एक जेल वार्डर से अनुरोध किया गया—

''भाई साहब! आप इस मटके में से दो परचियाँ उठा दीजिए। हम लोग अपने में से नेता और उप नेता का चुनाव कर रहे हैं।''

वार्डर को इसमें क्या आपत्ति हो सकती थी। उसने मटके में से दो परचियाँ निकालकर महावीरसिंह के हाथ में दे दीं। एक परची पर 'मोहन किशोर नामदास' नाम अंकित था और दूसरी पर 'मोहित मैत्रेय'। ये दोनों तरुण क्रांतिकारी बंगभूमि के बेटे थे। अपने नाम निकले हुए देखकर वे लोग खुशी के मारे उछल पड़े। उन्हें इतनी खुशी हो रही थी जैसे उनके नाम लाखों रुपयों की लॉटरी खुली हो। वह थी सचमुच में मृत्यु की लॉटरी। सब लोगों को यह निर्णय स्वीकार करना पड़ा। महावीरसिंह अड़ गए—

''इन फूल जैसे कोमल दो बच्चों को मौत के कुएँ में धकेलना मैं कभी स्वीकार नहीं कर सकता। यह ठीक है कि मैं नैसर्गिक न्याय की अवहेलना नहीं करना चाहता; पर चूँकि मौलिक प्रस्ताव मेरा था, इसलिए तीसरे साथी के रूप में मैं भी इनके साथ बलिदान का पथ अपनाऊँगा। मैं अपनी ठकुरास की ठसक चलाकर रहूँगा।''

जेल अधिकारियों को सामूहिक अनशन का नोटिस दे दिया गया। महावीरसिंह

ने एक वार्डर को पटाकर अनशन का समाचार भारत के एक पत्रकार के पास पहुँचा दिया।

मई का महीना था, सन् १९३३; इसी महीने में सामूहिक अनशन प्रारंभ हो गया। भीषण गरमी के दिन थे। वे दिन अनशन के लिए किसी भी प्रकार उपयुक्त नहीं थे। अनशन प्रारंभ हुए तीन ही दिन हुए थे कि कुछ क्रांतिकारियों की हालत बिगड़ने लगी। जेल अधिकारियों ने और अधिक प्रतीक्षा न करके उन लोगों को बलात्पान कराने की ठान ली। कई लोगों को सफलतापूर्वक बलात्पान करा दिया गया। महावीरसिंह को बलात्पान के विरोध में युद्ध करने का अच्छा अनुभव था। पहले दिन ही उन्होंने डॉक्टरों और पठान कैदियों के साथ अच्छा-खासा युद्ध किया। कुछ लोगों को उन्होंने भी उठा-उठाकर अच्छी तरह से पटका और इस उठा-पटक का परिणाम यह हुआ कि सब लोगों ने मिलकर उनको पटक लिया। आठ-दस व्यक्तियों ने मिलकर उनके हाथ-पैर दबोच लिये। एक ने अपनी टाँगों में उनका सिर भी दबोच लिया। एक डॉक्टर उनकी छाती पर सवार हो गया। उसने बड़ी बेरहमी के साथ रबर की एक नली महावीरसिंह की नाक के एक नथुने के रास्ते से घुसेड़ दी। वह नली उनके पेट में न जाकर फेफड़ों में घुस गई। दूसरे डॉक्टर ने नली के दूसरे सिरे पर एक कीप लगाकर काफी मात्रा में दूध उड़ेल दिया। फेफड़ों के अंदर दूध पहुँचते ही महावीरसिंह की आँखें उलट गईं और जोर की खाँसी आने लगी। बलात्पान करानेवाला दल उन्हें बिना जल की मछली की भाँति तड़पता हुआ छोड़कर आगे बढ़ गया।

सामने की पंक्ति में बंद साथियों ने जब महावीरसिंह को मरणासन्न स्थिति में देखा तो वे सब मिलकर बहुत जोर से शोर मचाने लगे। आखिर डॉक्टर को महावीरसिंह को अस्पताल पहुँचाना पड़ा। अस्पताल पहुँचते ही क्रांतिवीर महावीरसिंह ने दम तोड़ दिया और बलिदान की मंजिल पर अव्वल पहुँचने की बाजी मार ली।

अपना एक वीर और जिंदादिल साथी खोकर सभी क्रांतिकारी लुटे-पिटे जैसे रह गए। जिन दो साथियों के नाम की परचियाँ निकली थीं, उन दोनों ने भी पूरी ईमानदारी के साथ बलात्पान के विरुद्ध युद्ध किया और उसी प्रकार शहादत प्राप्त की। उन तीनों क्रांतिवीरों की लाशें जेल के अधिकारियों ने समुद्र में फिंकवा दीं।

महावीरसिंह की तिकड़म भी रंग लाई। इस अनशन यज्ञ के फलस्वरूप भारत में बहुत तूफान उठा और शासन को अंडमान के राजबंदियों को सुविधाएँ देने के लिए झुकना पड़ा। सुविधाएँ तो मिल गईं, पर वे सुविधाएँ तीन अनमोल प्राणों का मूल्य चुकाने पर मिलीं।

अपने शहीद साथी महावीरसिंह की व्यक्तिगत वस्तुओं में से साथी जयदेव

कपूर को एक तो उनके पिता का भेजा हुआ पत्र मिला और एक अंग्रेजी कविता मिली, जो पुश्किन द्वारा लिखी गई थी। साथी शिव वर्मा ने पुश्किन की उस कविता का हिंदी में रूपांतर प्रस्तुत किया—

'मैंने देखा मृत्यु-निमंत्रण
उसके द्वारे आया,
अत्याचारी से आगे बढ़
जो पहले टकराया।

बंद हो गया है मेरा भी
आज भाग्य का द्वार,
बलि के बिना मिला किसको
आजादी का उपहार?

मातृभूमि के लिए खुशी से
देता हूँ मैं प्राण,
इसका मुझको पूर्ण ज्ञान है
और पूर्ण अनुमान।

और पिता! मैं वरण कर रहा
अंतर से साभार,
महानाश की वह सुंदर छवि
उसे नमन सौ बार।'

अपने पास इस रचना को आदर्श रूप में रखने का उद्देश्य अपने आपमें स्पष्ट था। देश-धरती के कल्याण के लिए जन्मजात रणबाँकुरे महावीरसिंह ने अपने जीवन का समर्पण बहुत पहले ही कर दिया था। केवल प्राण-विसर्जन की औपचारिकता ही शेष रह गई थी।

महावीरसिंह ने अंडमान से एक पत्र अपने पिता श्री देवीसिंह को लिखा था। अपने पत्र में उसने वहाँ के कष्टों का उल्लेख न करके हर्ष ही व्यक्त किया था। पिता ने उसके पत्र का जो उत्तर दिया था, उसका मुख्य भाव था—

'उस टापू पर सरकार ने देश-भर के जगमगाते हीरे चुन-चुनकर जमा किए हैं। मुझे खुशी है कि तुम्हें उन हीरों के बीच रहने का अवसर मिला है। उनके बीच रहकर तुम और अधिक चमको तथा मेरा एवं अपने देश का नाम और अधिक रोशन करो। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है।'

महावीरसिंह ने अपने पिता का वह पहला पत्र अपने हृदय पर अंकित कर

रखा था—'देश की सेवा का जो मार्ग तुमने चुना है, वह बड़ी तपस्या का और बड़ा कठिन मार्ग है। जब तुम उसपर चल ही पड़े हो तो पीछे न मुड़ना, साथियों को धोखा मत देना और अपने वृद्ध पिता के नाम का ध्यान रखना।'

महावीरसिंह ने अपने पिता की सभी आकांक्षाएँ पूरी कीं। कठिन-से-कठिन परिस्थिति में भी पीछे मुड़ना तो क्या, पीछे मुड़ने का खयाल भी उसे नहीं आया। साथी क्रांतिकारियों के नाम-धाम पूछने के लिए उसपर क्या-क्या अत्याचार नहीं किए गए और कौन-कौन-सी यातनाएँ उसे नहीं दी गईं। वह साथियों को तो क्या धोखा देता, उसने स्वयं तक को कभी नहीं छला। उसने अपने देश और पिता के नाम को इतनी उज्ज्वलता प्रदान कर दी, जिसे देखकर लोगों की आँखें चौंधिया जाएँ।

पिता और पुत्र की यह महानता हमारे देश के पिताओं और पुत्रों को प्रेरणा प्रदान करे।

□

★ मुनीश्वर अवस्थी

नाम था उनका मुनीश्वर अवस्थी, पर उनके क्रांतिकारी साथी उनको 'ऊँट साहब' ही कहकर पुकारते थे। उनका 'ऊँट साहब' नाम इसलिए नहीं पड़ा कि उनका कद ऊँचा और गरदन लंबी थी। उनका 'ऊँट साहब' नाम पड़ने के पीछे एक घटना है।

मुनीश्वर अवस्थी कानपुर के पास घाटमपुर गाँव के रहनेवाले थे। पार्टी का काम करते-करते वे फरार हो गए। एक दिन घर के लोगों से मिलने की इच्छा बलवती हो उठी और रात को अपने गाँव घाटमपुर पहुँच गए। रात-भर घर में रहे। विचार हुआ कि सुबह अँधेरे में ही साइकिल से कानपुर पहुँच जाना चाहिए। साइकिल उठाई और कानपुर जानेवाली सड़क पर सपाटे भरने लगे।

मुनीश्वर अवस्थी बहुत मोटे काँच का ऐनक लगाते थे। सुबह का अँधेरा भी शेष था। सामने से एक ऊँट गाड़ी चली आ रही थी। मुनीश्वर साहब पूरी गति से ऊँट गाड़ी से जा टकराए। वे टकराए क्या, मय साइकिल ऊँट की अगली टाँगों में फँस गए। ऊँट इस प्रकार के अनुभव से अनभिज्ञ था। उसने उछल-कूद की और लगा जोर-जोर से बलबलाने। ऊँट गाड़ी के चालक की नींद टूटी तो वह हैरान कि क्या हो गया! उतरकर देखा तो पाया कि कोई साहब अपनी साइकिल समेत ऊँट की अगली टाँगों में फँसे हुए हैं। उसने बड़ी मुश्किल से मुनीश्वरजी को ऊँट की टाँगों से बाहर

निकाला। साहब की ऐनक टूट गई थी और कुछ चोटें भी आई थीं। बड़ी मुश्किल से कानपुर पहुँचे और साथियों को अपनी दास्तान सुनाई। तभी से साथी लोग उनको 'ऊँट साहब' के नाम से पुकारने लगे। नामकरण गलत नहीं हुआ।

ऊँट साहब बहुत बातूनी और मजाकिया स्वभाव के थे। जिसके साथ दो बातें हुईं, उसे झट अपना बना लेते थे। अपनी इस कला का प्रयोग उन्होंने सी.आई.डी. विभाग के उच्च अधिकारी रायबहादुर शंभूनाथ के पुत्रों पर भी किया। वे उन्हें ट्यूशन पढ़ाने लगे और धीरे-धीरे उन्हें क्रांतिकारियों का हमदर्द बना लिया। रायबहादुर शंभूनाथ और अन्य पुलिस अधिकारियों के घर उनका आना-जाना हो गया। पुलिस अधिकारियों के घर क्रांतिकारियों के पास से बरामद सामग्री भी रहा करती थी। उनके पास बम बनाने का मसाला, कारतूस, गोलियाँ और देशी तमंचे आदि रहते थे। इनमें से कोई वस्तु वे किसी के घर में रखवाकर उसे गिरफ्तार भी कर लेते थे। रायबहादुर शंभूनाथ के लड़कों के द्वारा यह सामग्री प्राप्त करके ऊँट साहब अपने क्रांतिकारी साथियों को देने लगे। पार्टी का अच्छा काम चल निकला।

कुछ दिन बाद रायबहादुर शंभूनाथ को मुनीश्वरजी की चालाकी मालूम हो गई। उन्होंने भी चालाकी से काम लिया। डरा-धमकाकर और प्रलोभन देकर उन्होंने मुनीश्वर को अपना एजेंट बना लिया। मुनीश्वरजी थे जो दिन-भर घूम-फिरकर शाम को रायबहादुर शंभूनाथ को क्रांतिकारियों की झूठी खबरें दे आते और पुलिस की गतिविधियों की सही खबरें क्रांतिकारियों के पास पहुँचाते रहते थे। उनकी यह चालाकी भी रायबहादुर शंभूनाथ ने पकड़ ली और दफा ११० के तहत मुकदमा चलाकर मुनीश्वरजी को तीन वर्ष की सजा दिलवा दी।

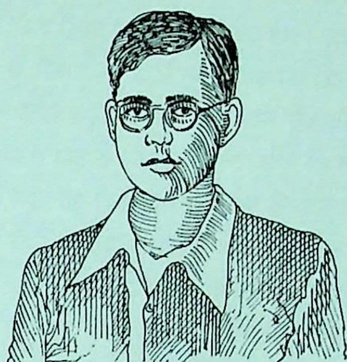
जेल में भी मुनीश्वरजी के दिन अच्छे ही कटते थे। साथी क्रांतिकारियों और जेल के कर्मचारियों का उनके कारण अच्छा मनोरंजन होता रहता था।

जेल से छूटने के बाद मुनीश्वरजी अधिक दिन तक जीवित नहीं रह सके। एक दिन समाचार मिला कि उन्होंने गोली मारकर आत्महत्या कर ली। लोगों ने उस अफवाह पर अधिक विश्वास किया, जिसके द्वारा यह प्रचारित हुआ था कि पुलिस ने मुनीश्वरजी को गोली मारकर उनकी आत्महत्या की बात फैला दी है। मुनीश्वर भी पुलिस के कई अधिकारियों के रहस्य जानते थे। आश्चर्य नहीं कि उनसे छुट्टी पाने के लिए पुलिस अधिकारियों द्वारा यह हथकंडा अपनाया गया हो। □



★ यशपाल

वे दोनों घोर क्रांतिकारी थे। दोनों में बहस इस बात पर हो रही थी कि वाइसराय लॉर्ड इरविन की ट्रेन को बम से कौन उड़ाए? यशपाल और भगवतीचरण बोहरा दोनों ने ही मिलकर बम तैयार किए थे। भगवतीचरण का आग्रह था कि बम का विस्फोट मैं करूँगा। यशपाल इस काम को अपने हाथ से करना चाह रहे थे। दिल्ली-मथुरा रेल लाइन पर निजामुद्दीन के निकट कुछ समय पहले ही रेल की पटरी के नीचे बम दबा दिया गया था। बिजली के दो तार बम से जोड़े गए थे। तार के दो अन्य सिरों को एक बैटरी से संबद्ध किया गया था। इस बैटरी का बटन दबाकर बम का विस्फोट करना था। रेल की पटरी से लगभग तीन सौ गज की दूरी तक जमीन के अंदर तार ले जाए गए थे। विस्फोट करनेवाले को एक झाड़ी की ओट में बैठकर विस्फोट करना था। इन दोनों के एक अन्य क्रांतिकारी साथी इंद्रपाल ने एक सराय के खंडहर में लगभग एक महीने तक साधु के वेश में रहकर उस क्षेत्र में गाड़ियों के आने-जाने के समय और लाइन की रखवाली आदि का अध्ययन किया था। आखिर तय यह हुआ कि बम का विस्फोट यशपाल करेंगे और बम विस्फोट के पश्चात् भगवतीचरण उन्हें सुरक्षापूर्वक ले जाने की व्यवस्था करेंगे।



यशपाल

वाइसराय लॉर्ड इरविन को २३ दिसंबर १९२९ को कोल्हापुर से दिल्ली लौटना था। उनकी स्पेशल ट्रेन सुबह छह बजे नई दिल्ली पहुँचने वाली थी। यशपाल ने फौजी मेजर की वरदी पहनी और साथी भागराम को अर्दली के कपड़े

पहनाए गए। सुबह चार बजे दोनों क्रांतिकारी घटनास्थल पर मोटर साइकिल द्वारा जा पहुँचे। मोटर साइकिल भागराम की निगरानी में दिल्ली-मथुरा रोड पर छोड़ी गई। यशपाल उस झाड़ी की ओर जा पहुँचे, जहाँ बिजली के तार दबाए गए थे। उन तारों को निकालकर यशपाल ने उसके दोनों सिरों को एक बैटरी से संबद्ध कर दिया। छह बजने से कुछ मिनट पहले एक पाइलट इंजन पटरियों पर दौड़ता हुआ नई दिल्ली स्टेशन की तरफ चला गया। दस-बारह मिनट पश्चात् वाइसराय की गाड़ी आने की धड़धड़ाहट सुनाई दी। यशपाल बैटरी का बटन दबा देने के लिए सन्नद्ध हो गए। घने कोहरे के कारण गाड़ी दिखाई नहीं दे रही थी। योजना यह थी कि जैसे ही इंजन बम के ऊपर से निकले, बटन दबाकर विस्फोट कर दिया जाए। इंजन के गिर जाने से पूरी ट्रेन गिर जाती और वाइसराय महोदय दुर्घटना के शिकार हो जाते। घने कोहरे के कारण गाड़ी का इंजन दिखाई नहीं दिया। यशपाल ने अंदाज से बैटरी का बटन दबा दिया। बड़े जोर से धमाका हुआ; लेकिन ट्रेन गिरी नहीं। वह नई दिल्ली स्टेशन की ओर धड़धड़ाती चली गई। यशपाल ने समझा कि निशाना गलत हो गया। निराश होकर वे उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ भागराम मोटर साइकिल की रखवाली कर रहा था। सर्दी खा जाने के कारण मोटर साइकिल स्टार्ट नहीं हुई। उसे बहुत दूर तक धकेला गया, पर फिर भी वह स्टार्ट नहीं हुई। इसी बीच दिल्ली की तरफ से मिलिट्री का एक दस्ता घटनास्थल की ओर जाता हुआ दिखाई दिया। यशपाल और भागराम युद्ध करने के लिए तैयार हो गए। जैसे ही दस्ता इन लोगों के निकट पहुँचा, दस्ते का संचालन कर रहे हवलदार ने यशपाल को बड़ा अफसर समझकर गारद से उन्हें सैल्यूट दिलाया। उसने सोचा कि घटना की जाँच करने के लिए मेजर साहब अर्दली के साथ पहले ही वहाँ पहुँच गए हैं। आया हुआ संकट टल गया।

यशपाल और भागराम मोटर साइकिल को धकेलते हुए उस स्थल तक पहुँच गए, जहाँ से बस्ती प्रारंभ हो जाती है। मोटर साइकिल को मरम्मत के लिए एक दुकान पर डालकर वे दोनों रेलवे स्टेशन जा पहुँचे। एक पैसेंजर गाड़ी द्वारा वे गाजियाबाद जा पहुँचे, जहाँ भगवतीचरण बेसब्री से उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। यशपाल और भगवतीचरण इस अवसर की ताक में थे कि एकांत मिले और बात की जाए। इसी बीच आवाज लगाकर अखबार बेचनेवाले से उन्होंने एक अखबार खरीदा और उसमें वाइसराय को बम से उड़ाए जाने की घटना का समाचार पढ़ा। एक एक्सप्रेस ट्रेन पहले पहुँचकर गाजियाबाद पर अखबारों का बंडल छोड़कर आगे बढ़ गई थी।

अखबार द्वारा उन्हें मालूम हुआ कि विस्फोट अत्यंत सफल रहा था। वाइसराय

के सौभाग्य से उनका डिब्बा आगे निकल चुका था और भोजन यान बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो गया था। एक व्यक्ति मारा भी गया था और कुछ घायल हो गए थे। एक स्थान से पटरी का टुकड़ा उखड़कर दूर जा गिरा था। स्पीड में होने के कारण गाड़ी पार हो गई थी। नई दिल्ली स्टेशन पर जब गाड़ी पहुँची तो क्षतिग्रस्त डिब्बे को तिरपालों से ढक दिया गया था। वाइसराय महोदय सीधे चर्च गए और जान बच जाने के उपलक्ष्य में उन्होंने प्रार्थना की। इसी बीच क्रांतिकारियों को पकड़ने के लिए सरकार ने दौड़-धूप प्रारंभ कर दी।

यशपाल और भगवतीचरण के हौसले बुलंद थे। वे एक अन्य ट्रेन से कलकत्ता पहुँच गए। साथी भागराम को लाहौर भेज दिया गया।

यशपाल की गणना 'हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र संघ' के साहसी और वीर क्रांतिकारियों में थी। लाहौर के नेशनल कॉलेज में भगतसिंह, सुखदेव और यशपाल सहपाठी थे। भगवतीचरण इनसे दो दर्जे ऊपर थे। ये चारों ही सशस्त्र क्रांति का पथ अपना चुके थे। यशपाल में साहित्यिक अभिरुचि भी थी।

जब तक बना, ये लोग बिना फरार हुए क्रांति कार्य करते रहे। जब लाहौर में इन लोगों द्वारा स्थापित बम फैक्टरी पकड़ी गई तो यशपाल फरार हो गए। फरारी की अवस्था में यशपाल कुछ दिन अपनी जन्मभूमि काँगड़ा में रहे, फिर कुछ दिन जम्मू-कश्मीर में बम बनाने का कारखाना स्थापित करने का प्रयत्न किया और अंततोगत्वा रोहतक में बम बनाने की अच्छी फैक्टरी स्थापित कर ली। आवश्यकता पड़ने पर कुछ दिन कानपुर में चंद्रशेखर आजाद के साथ काम किया और उन्हींके निर्देशन में दिल्ली में बम बनाने का कारखाना स्थापित कर लिया।

देश में राजनीतिक घटनाचक्र बहुत तेजी के साथ घूम रहा था और क्रांतिकारी भी अपने कार्यों में उतनी ही तेजी दिखा रहे थे। अपनी योजना के अनुसार भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त सरकार द्वारा बनाए जानेवाले कानूनों का विरोध करने के उद्देश्य से दिल्ली असेंबली में बम विस्फोट करके अपनी गिरफ्तारियाँ दे चुके थे। लाहौर में सुखदेव भी गिरफ्तार हो गए थे।

पार्टी के विस्तार की दृष्टि से कुछ नए लोगों को भी भरती किया गया। महिलाओं को भी क्रांतिकारी पार्टी में प्रतिनिधित्व मिला। अब भगवतीचरण बोहरा की पत्नी श्रीमती दुर्गा देवी, सुशीला दीदी और प्रकाशवती भी पार्टी की सदस्याएँ बनीं।

पार्टी ने निश्चय किया कि भगतसिंह और साथियों को लाहौर जेल से छुड़ाया जाए। इस काम को हाथ में लेने के पीछे यही भावना थी कि ब्रिटिश शासन को यह दिखाया जाए कि क्रांतिकारी लोग जेल से अपने साथियों को छुड़ाने का

दुस्साहसपूर्ण कार्य भी कर सकते हैं। इस योजना में यशपाल को भी सम्मिलित किया गया।

भगतसिंह को जेल से छुड़ाने के पूर्व ही एक दुर्घटना हो गई। रावी नदी के किनारे बम परीक्षण करते समय हाथ में बम फट जाने के कारण साथी भगवतीचरण शहीद हो गए। एक दिन बाद ही इन लोगों के मकान में रखे हुए दो बमों का विस्फोट अपने आप हो गया और भगतसिंह को छुड़ाने की योजना अधूरी छोड़कर क्रांतिकारियों को इधर-उधर बिखर जाना पड़ा। अब यशपाल ने चंद्रशेखर आजाद के साथ मिलकर क्रांति संगठन को आगे बढ़ाया। यद्यपि कुछ कारणों से यशपाल एवं चंद्रशेखर आजाद के बीच कुछ गलतफहमियाँ पैदा हुईं; पर बहुत शीघ्र ही उनका निराकरण हो गया और दल का काम फिर से चल निकला।

यशपाल को फिर एक सदमे का शिकार होना पड़ा, जब २७ फरवरी, १९३१ को इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में ब्रिटिश पुलिस के साथ युद्ध करते हुए चंद्रशेखर आजाद शहीद हो गए। यह पार्टी के लिए भी बहुत बड़ी क्षति थी। कुछ ही दिन पश्चात् अर्थात् २३ मार्च, १९३१ को लाहौर में भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु को फाँसी के फंदों पर झुला दिया गया।

अपने इन साथियों के शहीद हो जाने पर 'हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र सेना' के कमांडर इन चीफ का दायित्व यशपाल के कंधों पर आ पड़ा। कभी दिल्ली, कभी कानपुर रहकर यशपाल क्रांति के बिखरे हुए सूत्रों को जोड़ने का प्रयत्न करने लगे। कानपुर में साथी सुरेंद्र पांडे बहुत सक्रिय रूप से कार्य कर रहे थे।

दल के संगठन के कार्य से एक बार यशपाल को साथी सुरेंद्र पांडे के निमंत्रण पर कानपुर पहुँचना पड़ा। मई का महीना था। गंगा के सरसैया घाट पर दोपहर के समय मिलने का निश्चय हुआ। जब यशपाल सरसैया घाट पर पहुँचे तो उनके साथियों में से काशीराम, भवानीसहाय और राजेंद्रदत्त निगम एक मंदिर की छायादार ओट में ताश खेल रहे थे। लगभग उन्हीं लोगों के पास चार अन्य नागरिक लोग भी खड़े हुए थे। वे जिस इक्के में बैठकर आए थे, वह भी वहीं खड़ा हुआ था। यशपाल ने वहाँ पहुँचकर उन लोगों के बारे में अपने साथियों से पूछताछ की। साथी काशीराम ने बताया—

"जब मैं इधर आ रहा था तो ये लोग बहुत दूर से मेरे पीछे-पीछे यहाँ तक आ पहुँचे हैं, पता नहीं कौन लोग हैं!"

यशपाल ने धीरे से कहा—

"भले आदमी, ये लोग सी.आई.डी. वालों के अतिरिक्त और कौन लोग हो सकते हैं! मैं इनसे पूछताछ करता हूँ। साथी सुरेंद्र पांडे और अन्य लोग भी यहाँ

आने वाले हैं। उनके आने से पहले ही इन लोगों से फैसला हो जाना चाहिए।''

यशपाल ने उन लोगों को पुकारकर कहा—

''भाई साहब! आप लोग वहाँ खड़े होकर हम लोगों की तरफ क्यों देख रहे हैं? हमारे पास ही आ जाइए। ताश के दो-दो हाथ हो जाएँ।''

उनमें से एक ने उत्तर दिया—

''हम लोग यहाँ खड़े हैं। आपका कुछ बिगाड़ तो नहीं रहे। आप लोग ताश खेलते रहिए।''

यशपाल ने कहा—

''आप वहाँ खड़े हैं, इससे हमें क्या आपत्ति हो सकती है; लेकिन इस तरह निरंतर हमारी ओर घूरते रहना भले आदमियों का काम नहीं है। क्या आप लोगों को हममें से किसीसे काम है?''

उसी व्यक्ति ने काशीराम की ओर संकेत करते हुए कहा—

''हम आपके इन साथी को पुलिस स्टेशन पर ले जाएँगे। दारोगाजी ने इन्हें बुलाया है।''

यशपाल ने पैंतरा बदलते हुए कहा—

''मुझे लगता है, आपको इनके विषय में गलतफहमी हुई है। अगर आप इनको ले जाना चाहते हैं तो इनका नाम बताइए?''

उस व्यक्ति ने उत्तर दिया—

''इनका नाम काशीराम है।''

यशपाल ने कहा—

''देखिए, आपको गलतफहमी ही हुई है। ये काशीराम नहीं हैं। क्यों जी, अपना नाम क्यों नहीं बताते?''

यह बात यशपाल ने काशीराम को सुनाते हुए कही। काशीराम ने तुरंत कहा—

''मेरा नाम तो जगदीश है। मैं काशीराम तो हूँ नहीं, फिर आपके साथ पुलिस स्टेशन क्यों जाऊँगा?''

उस व्यक्ति ने कहा—

''आप हमारे साथ पुलिस स्टेशन चलिए, अपनी सफाई वहीं दीजिए।''

यशपाल के मस्तिष्क में कोई योजना कौंध गई। काशीराम के प्रति नकली क्रोध का प्रदर्शन करते हुए उन्होंने कहा—

''यदि इन लोगों का यही आग्रह है तो तुम चले क्यों नहीं जाते इनके साथ? हम लोग भी तुम्हारे भाई को लेकर थाने पहुँचते हैं। इनका और दारोगाजी का शक

दूर हो जाना चाहिए।''

काशीराम संकेत को समझकर उन लोगों के साथ जाने को तैयार हो गए। उन्होंने कहा—

''ठीक है, आप लोग इक्के पर बैठ जाइए। मैं साइकिल पर सवार होकर आपके साथ चलता हूँ।''

उस व्यक्ति ने विरोध प्रकट करते हुए कहा—

''नहीं, हम सभी लोग इक्के पर सवार होकर चलेंगे। तुम्हारी साइकिल भी हम इक्के के पीछे बाँध देते हैं।''

यह कहकर वह व्यक्ति इक्केवाले से रस्सी माँगकर काशीराम की साइकिल इक्के के पीछे बाँधने लगा। उसका एक साथी इस काम में उसको सहयोग देने लगा। उनके दो अन्य साथी इक्के पर बैठ गए।

यशपाल ने इसे बहुत अच्छा अवसर समझा। उन्होंने अपना रिवॉल्वर निकालकर एक-एक गोली साइकिल बाँधनेवालों के ऊपर छोड़ दी। लहूलुहान होकर वे भूमि पर गिर पड़े। उनके दो साथी जान बचाकर भाग खड़े हुए। कुछ दूर जाकर उन्होंने इन लोगों पर गोलियाँ छोड़ीं; पर तगड़े जवाबी हमले के कारण भाग जाने में ही उन्होंने अपनी खैर समझी। यशपाल और उनके साथियों ने भी अपना रास्ता पकड़ा तथा शहर की भीड़ में खो गए। सी.आई.डी. के जिन लोगों को गोलियाँ लगी थीं, वे मरे नहीं, घायल होकर बच गए।

पार्टी के नए सिरे से संगठन का कार्य अब यशपाल ने अपने जिम्मे लिया। पार्टी के ही एक सदस्य कृष्णशंकर श्रीवास्तव के अनुरोध पर दोनों इलाहाबाद पहुँचे। श्रीवास्तव ने यशपाल को एक आयरिश महिला सावित्री देवी के घर ठहराया। जाते समय श्रीवास्तव ने कहा—

''सुबह लगभग पाँच बजे मैं आऊँगा और अपने साथ पार्टी के कुछ अन्य सदस्यों को भी लाऊँगा। आप तैयार रहिए। उनके साथ कुछ बातें तय करनी हैं।''

अगली सुबह पाँच बजे तक यशपाल तैयार होकर श्रीवास्तव की प्रतीक्षा करने लगे। जीने पर कुछ लोगों के चढ़ने की आहट हुई। यशपाल ने सोचा कि श्रीवास्तव और साथी आ रहे होंगे। जीने पर पहुँचनेवाले लोगों ने दरवाजा खटखटाया। सावित्री देवी ने पूछा—''कौन है?''

उत्तर मिला—''पुलिस के लोग हैं। दरवाजा जल्दी खोलिए, नहीं तो तोड़ दिया जाएगा।''

यशपाल ने अपना रिवॉल्वर तैयार किया और धीरे से सावित्री देवी से कहा—

"आप दरवाजा खोल दीजिए, मैं मुकाबला करूँगा।"

इतना कहकर यशपाल अंदर के कमरे में लगे चौक में पहुँचकर एक जालीदार टीन की ओट लेकर मुकाबले के लिए तैयार हो गए। दरवाजा खुलते ही पुलिस अफसर पिलिडच ने उनका पीछा किया और उनपर एक गोली छोड़ी। अब दोनों ओर से एक-दूसरे पर गोलियाँ छोड़ी जाने लगीं। आखिर यशपाल के रिवॉल्वर की सभी गोलियाँ समाप्त हो गईं। यशपाल ने खाली रिवॉल्वर पिलिडच के सिर पर दे मारा। रिवॉल्वर फेंक देने पर यशपाल गिरफ्तार कर लिये गए।

यशपाल पर दो मुकदमे चलाए गए और प्रत्येक मुकदमे में उन्हें सात-सात वर्ष के कारावास का दंड दिया गया। यह सजा एक के बाद दूसरी चलनी थी, अर्थात् उन्हें चौदह साल तक जेल में रहना था। जेल जीवन में एक निराली घटना यह हुई कि अपनी ही पार्टी की एक महिला क्रांतिकारी प्रकाशवती से जेल के अंदर ही उनकी शादी हुई।

यशपाल को पूरे चौदह वर्ष का कारावास नहीं भुगतना पड़ा। सन् १९३७ में जब कांग्रेस मंत्रिमंडल की स्थापना की पहल हुई तो अन्य राजनीतिक कैदियों के साथ यशपाल को भी मुक्त कर दिया गया।

□



★ रनवीरसिंह ★ रमेश गुप्ता

उसकी उम्र केवल चौदह-पंद्रह वर्ष की रही होगी। वह कानपुर के एक हाई स्कूल का विद्यार्थी था। जब उसने सुना कि इलाहाबाद में चंद्रशेखर आजाद की शहादत के लिए वीरभद्र तिवारी उत्तरदायी है तो उसका मन मचल उठा कि वह आजाद की मुखबिरी करनेवाले गद्दार वीरभद्र तिवारी को मृत्युदंड दे। बालक रमेश गुप्ता ने यह संकल्प कर लिया।

वीरभद्र तिवारी को मृत्युदंड देने की योजना इस प्रकार बनी कि कानपुर के नारियल बाजार की एक गली में अश्विनीकुमार मिश्रा के घर उसे बुलाया गया। अश्विनीकुमार के छोटे भाई विजयकुमार मिश्रा ने उसे बुला लाने का दायित्व अपने ऊपर लिया।

गली के एक सिरे पर रनवीरसिंह और भवानीसहाय गोली मारने के लिए तैयार थे। गली का दूसरा सिरा सँभाला रमेश गुप्ता ने। यदि वीरभद्र बचकर भागता है तो रमेश को उसपर गोली चलानी थी। वीरेंद्र पांडेय को यह दायित्व दिया गया कि वह गोली चलानेवाले साथियों को सुरक्षित स्थान पर पहुँचाए।

जैसे ही वीरभद्र तिवारी ने गली में प्रवेश किया, भवानीसहाय और रनवीरसिंह ने गोलियाँ चला दीं। गोलियों की आवाज सुनते ही वीरभद्र तिवारी जमीन पर लेट गया और 'मार डाला! मार डाला!' चिल्लाने लगा। वास्तव में गोलियों ने उसे छुआ तक नहीं था; पर वह अभिनय इस प्रकार कर रहा था जैसे उसे गोलियाँ लगी हों। आक्रमणकारियों ने समझा कि हमारा शिकार मारा गया। अपना काम पूरा हुआ समझ वे लोग वहाँ से भाग निकले। उनके चले जाने पर वीरभद्र तिवारी भी उठकर भाग गया। अपनी चालाकी से वीरभद्र ने अपनी जान बचा ली।

जब रनवीरसिंह ने सुना कि वीरभद्र बच गया, तो यह समाचार सुनकर उसे इतना सदमा पहुँचा कि वह भूमि पर गिर पड़ा और बेहोश हो गया। होश में आने के बाद भी वह सदमे से मुक्त नहीं हुआ और बीमार पड़ गया। उसी सदमे से

उसकी मृत्यु हो गई।

रमेश गुप्ता को भी वीरभद्र के बच जाने का सदमा पहुँचा; पर वह निराश नहीं हुआ। वीरभद्र को यह पता नहीं था कि रमेश गुप्ता भी उसके प्राणों का ग्राहक है। रमेश ने दुबारा प्रयत्न करने के लिए उसकी गतिविधियों पर नजर रखना प्रारंभ कर दिया। उसे मालूम हुआ कि वीरभद्र कानपुर छोड़कर उरई रहने लगा है।

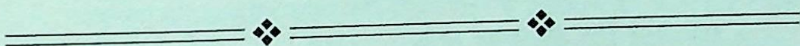
रमेश गुप्ता ने अपने परिवार के लोगों से कहा कि मैं उरई के हाई स्कूल में पढ़ना चाहता हूँ। उसका तर्क था कि वहाँ के हाई स्कूल के प्रधानाध्यापक मुझको बहुत चाहते हैं और उनकी कृपा से मैं अच्छी श्रेणी में उत्तीर्ण हो जाऊँगा। उसके माता-पिता को उसके वास्तविक मंतव्य का पता नहीं था। रमेश उरई जाकर रहने लगा। एक दिन रमेश गुप्ता ने देखा कि वीरभद्र तिवारी एक मैदान में भीड़ से हटकर रामलीला देख रहा है। इसे अच्छा अवसर समझकर रमेश उसके पास पहुँचा और उसपर गोली चला दी। वीरभद्र ने उसी चाल से यहाँ भी काम लिया। वह भूमि पर लेटकर छटपटाने का अभिनय करने लगा। रमेश गुप्ता ने उसपर दूसरी गोली भी छोड़ी; पर उसका वह निशाना भी चूक गया। इतने में लोगों ने उसे पकड़ लिया।

रमेश गुप्ता पर मुकदमा चला। पुलिस ने उसे कई प्रकार की यातनाएँ दीं कि वह बता दे कि वीरभद्र को मारने में उसके और कौन-कौन से साथी हैं। पुलिस की यातनाओं से वह किशोर बालक विचलित नहीं हुआ और उसने अपने किसी भी साथी का नाम नहीं बताया। वह यही कहता रहा कि वीरभद्र को मारने की मेरे अकेले की ही योजना थी।

अदालत ने अपने निर्णय के अनुसार रमेश गुप्ता को दस वर्ष के कठोर कारावास का दंड दिया।

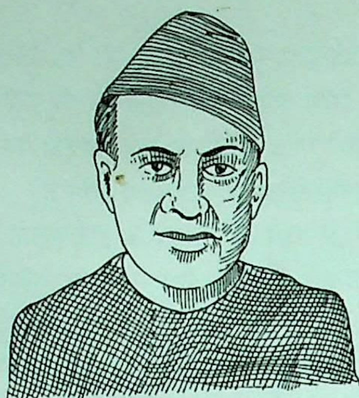
□

★ राजेंद्रपाल सिंह वारियर



राजेंद्रपाल सिंह वारियर की भेंट जब चंद्रशेखर आजाद से हुई तो आजाद ने उससे कहा—

''तुम नौजवान हो और अभी कॉलेज में पढ़ रहे हो। अभी से तुम्हें फरार क्रांतिकारी होने की आवश्यकता नहीं है। तुम अपनी पढ़ाई चालू रखो और अपने काम के युवकों की तलाश में रहो। जब आवश्यकता पड़े, तुम फरार होकर वे सब काम करना, जो हम लोग कर रहे हैं।''



राजेंद्रपाल सिंह वारियर

राजेंद्रपाल सिंह ने शंका व्यक्त की—

"इसका मतलब यह हुआ कि आप अभी मुझे अपनी पार्टी का सदस्य नहीं मान रहे। पार्टी का सक्रिय सदस्य बनने के लिए क्या मुझे किसीका खून करना पड़ेगा या किसी डाके में सम्मिलित होना पड़ेगा?"

आजाद ने राजेंद्र के कंधे पर हाथ रखकर समझाते हुए कहा—

"ऐसा कुछ भी नहीं है, राजेंद्र! हम लोग क्रांतिकारी हैं, हत्यारे और डाकू नहीं। तुम ऐसा एक भी उदाहरण नहीं बता सकोगे कि अकारण हमने किसीकी जान ली हो। सांडर्स को हम लोगों ने इसलिए मारा, क्योंकि वह हमारे लोकप्रिय और वयोवृद्ध नेता लाला लाजपतराय का हत्यारा था और उनकी हत्या के कारण हमारा राष्ट्रीय सम्मान दाँव पर लग गया था। डाकों की ओर से भी हम लोगों का मन हट गया है; क्योंकि इन कामों से पार्टी की छवि बिगड़ती है। इस समय भी हमें कुछ धन की जरूरत है; लेकिन हम कोई मनी एक्शन न करके अपने दानवीर मित्रों का ही सहारा लेंगे।"

राजेंद्रपाल सिंह ने इसे सेवा का बहुत अच्छा अवसर समझा। उसने आजाद से पूछा—

"इस समय कितने पैसे से काम चल सकेगा? यदि आप अनुमति दें तो यह सेवा मैं करने का प्रयत्न करूँ!"

आजाद ने कुछ संकोच के साथ कहा—

"तात्कालिक आवश्यकता की पूर्ति तो पाँच सौ रुपयों से हो जाएगी। इसके पश्चात् कोई-न-कोई हल निकल ही आएगा।"

राजेंद्रपाल सिंह का कथन था—

"मैं प्रयत्न करूँगा कि कल तक यह रकम जुटा दूँ। क्या कल तक आप मेरठ नगर में ही ठहरेंगे या यह निधि लेकर मुझे दिल्ली पहुँचना होगा?"

"यदि असुविधा न हो तो तुम दिल्ली आ जाना। स्वयं को किसी खतरे में डालने की आवश्यकता नहीं। यदि पैसा न जुटा सको, तो भी आ जाना।" आजाद ने आश्वासन दिया।

आजाद से बिदा होकर राजेंद्रपाल सिंह वारियर सोचने लगा कि पैसे का

प्रबंध कहाँ से किया जाए। मेरठ नगर में उसे ऐसा कोई व्यक्ति समझ में नहीं आया। उसे अपने एक मित्र का ध्यान आया, जो मेरठ नगर से लगभग पचास मील दूर 'किरठल' गाँव में रहते थे। उनका नाम चौधरी विजयपाल सिंह था। चौधरी साहब देशभक्त थे और कांग्रेस द्वारा संचालित असहयोग आंदोलन में एक वर्ष जेल में रह आए थे।

राजेंद्रपाल सिंह ने साइकिल उठाई और पचास मील की यात्रा करके अपने मित्र के पास पहुँच गए। वहाँ उन्होंने अपने मित्र से कहा—

"देश के काम के लिए मुझे पाँच सौ रुपयों की आवश्यकता आ पड़ी है, इसलिए मैं आपके पास आया हूँ।"

चौधरी साहब ने कहा—

"आप पचास मील की यात्रा साइकिल से करके आए हैं। आप बहुत थके हुए हैं और रात भी हो गई है। मैं आपको रात को नहीं जाने दूँगा। मैं आपका काम कर दूँगा। आप यहाँ से सुबह जाइए।"

राजेंद्रपाल सिंह अपने मित्र के साथ रात रह गए। सुबह हुई। उस समय चौधरी साहब के पास नकद रुपए नहीं थे। उन्होंने सोने के दो कड़े दिए और कहा कि इन्हें बेचकर काम चला लेना। राजेंद्रपाल सिंह वे कड़े लेकर मेरठ पहुँच गए। वे कड़े छह सौ रुपयों में बिके। सारा पैसा राजेंद्रपाल सिंह ने दिल्ली जाकर अपने नेता चंद्रशेखर आजाद को दे दिया और कहा—

"यदि आप अनुमति दें तो मैं कांग्रेस की ओर से कुछ दिन जेल जीवन का अनुभव कर आऊँ। इस प्रकार मेरठ क्षेत्र के कांग्रेसी सेठियों से मेरा मेल-जोल बढ़ जाएगा और फिर उस क्षेत्र से काफी पैसा मिल सकेगा।"

आजाद का कथन था—

"इसमें हम लोगों को क्या आपत्ति हो सकती है! पार्टी के लिए यदि तुम इतना त्याग कर सकते हो तो अवश्य करो।"

आजाद की अनुमति पाकर राजेंद्रपाल सिंह ने सत्याग्रह का कार्यक्रम अपने हाथ में ले लिया और एक महीने के कारावास का अनुभव भी प्राप्त कर लिया। हापुड़ के सेठ लोगों से उन्हें बहुत अच्छा आर्थिक सहयोग मिला। क्रांतिकारी दल का भी बहुत अच्छा काम चल निकला।

चंद्रशेखर आजाद को दिल्ली इसलिए रहना पड़ा था कि वहाँ बम बनाने का एक कारखाना खोला गया था और उसकी देखरेख उन्हें करनी पड़ती थी। दुर्भाग्य से उनका एक क्रांतिकारी साथी कैलाशपति पुलिस द्वारा गिरफ्तार कर लिया गया। गिरफ्तार होते ही वह पुलिस का मुखबिर बन गया और उसने क्रांतिकारियों के सारे

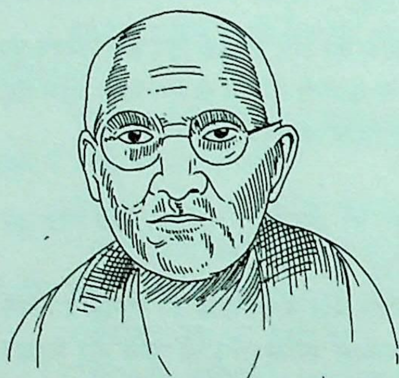
भेद पुलिस को दे दिए। उसने राजेंद्रपाल सिंह का नाम और पता भी पुलिस को बता दिया। राजेंद्रपाल सिंह को घर छोड़कर फरार हो जाना पड़ा।

एक दिन पुलिस को सुराग मिला कि राजेंद्रपाल सिंह दिल्ली में है। दिल्ली की पुलिस ने मेरठ की पुलिस भी बुलवा ली और यमुना के किनारे उसे घेर लिया गया। अपने को पुलिस से घिरा हुआ पाकर राजेंद्रपाल सिंह यमुना नदी में कूद पड़ा। पुलिस के कुछ आदमी भी नदी में कूद पड़े और उसे गिरफ्तार कर लिया गया।

दिल्ली षड्यंत्र केस में सम्मिलित करके राजेंद्रपाल सिंह पर मुकदमा चलाया गया। वह मुकदमा तो सफल नहीं हो सका, पर अवैध हथियार रखने के मामले में मुकदमा चलाकर उसे दो वर्ष की सजा सुनाई गई। इस सजा से छूटने के बाद भी उसे पाँच वर्ष तक नजरबंद रखा गया। राजेंद्रपाल सिंह वारियर को संतोष था कि वह एक अच्छे नेता के साथ कुछ दिन देश का काम कर सका। अपने नेता चंद्रशेखर आजाद के शहीद हो जाने का उसे बहुत दुःख रहा।

□

★ राधामोहन गोकुलजी



राधामोहन गोकुलजी

क्रांतिकारी शिव वर्मा कानपुर में पढ़ने के लिए पुस्तकें माँगने राधामोहन गोकुलजी के पास जाया करते थे। जब वे कोई पुस्तक माँगने जाते तो राधामोहन गोकुलजी कहते—

"देखो शिव, तुम पुस्तक ले तो जा रहे हो, पर इसे ध्यान से पढ़ना। मैं बहुत सख्त मास्टर हूँ। मैं तुमसे कठिन-कठिन प्रश्न पूछूँगा और यदि तुम उत्तर न दे पाए तो फिर तुम्हें पुस्तकें देना बंद कर दूँगा।"

शिव वर्मा जब पुस्तकें लौटाने जाते तो सचमुच ही उनसे कठिन-कठिन प्रश्न पूछे जाते थे। शिव वर्मा भी कच्चे खिलाड़ी नहीं थे। वे प्रश्नों के तड़ाक-फड़ाक उत्तर दे देते और अगली पुस्तक पाने के हकदार बन जाते थे। एक बार जब वे पढ़ी हुई पुस्तक राधामोहनजी को लौटाने गए तो राधामोहनजी ने उनसे

प्रश्न किया—

''अच्छा शिव, यह बताओ कि अठारह और अट्ठावन में कितना अंतर होता है?''

शिव वर्मा ने कहा—

''यह प्रश्न तो इस पुस्तक की सामग्री पर आधारित नहीं है।''

''यही समझ लो कि मैं तुम्हारे गणित के ज्ञान की परीक्षा ले रहा हूँ। अब बताओ कि अठारह और अट्ठावन में कितना अंतर होता है?''

शिव वर्मा ने उत्तर दिया—

''अठारह और अट्ठावन में उतना ही अंतर है, जितना मेरी और आपकी उम्र में है।''

राधामोहन गोकुलजी उत्तर सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। कहने लगे—

''अच्छा शिव, अब कोई प्रश्न तुम मुझसे पूछो।''

शिव वर्मा ने कहा—

''मैं आपसे क्या प्रश्न करूँ! आप तो हम क्रांतिकारियों के वैचारिक गुरु भी हैं और इस उम्र में हमसे बड़े क्रांतिकारी हैं। आप तो हम लोगों की समस्याओं का क्रांतिकारी समाधान भी प्रस्तुत कर देते हैं।''

''अच्छा, तो कोई समस्या ही मेरे सामने रखो।''

''समस्या यह है कि हमारी पार्टी अर्थाभाव से पीड़ित है। क्रांतिकारियों को अस्त्र-शस्त्र तो चाहिए ही। उन्हें जुटाने के लिए हम लोगों को डकैतियों का सहारा लेना पड़ता है। क्या हमारी इस समस्या का आपके पास कोई हल है?''

''है क्यों नहीं! मेरे पास इस समस्या का त्वरित हल है। जितना पैसा चाहो उतना जुटा सकता हूँ। तुम देखते ही हो कि मैं साधुओं जैसे कपड़े पहनता हूँ। नकली जटाएँ लगाकर अपना और अच्छा मेकअप कर लूँगा। तुममें से कोई दो लोग गेरुए वस्त्र पहनकर मेरे चेले बन जाओ। किसी अपरिचित क्षेत्र में हम लोग निकल जाएँगे। तुम लोग घोषित कर देना कि हमारे बाबाजी मौनी बाबा हैं, बोलते नहीं हैं; लेकिन उनके आशीर्वाद से लोगों के वारे-न्यारे हो जाते हैं। यह भी प्रचारित कर देना कि हमारे बाबाजी पैसे का स्पर्श नहीं करते।''

शिव वर्मा ने शंका व्यक्त की—

''अच्छा बाबाजी, जब हम यह प्रचारित करेंगे कि आप पैसे का स्पर्श नहीं करते तो फिर पैसा आएगा कैसे?''

राधामोहन गोकुलजी ने उत्तर दिया—

''अरे, तुम समाज मनोविज्ञान का यह नियम भी नहीं जानते कि जिसके

लिए मना करो, लोग वही काम करते हैं। लोग जन्मदिन के निमंत्रण-पत्रों पर छाप देते हैं कि उपहार स्वीकार नहीं किए जाएँगे। परिणाम यह होता है कि लोगों को उपहार ले जाने की प्रेरणा मिल जाती है। जैसे ही तुम यह घोषित करोगे कि हमारे बाबाजी पैसा नहीं छूते, तो लोग बाबाजी के चेलों को पैसा देने लगेंगे और इतना पैसा आएगा कि तुम लोगों से बटोरा नहीं जाएगा।''

शिव वर्मा ने फिर शंका व्यक्त की—

''अच्छा बाबाजी, जब आप बोलेंगे नहीं तो आशीर्वाद कैसे देंगे?''

बाबाजी का उत्तर था—

''मैं आशीर्वाद के रूप में एक चुटकी-भर भस्मी दे दिया करूँगा। लोगों में आत्मबल और आत्मविश्वास पैदा होगा। जिन लोगों के काम बन जाएँगे, वे हमारा प्रचार करेंगे और हमारे पास अथाह पैसा आने लगेगा।''

शिव वर्मा ने कहा—

''अच्छा बाबाजी, एक चेले के रूप में मैं स्वयं को प्रस्तुत करता हूँ। दूसरा चेला विजयकुमार सिन्हा बन जाएगा। यदि आप चाहें तो हम आपको एक ऐसा चेला दे दें, जो किसी समय एक स्वामीजी का सचमुच ही चेला बन चुका है।''

बाबाजी ने जिज्ञासा से पूछा—

''कौन है वह व्यक्ति?''

शिव वर्मा ने उत्तर दिया—

''अरे! आप हमारे क्रांतिकारी साथी चंद्रशेखर आजाद को नहीं जानते?''

बाबाजी ने गंभीरतापूर्वक कहा—

''अरे हाँ, चंद्रशेखर आजाद के विषय में तो विजयकुमार सिन्हा ने भी मुझसे बात की थी। वह कह रहा था कि हम लोग आजाद को कानपुर बुलाना चाहते हैं; पर समस्या उसके ठहराने की है। तुम लोग उसे यहाँ बुला लो। वह मेरे साथ ठहर जाएगा। शायद इतना विश्वास तो तुम लोग मुझपर कर ही सकोगे!''

शिव वर्मा ने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा—

''आपका यह प्रस्ताव हमें स्वीकार है। पैसा जुटाने की समस्या आप जब सुलझाएँगे, तब सुलझेगी। अभी तो आपने साथी चंद्रशेखर आजाद को सुरक्षापूर्वक ठहराने की समस्या सुलझा दी।''

और सचमुच ही कुछ दिन बाद चंद्रशेखर आजाद कानपुर पहुँच गए और उन्हें राधामोहन गोकुलजी के साथ ठहरा दिया गया। राधामोहनजी का मकान उस क्षेत्र में था, जहाँ मजदूर लोग रहा करते थे। उन्हीं लोगों की बस्ती में एक मकान का ऊपर का भाग राधामोहनजी ने ले रखा था।

राधामोहन गोकुलजी साधुवेशधारी क्रांतिकारी थे। यह ठीक है कि वे वृद्ध हो चुके थे; पर उनका दिल जवान था और उनकी सभी बातें क्रांतिकारी स्तर की हुआ करती थीं। कुछ दिन वे कलकत्ता में भी रहे थे और प्रसिद्ध क्रांतिकारी ज्योतींद्रनाथ मुखर्जी के साथ भी कुछ दिन काम किया था। कलकत्ता में हथियारों की अंग्रेजी फर्म 'रोडा एंड कंपनी' द्वारा मँगाए गए हथियारों में से एक गाड़ी भरकर हथियार जो वहाँ के क्रांतिकारियों ने लूटे थे, उसमें राधामोहन गोकुलजी का भी हाथ था।

कानपुर में रहते हुए राधामोहन गोकुलजी ने एक बहुत अच्छा काम यह किया था कि काकोरी कांड के पश्चात् क्रांतिकारियों में जो रिक्तता पैदा हो गई थी, उसकी पूर्ति उन्होंने की और बिखरे हुए क्रांति सूत्रों को जोड़ने में चंद्रशेखर आजाद की सहायता की।

क्रांतिकारियों की समस्याओं का हल निकालने के लिए राधामोहन गोकुलजी हमेशा तैयार रहते थे। एक बार सुरेंद्रनाथ पांडेय उनके पास पहुँचे और बोले कि कुछ हथियारों की आवश्यकता है। राधामोहनजी ने कहा कि चलो मेरे साथ। वे उन्हें आगरा ले गए। आगरा में कुछ ऐसे व्यक्तियों के साथ उनका परिचय करा दिया, जिन्होंने क्रांतिकारियों की कई तरह से सेवा की। आगरा से वे पांडेयजी को जयपुर और अजमेर तथा फिर इंदौर ले गए। इंदौर में उनका परिचय अपने मित्र नाथूलालजी अग्रवाल से करा दिया। इसी क्रम में उनका परिचय श्री बृजनारायण हक्सर से हुआ। हक्सर साहब ने पांडेयजी का परिचय कुछ रजवाड़ों से करा दिया, जहाँ से उन्हें हथियार मिलते रहे। इंदौर क्रांति का अच्छा केंद्र बन गया।

राधामोहन गोकुलजी पक्के समाजवादी थे। उन्होंने कई पुस्तकें लिखीं, जिनमें 'कम्यूनिज्म क्या है' नाम की पुस्तक बहुत चर्चित हुई।

यद्यपि राधामोहनजी कानूनी गिरफ्त में नहीं आ रहे थे, पर कानपुर की पुलिस ने उन्हें किसी-न-किसी प्रकार फाँसकर सन् १९३० में दो वर्ष की सजा दिला ही दी।

अपने जीवन के अंतिम दिनों में राधामोहन गोकुलजी हमीरपुर के निकट 'खोही' ग्राम में रहकर क्रांति संपादन करते रहे। वहीं उनकी मृत्यु सन् १९३५ में हुई। श्री राधामोहन गोकुलजी का जन्म सन् १८६५ में भदरी राज्य के अंतर्गत गोपालगंज में हुआ था। उनके पिता का नाम गोकुलचंद्र था।

राधामोहन गोकुलजी जीवन के हर क्षेत्र में क्रांतिकारी थे। उनका चिंतन बहुत ही मौलिक था। कानपुर उस समय क्रांति का गढ़ था और उस समय के सभी क्रांतिकारियों ने समाजवाद की प्रेरणा राधामोहन गोकुलजी से ही ली।

□

★ रामचंद्र मुत्सद्दी ★ श्रीदेवी मुत्सद्दी



रामचंद्र मुत्सद्दी



श्रीदेवी मुत्सद्दी

कानपुर में आर्यसमाज भवन के निकट एक दोमंजिले मकान में रामचंद्र मुत्सद्दी रहते थे। उनकी पत्नी श्रीदेवी मुत्सद्दी बहुत ही उदार और स्नेहिल प्रकृति की महिला थीं।

जब रामचंद्र मुत्सद्दी का प्रथम परिचय चंद्रशेखर आजाद से हुआ तो वे आग्रह कर बैठे—

''इस घर को अपना ही घर समझिए और यहाँ आकर हमें कृतार्थ करते रहिए।''

आजाद ने हँसते हुए उत्तर दिया—

''बाबूजी, ऐसा आग्रह मत कीजिए। यदि हम लोग यहाँ आते-जाते रहे तो फिर आते-जाते ही रहेंगे और आप हम लोगों के आवागमन से तंग आ जाएँगे। हमें प्रश्रय देने में आपको बहुत भारी खतरा भी तो है।''

इस बार आजाद की बात का उत्तर दिया रामचंद्र की पत्नी श्रीदेवी ने—

''देखिए आजाद भैया, जब आप लोग गोलियों और फाँसियों की चिंता न करते हुए भी अपने जीवन को निरंतर संकट में डाले हुए हैं तो फिर आपके कारण यदि थोड़ा-बहुत संकट हम पर भी आ गया तो हम मिट्टी या मोम के बने हुए तो नहीं हैं। मैं कहती हूँ कि जब भी जरूरत पड़े, आप और आपके साथी यहाँ अवश्य आएँ और जो दाल-दलिया हम जुटा सकें, उसे स्वीकार करने में संकोच न करें।''

आजाद ने देख लिया कि मुत्सद्दी दंपती का आग्रह औपचारिक नहीं है। वे और उनके कई साथी उस परिवार में प्रश्रय के साथ-साथ स्नेह और सहयोग पाते रहे। जब क्रांतिकारिणी दुर्गा भाभी और सुशीला दीदी ने फरारी जीवन प्रारंभ किया तो मुत्सद्दी परिवार उनके लिए बहुत सुरक्षित स्थान सिद्ध हुआ।

एक बार चंद्रशेखर आजाद मुत्सद्दी परिवार में टिके हुए थे। वह रक्षा-बंधन का दिन और सुबह का समय था। आजाद ने अपनी धोती को पंचे की तरह पहन रखा था और ऊपर खाली बनियान पहने हुए थे। श्रीमती मुत्सद्दी राखी का थाल सजाकर अपने किसी भाई को राखी बाँधने जाने की तैयारी में थीं। पास में ही एक परात में काफी लड्डू रखे हुए थे। वे जाने का उपक्रम कर ही रही थीं कि नीचे किसीने जीने का दरवाजा बड़ी जोर-जोर से खटखटाया। आजाद फौरन समझ गए कि दरवाजा डंडे से खटखटाया जा रहा है और खटखटानेवाला कोई पुलिस का आदमी होना चाहिए। उन्होंने लपककर अपना पिस्टल धोती की आँट में खोंस लिया और श्रीमती मुत्सद्दी को दरवाजा खोलने का संकेत किया। श्रीमती मुत्सद्दी ने दरवाजा खोला तो पाया कि सचमुच एक पुलिस इंस्पेक्टर है। उसकी कमर के सहारे एक पिस्टल लटका हुआ था। उसने श्रीमती मुत्सद्दी से कहा—

''ऊपर चलिए, आपसे कुछ बात करनी है।''

उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही वह तेज कदमों से जीना चढ़ गया। उसके पीछे-पीछे श्रीमती मुत्सद्दी भी ऊपर पहुँचीं। पुलिस इंस्पेक्टर को देखते ही आजाद ने दोनों हाथ जोड़कर इस तरह 'राम-राम' किया जैसे कोई घरेलू नौकर करता है। पुलिस इंस्पेक्टर ने श्रीमती मुत्सद्दी से कहा—

''मुत्सद्दीजी को समझा दीजिए कि वे कांग्रेस के कामों में बढ़-चढ़कर भाग न लें। आजकल गिरफ्तारियों का दौर चल रहा है। मैं आप लोगों का शुभचिंतक हूँ, इसलिए यह कहने आया हूँ।''

इतना कहकर पुलिस इंस्पेक्टर मकान में इधर-उधर नजरें दौड़ाकर जाने का उपक्रम करने लगा। श्रीमती मुत्सद्दी बोलीं—

''अरे भैया, जाने की इतनी जल्दी क्या है! अपने भाई के घर राखी बाँधने जा रही थी। देखिए न, थाल ले जाने के लिए यह नौकर भी खड़ा है। जब आप आ गए हैं तो पहली राखी तो आपकी कलाई में ही बाँधूँगी।''

उन्होंने पुलिस इंस्पेक्टर की कलाई में राखी बाँधते हुए आजाद की ओर देखकर कहा—

''अरे रामू! वहाँ इतनी दूर बुद्धू जैसा क्यों खड़ा है? मिठाई का थाल मेरे पास ला। मैं भैया के रूमाल में लड्डू बाँध दूँ। फिर तू थाल लेकर मेरे साथ चल।''

'रामू' नामधारी आजाद ने थाल श्रीमती मुत्सद्दी की तरफ सरका दिया। उन्होंने चार लड्डू इंस्पेक्टर साहब के रूमाल में बाँध दिए। रामू थाल उठाता हुआ बोला—

"चलिए मालकिन, मैं आपके साथ चलने के लिए तैयार हूँ।"

वे लोग चलें, इसके पहले पुलिस इंस्पेक्टर खट-खट करता हुआ जीने से नीचे उतर गया। श्रीमती मुत्सद्दी की सूझबूझ ने आजाद को खतरे से बचा लिया।

स्थिति को सँभालने में श्रीमती मुत्सद्दी सचमुच ही बहुत कुशल थीं। एक बार आजाद के कई साथी उनके मकान में आ टिके। इतने लोगों को खाना बनाना सुविधा का काम नहीं था। उन्हें कष्ट से बचाने के लिए आजाद ने प्रस्ताव रखा कि केवल खिचड़ी बना ली जाए। जब सदस्य अधिक हो जाते थे तो केवल खिचड़ी ही बनती थी। एक बड़ी परात में खिचड़ी डालकर सब लोग परात के आसपास बैठ जाते थे और अपनी-अपनी चम्मच से उस एक थाल में से ही सब लोग खाने लगते थे। उस दिन सदस्यों की संख्या कुछ अधिक हो गई थी। पीतल की एक बड़ी बालटी में खिचड़ी पकाई जा रही थी। उसी समय मुत्सद्दीजी के एक मित्र वहाँ पहुँच गए। आजाद और उनके साथी लोग रसोईघर के एक कोने में दुबक रहे। आगंतुक की दृष्टि रसोईघर की तरफ गई और चूल्हे पर बालटी रखी हुई देखकर उन्होंने पूछा—

"भाभी, इस बालटी में क्या पक रहा है?"

श्रीमती मुत्सद्दी ने मजाक करते हुए कहा—

"बालटी में खीर पक रही है।"

अब तो उन सज्जन के मुँह में पानी आ गया। वे बालटी देखने के लिए रसोईघर की तरफ जाने लगे। शीघ्र ही श्रीमती मुत्सद्दी उन्हें टोकती हुई बोलीं— "अरे! उधर मत जाना, भैया! हमारी भाभीजी जो आई हैं, वे बहुत छुआछूत मानती हैं। आप यदि चौके में चले गए तो वे बहुत बुरा मानेंगी और संभव है कि वे उस बालटी की खीर फेंक दें।"

इतनी तगड़ी चेतावनी सुनकर उन मित्र ने रसोईघर में जाने का इरादा छोड़ दिया।

एक बार आजाद श्रीमती मुत्सद्दी के घर टिके हुए थे। बंबई के गवर्नर पर गोली चलाने के लिए दुर्गा भाभी गई हुई थीं। उनके साथ विश्वनाथ वैशंपायन, सुखदेवराज और पृथ्वीसिंह थे। कुछ परामर्श लेने के लिए वैशंपायन को आजाद के पास कानपुर भेजा। वैशंपायन कानपुर पहुँचे तो उन्हें हैजा हो गया। आजाद बहुत चिंतित हो उठे। वे श्रीमती मुत्सद्दी थीं, जिन्होंने डॉक्टरों को बुलवाकर वैशंपायन

का इलाज कराया और कई दिन तक उनकी सेवा करती रहीं। क्रांतिकारियों को प्रश्रय देने के उपलक्ष्य में पुलिस ने श्री रामचंद्र मुत्सद्दी और श्रीमती श्रीदेवी मुत्सद्दी को बहुत तंग किया। वह संकट उनका स्वयं का मोल लिया हुआ था, इसलिए उस संकट में भी उनको आनंद मिला।

□

★ मास्टर रुद्रनारायण



मास्टर रुद्रनारायण

उस दिन जब मास्टर रुद्रनारायण के घर चंद्रशेखर आजाद ने अपना दंड-बैठकों का नियमित व्यायाम समाप्त करके मुग्दर जोड़ी उठाई तो मास्टर साहब बोल उठे—

''पंडितजी, अभी तक मैंने आपका कोई फोटो नहीं खींचा है। अगर अनुमति दें तो मैं आज आपका एक फोटो खींच लूँ?''

आजाद ने आश्चर्य के साथ मास्टर साहब की ओर देखा और बोले—

''खुद एक क्रांतिकारी होकर आप एक क्रांतिकारी का फोटो लेने की बात कह रहे हैं। आप तो जानते ही हैं कि क्रांतिकारी लोग अपना फोटो इसलिए नहीं खिंचवाते, क्योंकि उनका फोटो यदि पुलिस के हाथ लग जाए तो वह उनकी गिरफ्तारी के लिए शिनाख्तगी का काम करता है।''

मास्टर साहब ने कहा—

''यह बात तो मुझे मालूम है, पंडितजी। मैं तो आपका फोटो इसलिए लेना चाहता हूँ कि समय आने पर दुनिया यह जान सके कि जिस क्रांतिकारी के लिए पुलिस नदियों में जाल, गुफाओं में बाँस और कुओं में काँटे डालती फिरती है, उसकी शक्ल-सूरत कैसी थी। यदि आपका कोई चित्र नहीं होगा तो लोग आपकी शक्ल की कल्पना कैसे करेंगे?''

मास्टर रुद्रनारायण के तर्क के आगे अपने हथियार डालते हुए आजाद ने कहा—

"अच्छा मास्टर साहब! आप नहीं मानते तो ले लीजिए मेरा फोटो; पर शर्त यह है कि आप मेरा फोटो और निगेटिव प्लेट—दोनों ही किसी दीवार में चुन दें और उन्हें तभी निकालें, जब मैं इस दुनिया में न रहूँ।"

मास्टर रुद्रनारायण ने अपना कैमरा ठीक किया। उस समय आजाद कमर पर केवल एक चादर लपेटे हुए थे। उनका ऊपर का बदन खुला हुआ था। मुग्दर जोड़ी उनके पास रखी थी। वे मास्टर साहब से बोले—

"मास्टर साहब! मुझे अपनी मूँछों पर बट दे लेने दीजिए। जब मेरी मूँछें नुकीली हो जाएँ, तब फोटो खींचिए।"

यह कहकर आजाद अपनी मूँछों पर बट देने लगे। मास्टर साहब ने इसे बहुत अच्छा पोज समझा और कैमरा क्लिक कर दिया। आजाद कहते ही रहे—

"मास्टर साहब! आपने 'सावधान' तो बोला ही नहीं, फिर मेरा पोज कैसे ले लिया?"

मास्टर साहब अपना कैमरा अंदर रखकर लौटे ही थे कि 'क्या मैं अंदर आ सकता हूँ?' कहते हुए और अनुमति की प्रतीक्षा किए बिना ही हवलदार कम्मोदसिंह बाहर की बैठक में प्रविष्ट हो गया। यह उसकी आदत थी। वह मास्टर साहब के यहाँ आने-जानेवालों पर निगरानी रखने के लिए तैनात था। मास्टर रुद्रनारायण असहयोग आंदोलन में जेल काट चुके थे और झाँसी की पुलिस को संदेह था कि उनके घर क्रांतिकारी लोग आते-जाते रहते हैं।

कम्मोदसिंह ने मास्टर साहब को संबोधित करते हुए और आजाद की ओर देखते हुए कहा—

"मास्टर साहब! कल आपके पं. हरीशंकरजी एस.पी. साहब को मोटर चलाने की परीक्षा दे आए और अव्वल नंबर से पास हो गए।"

मास्टर साहब ने पूछा—

"क्या उस समय तुम वहाँ मौजूद थे?"

"हाँ, मास्टर साहब! हमारे एस.पी. साहब ने मुझे उसी गाड़ी में बिठा लिया था, जिसको पंडितजी चला रहे थे। साहब ने इनको कई बार फाँसने की कोशिश की; पर ये एक बार भी उनके जाल में नहीं फँसे और हमेशा सही चाल चली। चलते वक्त साहब ने इन्हें खूब शाबाशी दी और इनसे हाथ भी मिलाया।"

"यह तो बहुत अच्छी बात हुई। अब इन्हें ड्राइवर की नौकरी मिल जाएगी और रोजी-रोटी की समस्या हल हो जाएगी।"

"इनकी समस्या तो हल हो जाएगी, मास्टर साहब, पर मेरी समस्या कैसे हल होगी?"

''तुम्हारी क्या समस्या है, हेड साहब?''

''आप तो जानते ही हैं, मास्टर साहब, कि मेरी ड्यूटी आपके यहाँ लगी हुई है। ये मेरे लिए खुश्की के दिन हैं। जब हम लोग फील्ड में होते हैं तो हमें कुछ चरने-चुगने को मिल जाता है। आपके मकान के बाहर बैठा-बैठा तो मैं हवा फाँकता रहता हूँ। आपके मकान का घेरा डाले रहने से कोई क्रांतिकारी भी यहाँ नहीं फटकता। यदि कोई फरार क्रांतिकारी हाथ लग जाता तो कुछ इनाम तो मिल जाता।''

''किसी क्रांतिकारी को पकड़कर तुम उतना इनाम नहीं पा सकते, जितना किसी डाकू को पकड़कर पा सकते हो।''

''नहीं, मास्टर साहब, आजकल तो सरकार ने क्रांतिकारी चंद्रशेखर आजाद को पकड़ने के लिए भारी इनाम घोषित कर रखा है। कहीं आजाद मेरे हाथ लग जाए तो मेरी तकदीर खुल जाए।''

''देखो, हेड साहब, सफलता मिलना तो सचमुच ही भाग्य की बात है। कभी-कभी आँखों के सामने और हाथ में आई हुई चीज को भी हम नहीं अपना पाते तथा कभी-कभी अंधे के हाथ भी बटेर लग जाती है। तुम कोशिश करते रहो, शायद चंद्रशेखर आजाद तुम्हारे हाथ लग जाए।''

''हाँ, यह बात आपने ठीक कही मास्टर साहब! लेकिन आजाद को मैं पकड़ूँगा कैसे? उसका हुलिया ही तो हमार यहाँ दर्ज है। फोटो तो उसका कोई है नहीं। अगर फोटो होता तो पकड़ने में आसानी होती।''

''तो ऐसा करो, हेड साहब, तुम चंद्रशेखर आजाद को पकड़ लेना और मैं उसका फोटो खींच लूँगा।''

''हाँ, यह ठीक है, मास्टर साहब!''

''क्या ठीक है, हेड साहब! आपका दिमाग तो ठीक है या नहीं? पहले आप चंद्रशेखर आजाद को पकड़ेंगे और फिर उसका फोटो खिंचवाएँगे?'' यह प्रश्न किया स्वयं चंद्रशेखर आजाद ने। हेड साहब अपनी गलती समझकर झेंप गए। बात पलटते हुए वे आजाद से बोले—

''भैया हरीशंकर! तुम ड्राइवरी की परीक्षा में पास हो ही गए हो। थोड़े दिन में तुम्हारा लाइसेंस बन जाएगा। लाइसेंस मिल जाने पर मिठाई खिलाओगे या नहीं?''

''मैं तो मिठाई जरूर खिलाऊँगा, हेड साहब, पर आप यह बताइए कि जब आप चंद्रशेखर आजाद को पकड़ लेंगे, तब आप मिठाई खिलाएँगे या नहीं?''

''अरे भैया, तुम तो ऐसी बातें करते हो जैसे वह मेरे हाथों में आने के

लिए ही बैठा हो। जिसको सारे हिंदुस्तान की पुलिस खोज रही हो, भला वह मेरे हाथ लगेगा? चलो छोड़ो भैया, इन बातों को। कहीं ऐसा न हो कि सत्तू की हांडी फूट जाए!''

आजाद और मास्टर रुद्रनारायण से कुछ गपशप लड़ाकर हवलदार कम्मोदसिंह अपनी ड्यूटी पूरी करने के लिए बाहर चबूतरे पर जा बैठा। उसके जाने के बाद मास्टर साहब और आजाद ने सार्थक मुसकान से एक-दूसरे की तरफ देखा।

मास्टर रुद्रनारायण के घर चंद्रशेखर आजाद स्थायी रूप से तो नहीं रह रहे थे, हाँ, प्रतिदिन उनका आना-जाना वहाँ था। वे मास्टर साहब के अखाड़े में नित्य व्यायाम करते थे। कभी-कभी मास्टर साहब उनसे भोजन करने का आग्रह भी करते थे। आजाद कभी-कभी उनके आग्रह को पूरा भी कर देते थे और उनके रसोईघर में बैठकर भोजन करते थे। मास्टर साहब के वृद्ध पिता को यह बात अच्छी नहीं लगती थी कि बाहर का आदमी चौके-चूल्हे तक जा पहुँचे और बहू-बेटियों से बात करे। उन्होंने एक दिन अपने पुत्र को समझाया भी; लेकिन जब मास्टर साहब ने असलियत उनके सामने रख दी तो उनके पिता के व्यवहार में बहुत परिवर्तन आ गया और वे भी आजाद को स्नेह व संरक्षण देने लगे।

मास्टर रुद्रनारायण और चंद्रशेखर आजाद का प्रथम परिचय सन् १९२५ में काकोरी ट्रेन डकैती के पूर्व उस समय हुआ, जब क्रांतिकारियों की एक बैठक में सम्मिलित होने के लिए मास्टर साहब शाहजहाँपुर पहुँचे। स्टेशन पर उन्हें लेने गए शचींद्रनाथ बख्शी एक अपरिचित की भाँति कुछ फासले पर आगे-आगे चल रहे थे और एक ऐसे ग्रामीण का स्वाँग बनाए हुए थे, जिसे बुखार चढ़ा हो और जो अपने शरीर से रजाई लपेटे हो। मास्टर रुद्रनारायण पीछे-पीछे काफी फासला रखे हुए जा रहे थे। क्रांतिकारियों की मीटिंग शाहजहाँपुर नगर से बाहर एक नवाब की निर्जन कोठी में आयोजित थी, जिसके सामने के भाग में ताला पड़ा हुआ था और पिछले भाग से वे लोग कोठी के अंदर पहुँच गए थे। सुबह का धुँधलका था। मास्टर रुद्रनारायण कँटीले तारों के ऊपर आ गिरे और उनके शरीर के कई स्थानों से रक्त निकलने लगा। जब मीटिंग प्रारंभ हुई तो क्रांतिकारियों ने उनके जख्मों की तरफ विशेष ध्यान नहीं दिया। मास्टर साहब ने देखा कि एक व्यक्ति चुपके से उठकर चला गया और कुछ देर बाद मरहम-पट्टी के सामान के साथ लौटा। उस युवक ने अपनी पूरी सहृदयता के साथ मास्टर साहब के जख्मों की मरहम-पट्टी की। जिसने मरहम-पट्टी की थी, उस युवक का नाम चंद्रशेखर आजाद था। उसके मानवीय रूप को मास्टर साहब ने बहुत सराहा।

काकोरी कांड के पश्चात् अन्य क्रांतिकारी तो पकड़े गए, पर चंद्रशेखर

आजाद पुलिस के हाथ नहीं लगे। वे सीधे झाँसी पहुँचे और बुंदेलखंड मोटर कंपनी में मोटर सुधारने तथा चलाने का काम सीखने लगे। झाँसी में मास्टर रुद्रनारायण से उनका परिचय था ही। उनके परिवार में उनको बहुत स्नेह, सहयोग और संरक्षण मिला। चंद्रशेखर आजाद मास्टर रुद्रनारायण की पत्नी के सगे देवर और उनकी पुत्री के सगे चाचा जैसे बन गए। जब कभी देवर-भाभी में झगड़ा होता तो संधि कराने के लिए मास्टर रुद्रनारायण को बीच में पड़ना पड़ता। चंद्रशेखर आजाद एक शर्त लगा देते—

''संधि तभी होगी, जब भाभी कढ़ी-चावल बनाकर खिलाएँगी।''

कढ़ी-चावल की दावत से देवर-भाभी का झगड़ा समाप्त हो जाता और परिवार की सरसता फिर से स्नेह-सिंचन करने लगती।

जब झाँसी में पुलिस की सरगर्मी बढ़ने लगी, तब आजाद ओरछा राज्य में सातार नदी के किनारे ब्रह्मचारी के रूप में रहने लगे। मास्टर रुद्रनारायण वहाँ पहुँचकर भी उनसे मिल आते थे और उन्हें देश की राजनीतिक गतिविधियों से परिचित कराते रहते थे। झाँसी उस समय क्रांतिकारियों का केंद्र बन गया था और उस केंद्र के सूत्र मास्टर रुद्रनारायण के हाथों में थे। कोई भी क्रांतिकारी, जो आजाद से मिलने वहाँ पहुँचता, वह मास्टर रुद्रनारायण से ही निर्देश पाता था।

जब चंद्रशेखर आजाद ने अपने साथी भगतसिंह और राजगुरु के साथ मिलकर लाहौर में लाला लाजपतराय के हत्यारे सहायक पुलिस सुपरिंटेंडेंट जे.पी. सांडर्स को गोलियों से उड़ा दिया और जब वे इतना बड़ा कांड करके झाँसी पहुँचे तो मास्टर रुद्रनारायण ने लपककर उनके पैर छू लिये। आजाद ने डपटते हुए मास्टर साहब से कहा, ''मास्टर साहब! यह आप क्या करते हैं?''

मास्टर साहब ने उत्तर दिया—

''मैंने अपने छोटे भाई आजाद के पैर नहीं छुए, मैंने तो दाँव पर लगे हुए भारतीय सम्मान की रक्षा करनेवाले और हमारे लोकप्रिय नेता के हत्यारे को मृत्युदंड देनेवाले महापुरुष चंद्रशेखर आजाद के पैर छुए हैं।''

आजाद भुनभुनाकर रह गए। वे यह भी नहीं पूछ सकते थे कि आपको कैसे मालूम कि सांडर्स को मारने में मेरा हाथ है। वे मास्टर साहब की तीक्ष्ण बुद्धि से परिचित थे।

झाँसी छोड़कर चंद्रशेखर आजाद को कानपुर पहुँचना पड़ा। उनके एक साथी विश्वनाथ वैशंपायन उनके साथ थे। एक दिन आजाद ने उनसे कहा—

''वैशंपायन! एक काम मुझसे गलत हो गया है। मास्टर रुद्रनारायणजी ने मेरे दो चित्र खींच लिये हैं। एक चित्र मूँछों पर बट देते हुए है और दूसरा चित्र उनके

परिवार के साथ है। मैं उस समय उनसे मना नहीं कर सका; पर इस समय अनुभव कर रहा हूँ कि वह काम गलत हो गया। तुम मास्टर साहब के पास जाओ और मेरे चित्रों की जितनी भी प्रतियाँ एवं निगेटिव हों, उन सबको नष्ट करके आओ।''

अपने साथी आजाद का कहना मान वैशंपायन झाँसी पहुँच गए और मास्टर साहब को पूरी बात कह सुनाई। मास्टर रुद्रनारायण सुनकर कुछ गंभीर हो गए और बोले—

''देखो वैशंपायन! मैं आजाद के विचारों से पूर्णरूप से सहमत हूँ। हम सब लोग यह अच्छी तरह जानते हैं कि आजाद जैसा महान् क्रांतिकारी मिलना मुश्किल है। हम यह भी जानते हैं कि अंत तो सभी का होता है। जब आजाद हमारे बीच नहीं होंगे तो दुनिया उनके स्वरूप की कल्पना करेगी। कोई उन्हें डाकू जैसा चित्रित करेगा और कोई राक्षस जैसा। उन्हें यह कैसे मालूम होगा कि हम जैसी ही सूरत-शक्लवाला आदमी कितने महान् कार्य कर गया। क्या तुम मेरी बात से सहमत नहीं हो कि आजाद के चित्र सुरक्षित रहने चाहिए?''

मास्टर साहब की बात सुनकर वैशंपायन ने उत्तर दिया—

''मैं आपके विचारों से पूर्णरूप से सहमत हूँ, मास्टर साहब! समस्या यह है कि आजाद के आदेश का उल्लंघन कैसे किया जाए?''

मास्टर रुद्रनारायण ने प्रस्ताव रखा—

''आजाद स्वयं कह गए थे कि मेरे चित्र और निगेटिव दीवार में चुन देना। हम लोग ऐसा करें कि उनके चित्रों की जितनी प्रतियाँ हैं, वे सब तुम अपने हाथ से फाड़ दो और जो दो निगेटिव हैं, उन्हें मैं दीवार में चुन देता हूँ। जब आजाद नहीं रहेंगे, तब उन निगेटिव की सहायता से हम जितने चित्र चाहेंगे, तैयार कर सकेंगे। तुम जाकर कह देना कि मैं अपने हाथ से आपके सभी चित्र नष्ट कर आया हूँ।''

वैशंपायन इस प्रस्ताव से सहमत हो गए और उन्होंने अपने हाथ से आजाद के चित्रों की सभी प्रतियाँ फाड़कर जला दीं। उन्होंने दोनों निगेटिव प्रतियों का भी केवल उतना कोना तोड़ दिया, जहाँ चित्र नहीं था। बाद में आजाद के पास पहुँचकर उन्होंने धड़ल्ले के साथ कह दिया कि मैं अपने हाथ से आपके चित्र फाड़कर और निगेटिव तोड़कर आया हूँ।

मास्टर रुद्रनारायण की दूरदर्शिता बहुत काम आई। एक दिन लोगों को यह सुनने को मिला कि इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में २७ फरवरी, १९३१ को चंद्रशेखर आजाद पुलिस से लड़ते-लड़ते शहीद हो गए। बात सभी के लिए बहुत सदमे की थी। उस समय आजाद के शव का चित्र भी लिया गया था; पर उस चित्र को नाटबाबर अपने साथ इंग्लैंड ले गया। जिन साथियों ने आजाद को देखा था,

उनके मन में तो उनका चित्र था; पर वे दुनिया को क्या दिखाते। वैशंपायन स्वयं गिरफ्तार हो चुके थे और जेल की हवा खा रहे थे। उस समय मास्टर रुद्रनारायण ने दीवार तोड़कर आजाद के चित्र की निगेटिव प्रतियाँ निकालीं और चित्र तैयार करके समाचार-पत्रों में छपवाए कि ऐसे थे 'हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र सेना' के कमांडर इन चीफ। यद्यपि इस कार्य के उपलक्ष्य में मास्टर रुद्रनारायण को कष्ट झेलने पड़े; पर उनके कारण आजाद के स्मृति-चिह्न तो हमारे पास हैं।

मास्टर रुद्रनारायण ने आजाद के लिए और भी बहुत कुछ किया। जब आजाद की शहादत के बाद उनकी पूज्य माताजी श्रीमती जगरानी देवी निराश्रित होकर भूखों मरने लगीं और जब आजाद के साथी श्री सदाशिवराव मलकापुरकर उनको लिवाने आजाद की जन्मस्थली भाबरा पहुँचे तो मास्टर रुद्रनारायण भी उनके साथ गए और वहाँ के कई चित्र उन्होंने लिये।

झाँसी के साथियों ने आजाद की माताजी को अपने यहाँ बहुत आराम के साथ रखा। जब आजाद की माताजी का देहावसान झाँसी में हुआ तो मास्टर रुद्रनारायण ने माताजी के चेहरे का एक साँचा बना लिया। उनके चित्र और साँचे की सहायता से उन्होंने आजाद की माताजी की एक हू-ब-हू मूर्ति बना डाली। वे आजाद की भी एक मूर्ति बनाना चाहते थे; लेकिन ऐसा सोचते-सोचते वे इस दुनिया से चले गए। उनकी बनाई हुई महारानी लक्ष्मीबाई की मूर्ति उनकी उत्कृष्ट मूर्तिकला का परिचय अब भी लोगों को देती रहती है।

मास्टर रुद्रनारायण बहुत अच्छे अध्यापक, संगीतकार, चित्रकार, मूर्तिकार और बहुत पहुँचे हुए क्रांतिकारी थे।

□



★ लेखराम

यशपाल के सामने समस्या यह थी कि दिल्ली और लाहौर छोड़कर कोई ऐसा स्थान चुनना चाहिए, जहाँ बम बनाने का कारखाना प्रारंभ किया जा सके। इस समस्या से जुड़ी हुई समस्या यह भी थी कि कोई ऐसा व्यक्ति मिलना चाहिए, जो इस जोखिम के काम में सहायक और भरोसेमंद सिद्ध हो सके। उन्होंने अपने क्रांतिकारी साथी भगवतीचरण के सामने अपनी समस्या रखी। भगवतीचरण ने तुरंत ही इस समस्या का हल खोज निकाला। उन्होंने कहा—

''रोहतक में लेखराम नाम का मेरा एक मित्र है। उसने लाहौर के आयुर्वैदिक कॉलेज से वैद्यक की परीक्षा पास की है और इस समय वह रोहतक में वैद्य के धंधे में काफी प्रतिष्ठित हो चुका है। मेरा विश्वास है कि वह हमारा साथ देने के लिए तैयार हो जाएगा।''

यशपाल ने अपनी शंका रखते हुए पूछा—

''क्या आपने परख लिया है कि लेखराम हमारे गोपनीय काम में अंत तक साथ दे सकेगा?''

भगवतीचरण का उत्तर था—

''लेखराम के विचारों से मैं भलीभाँति परिचित हूँ। उसके दिल में काफी गहराई है और वह किसी भी स्थिति में विचलित नहीं होगा।''

यशपाल ने भगवतीचरण की बात मान ली और तय हो गया कि वैद्य लेखराम के सहयोग से रोहतक में बमों के काम आनेवाला मसाला तैयार करने का कारखाना खोल दिया जाए। मसाला बनाने के काम में आनेवाली सामग्री थोड़ी-थोड़ी करके अलग-अलग स्थानों से खरीदी गई, जिससे किसीको संदेह न हो। सामग्री खरीद चुकने पर भगवतीचरण एक दिन रोहतक चले गए और वैद्य लेखराम को अपने साथ दिल्ली लिवा लाए। भगवतीचरण ने दिल्ली में एक मकान किराए पर ले रखा था और स्वयं को ठाकुर जाति के एक पुलिस अफसर

का रिश्तेदार बता रखा था।

वैद्य लेखराम से जब यशपाल की भेंट हुई तो यशपाल उसके व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना न रह सका। वैद्य लेखराम लंबे-चौड़े डील-डौल और गौर वर्ण का व्यक्ति था। उसके बदन पर महीन धोती और रेशमी कुरता बहुत फब रहा था। तय हुआ कि वैद्यजी रोहतक में यह घोषित करेंगे कि वे स्वर्ण-भस्म और मूँगा-भस्म आदि फूँकने का काम प्रारंभ करने वाले हैं और यशपाल को वे अपना नौकर बताएँगे। वैसे उन्हें संदेह हुआ कि यशपाल नौकर के रूप में जँचेंगे या नहीं; क्योंकि वे सूट-बूट और टाई-कॉलर में रहनेवाले व्यक्ति थे।

कुछ दिन के अंतराल से वैद्य लेखराम यशपाल को लेने दिल्ली पहुँच गए। उन्होंने देखा कि यशपाल ने अपना हुलिया बदल लिया है। हजामत न बनाने के कारण उनके चेहरे पर दाढ़ी बढ़ गई थी और तितलीनुमा मूँछों के स्थान पर वे लंबी मूँछें रखने लगे थे। वैद्यजी अपने साथ यशपाल के लिए एक मैली-सी धोती, गाढ़े का कुरता और हरियाणा के जाटों के पहनावे की एक हरे रंग की पगड़ी साथ ले गए थे। जब यशपाल ने वे कपड़े पहने तो वैद्यजी को कहना पड़ा—

''अब तो तुम पूरे हरियानवी नौकर की तरह जँचने लगे।''

यशपाल ने ठेठ दिल्ली की भाँति हरियानवी बोली बोलकर भी दिखा दी। उनका नाम 'किसना' तय हो गया।

रोहतक में लेखराम का औषधालय बीच बाजार में था। उसका मकान अलग था। इन दोनों से अलग एक कच्चा मकान किराए पर लिया गया, जिसके विषय में यह घोषित किया कि उसमें लोहे, पारे, सोने-चाँदी और मूँगे की भस्म तैयार की जाएगी। वास्तव में वहाँ बमों का मसाला तैयार किया जाना था।

यशपाल ने 'किसना' नाम से वैद्य लेखराम के नौकर का काम सँभाल लिया। वैद्यजी यशपाल से लोगों के सामने वे सभी काम कराते थे, जो एक नौकर से कराए जाते हैं। अकेले में मिलने पर दोनों एक-दूसरे से साथियों जैसा व्यवहार करते थे।

जिस मकान में बमों का मसाला तैयार किया जाता था, उस मोहल्ले में एक दिन पुलिस की सरगर्मी देखी गई। अंदाजा लगाया गया कि शायद पुलिस को बम के कारखाने का सुराग मिल गया है। सामान इधर-उधर करके यशपाल और लेखराम भाग खड़े हुए। लेखराम की पत्नी बहुत चिंतित हो गईं कि उनका पति कहाँ चला गया। दो दिन बाद लेखराम को मालूम पड़ा कि पुलिस किसी अन्य व्यक्ति को गिरफ्तार करने उस मोहल्ले में पहुँची थी। कारखाने में बम का मसाला तैयार करने का काम फिर से प्रारंभ कर दिया गया। लेखराम अपने औषधालय की

सारी आय कारखाने के लिए दे रहा था। उसकी पत्नी को शक हुआ कि वह किसीके चक्कर में तो नहीं फँस गया है।

रोहतक के कारखाने में बमों का काफी मसाला तैयार कर लिया गया और वह बमों में भरने के लिए विभिन्न केंद्रों पर भेज दिया गया। यह मसाला उन बमों में भी भरा गया, जो वाइसराय लॉर्ड इरविन की ट्रेन को उड़ाने के लिए पटरियों के नीचे रखे गए थे।

इस बीच चंद्रशेखर आजाद ने दिल्ली के गाडोदिया स्टोर पर धावा बोलने की योजना बना डाली। भरोसे का आदमी होने के कारण उसमें लेखराम को भी सम्मिलित किया गया। लेखराम को मोटर चलाना सिखा दिया गया था। पूरी पार्टी एक कार में बैठकर गई। घटनास्थल से कुछ दूर स्टार्ट हालत में कार खड़ी रखी गई। काम हो जाने पर आजाद और साथी उस कार में बैठकर हिंदू कॉलेज के होस्टल पहुँच गए। अभियान सफल रहा और कोई पकड़ा भी नहीं गया। वैसे चंद्रशेखर आजाद स्वयं भी बहुत अच्छे ड्राइवर थे, पर उस दिन अच्छी कार चलाने के लिए उन्होंने साथी लेखराम की बहुत पीठ ठोकी।

बाद में गिरफ्तार होने पर जब लेखराम को जेल की हवा खानी पड़ी तो उसका कहना था कि इस पुरस्कार के बिना जीवन का आनंद अधूरा रहता।

□



★ वजीरचंद

पंजाब की नौजवान भारत सभा विद्रोही युवकों का ही एक संगठन था, जो सरदार भगतसिंह और उनके साथियों द्वारा इसलिए खड़ा किया गया था, जिससे क्रांतिकारियों को आवश्यकता के समय विश्वसनीय सदस्य मिलते रहें। वह एक खुला संगठन था, जो गोपनीय रूप से क्रांतिकारियों की सभी प्रकार से सहायता करता रहता था।

जब लाहौर षड्यंत्र केस के अंतर्गत भगतसिंह और उनके साथी क्रांतिकारियों को जेल में बंद कर दिया गया और उनको भयंकर यातनाएँ दी जाने लगीं तो नौजवान भारत सभा के सदस्यों पर भी इसकी प्रतिक्रिया हुई। उसका एक सदस्य वजीरचंद पुलिस से इन अत्याचारों का बदला लेने की योजना बनाने लगा।

वजीरचंद को यह धुन सवार हुई कि वह बम बनाए और पुलिसवालों से बदला ले। बगैर किसीसे सीखे गए, अपने मामूली ज्ञान के आधार पर ही वह बम बनाने के काम में जुट गया।

एक दिन २६ मई, १९३० को लोगों ने उसके मकान में बड़े जोरों का धमाका सुना और यह देखने के लिए वे दौड़ पड़े कि क्या हुआ? लोगों ने देखा कि वजीरचंद के दोनों हाथ उड़ गए हैं और वह खून से लथपथ बेहोश पड़ा है।

घटना की सूचना पाकर पुलिस भी वहाँ पहुँच गई। घायल वजीरचंद को अस्पताल में भरती किया गया और उसकी इतनी गंभीर घायल अवस्था में भी, इस भय से कि वह कहीं भाग न जाए, पाँच सशस्त्र सिपाही उसके पलंग के पास खड़े किए गए।

वजीरचंद भी किसीसे कम नहीं था। इतने कड़े पहरे की अवहेलना करके वह २७ मई, १९३० की सुबह इस प्रकार चला गया कि पुलिस के हाथ उसका निर्जीव शव ही लगा।

□

★ विजयकुमार सिन्हा


विजयकुमार सिन्हा

दिल्ली के फिरोजशाह कोटला किले के खंडहरों में क्रांतिकारियों की गोपनीय बैठक चल रही थी। यह बैठक ८ सितंबर, १९२८ को आयोजित की गई थी; लेकिन आमंत्रित सभी सदस्यों के न पहुँचने के कारण बैठक ९ सितंबर को संपन्न हुई। इस बैठक में सरदार भगतसिंह, सुखदेव, विजयकुमार सिन्हा, शिव वर्मा, सुरेंद्रनाथ पांडेय, ब्रह्मदत्त मिश्र, कुंदनलाल गुप्त, जयदेव कपूर, फणींद्र घोष तथा मनमोहन बनर्जी उपस्थित थे। आँखों में कष्ट होने के कारण चंद्रशेखर आजाद नहीं पहुँच सके थे; लेकिन उन्होंने संदेश भिजवा दिया था कि वे पार्टी के सभी निर्णयों को मान्य करेंगे। बैठक का संचालन करते हुए भगतसिंह ने सभी साथियों का परिचय देते हुए बताया कि कौन कहाँ से आया है। इसके पश्चात् उन्होंने विजयकुमार सिन्हा से क्रांतिकारी आंदोलन की वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डालने के लिए निवेदन किया। साथी विजयकुमार सिन्हा ने अपने विचार रखते हुए कहा—

"देश के क्रांतिकारी आंदोलन में काकोरी कांड के पश्चात् एक मोड़ उपस्थित हुआ है। आज जिस जगह हम खड़े हैं, वहाँ से स्पष्ट देख सकते हैं कि तय किया हुआ रास्ता किस प्रकार का था, हम किस स्थिति में हैं और हमें किस तरफ चलना है। अपना रास्ता तय करने के लिए हमें काकोरी कांड से भी कुछ सीखना पड़ेगा और आजादी के आंदोलन को कांग्रेस जिस प्रकार चला रही है, उसकी समीक्षा भी करनी पड़ेगी। काकोरी कांड से तो हमें यह शिक्षा लेनी है कि हमारी पार्टी किसी एक प्रांत की पार्टी न रहकर उसे अखिल भारतीय रूप ग्रहण करना चाहिए और सत्ता का विकेंद्रीकरण करना चाहिए। सत्ता के विकेंद्रीकरण से मेरा तात्पर्य यह है कि सारे अधिकार किसी एक व्यक्ति को न देकर हमें एक ऐसी समिति का निर्माण करना चाहिए, जो महत्त्वपूर्ण कार्यों में अपने निर्णय से हमें दिशा निर्देशन दे। अब रहा कांग्रेस के कार्यों की समीक्षा का, तो इस विषय में मैं इतना ही कहना चाहूँगा कि कांग्रेस के सामने देश की आजादी का स्पष्ट नक्शा नहीं है और

वह 'स्वराज्य' शब्द को लेकर जनता को गुमराह कर रही है। जनता स्वराज्य का अर्थ समझती है—अपने देश में अपना राज्य और इसके विपरीत कांग्रेस स्वराज्य का सार स्वीकार करने के लिए लालायित है। मैं पूछता हूँ कि कांग्रेस जिस ज़न-बल के सहारे अपने आंदोलन को संचालित कर रही है, वह उसे स्वराज्य का सही अर्थ क्यों नहीं बताती? आज आर्थिक क्षेत्र में स्थिति यह है कि किसान लोग जमींदारों और साहूकारों द्वारा शोषित हो रहे हैं। दूसरी ओर श्रमिक लोग भी मिल मालिकों के शोषण के शिकार होकर हड़तालें कर रहे हैं और एक कांग्रेस है, जो किसानों एवं मजदूरों के असंतोष को मुक्ति संग्राम के लिए प्रयुक्त नहीं कर पा रही। अत: स्वाधीनता देने का दायित्व हम क्रांतिकारियों पर आ पड़ा है। मेरा निवेदन है कि जो कुछ मैंने कहा है, उसके प्रकाश में साथी लोग अपने विचार रखें और तदनुरूप निर्णय लें।''

विजयकुमार सिन्हा के इस विद्वत्तापूर्ण वक्तव्य ने सभी क्रांतिकारियों को प्रभावित किया। विशेष रूप से उनके द्वारा प्रस्तुत भूमिका साथी भगतसिंह, शिव वर्मा और जयदेव कपूर को बहुत पसंद आई।

पार्टी में विजयकुमार सिन्हा का प्रवेश कानपुर से हुआ था। उनके बड़े भाई राजकुमार सिन्हा काकोरी षड्यंत्र केस में दंडित होकर सीखचों के अंदर थे। जिन दिनों लखनऊ में काकोरी केस चल रहा था, उन दिनों विजयकुमार सिन्हा कई समाचार-पत्रों के यशस्वी संपादक थे और उन पत्रों में इस कांड के समाचार भेजते रहते थे। गणेशशंकर विद्यार्थी से उनके अच्छे संबंध थे। एक सफल पत्रकार के नाते उनकी आय भी बहुत अच्छी थी और अपने व्यक्तिगत खर्च के लिए थोड़ा-सा भाग रखकर शेष धन वे पार्टी के कामों में लगा देते थे।

काकोरी कांड के पश्चात् जब साथी कुंदनलाल गुप्त चंद्रशेखर आजाद का अज्ञातवास समाप्त कराकर उन्हें कानपुर लाए थे तो विजयकुमार सिन्हा आजाद की आँखों में चढ़ गए थे। दिल्ली में संपन्न हुई क्रांतिकारियों की बैठक के निर्णयानुसार विजयकुमार सिन्हा का दर्जा और भी ऊँचा हो गया। उन्हें तथा भगतसिंह को विभिन्न प्रांतों के क्रांतिकारियों में तालमेल स्थापित करने का दायित्व दिया गया था।

दिल्ली की मीटिंग में ही क्रांतिकारियों ने यह निर्णय ले लिया था कि साइमन कमीशन का विरोध किया जाए। लाहौर में कमीशन का विरोध किया गया। विरोध प्रदर्शन में लाला लाजपतराय लाठियों से घायल हुए और वे बच न सके। क्रांतिकारियों की केंद्रीय समिति ने लाला लाजपतराय के खून का बदला लेने का फैसला किया। चंद्रशेखर आजाद ने मोरचाबंदी की। वे जानते थे कि

कौन साथी किस काम में उपयोगी हो सकता है। इस एक्शन के लिए उन्होंने जिन साथियों को चुना, उनमें थे—सुखदेव, भगतसिंह, राजगुरु, जयगोपाल, भगवानदास माहौर और विजयकुमार सिन्हा। पहले मोरचे पर उन्होंने भगतसिंह एवं राजगुरु को लगाया, दूसरा मोरचा उन्होंने स्वयं सँभाला और तीसरे मोरचे पर उन्होंने अड़ाया भगवानदास माहौर एवं विजयकुमार सिन्हा को। वे हर मोरचे पर यदि अच्छा निशाना लगानेवाले और मरने-मारनेवालों को सम्मिलित करते थे तो अच्छा परामर्श देनेवालों को भी अवश्य साथ रखते थे। विजयकुमार सिन्हा की गिनती दूसरी कोटि में होती थी।

सांडर्स का वध करके सभी साथी पुलिस की आँखों में धूल झोंककर सुरक्षित स्थानों पर चले गए। दुर्गा भाभी के साथ भगतसिंह कलकत्ता पहुँच चुके थे। कुछ दिनों पश्चात् विजयकुमार सिन्हा भी वहाँ पहुँच गए। बंगाल के साथी यतींद्रनाथ दास इन लोगों को बम बनाने का प्रशिक्षण देने के लिए सहमत हो गए। निश्चय हुआ कि वे आगरा पहुँचकर साथियों को बम निर्माण का प्रशिक्षण देंगे। कुछ रासायनिक पदार्थ कलकत्ता से खरीदे गए। बम का मसाला बनाने का पहला प्रशिक्षण उन्होंने कलकत्ता में ही दिया। उस प्रशिक्षण में जो लोग सम्मिलित हुए, उनमें विजयकुमार सिन्हा भी एक थे।

कलकत्ता के प्रशिक्षण शिविर के पश्चात् दूसरा व्यापक आयोजन हुआ आगरा में। वहाँ अधिक क्रांतिकारियों को बुलाया गया था, इस कारण चंद्रशेखर आजाद द्वारा वहाँ अलग-अलग मोहल्लों में दो मकान किराए पर लिये गए। बम निर्माण के इस प्रशिक्षण शिविर में विजयकुमार सिन्हा ने अच्छी भूमिका अदा की। सब लोगों के एकत्र हो जाने के कारण आपस की छेड़छाड़ भी मनोरंजन का अच्छा साधन बन जाती थी। एक प्रसंग प्रस्तुत है—

एक रात साथी विजयकुमार सिन्हा लालटेन की रोशनी में एक पुस्तक पढ़ने में तल्लीन थे। दूसरे कमरे में साथी जयदेव कपूर एक एयर पिस्टल से एक चूहे का शिकार करने की घात लगाए हुए थे। उन्होंने एक स्थान पर कुछ भुने हुए चने डाल रखे थे और कुछ दूरी पर एयर पिस्टल की गोली दागने की तैयारी में बैठे थे। चूहा अँधेरे का लाभ उठाकर चने का दाना लेकर भाग जाता था और अच्छी तरह न दिखने के कारण जयदेव कपूर गोली नहीं दाग पा रहे थे। अपनी सुविधा के लिए उन्होंने लालटेन उठाकर उस कमरे में रख दी, जिसमें चने के दाने पड़े हुए थे। लालटेन उठाए जाने पर विजयकुमार सिन्हा उखड़ गए—

"अजीब अहमक हो! देख नहीं रहे कि मैं पढ़ रहा हूँ और आप हैं, जो लालटेन उठाकर चल दिए।"

जयदेव कपूर ने समझाते हुए कहा—

"क्यों बिगड़ रहे हैं, भाईजान! जरा चूहा मार लूँ। आपकी लालटेन जहाँ से उठाई है, वहीं रख दूँगा।"

विजयकुमार सिन्हा को इस उत्तर से संतोष नहीं हुआ। बोले—

"पुस्तक समाप्त होने में कुछ पृष्ठ रह गए हैं। यह पुस्तक पढ़कर सुबह इसका सारांश मुझे आजाद भैया को सुनाना है। मैं पुस्तक समाप्त कर लूँ, उसके बाद तुम लालटेन ले जाना और चूहा मारते रहना।"

डाँटने की बारी थी अब जयदेव कपूर की। बोले—

"अजीब अहमक हो! जब आप पुस्तक पूरी पढ़कर लालटेन मुझे देंगे, तब तक क्या वह चूहा मरने के लिए वहाँ बैठा रहेगा! जनाब मुझे भैया आजाद की धौंस दे रहे हैं। मैं भी तो कहता हूँ, निशानेबाजी का अभ्यास करने के लिए भी तो भैया आजाद ने ही कहा है। सही निशाना लगने की रिपोर्ट जब उन्हें दूँगा तो वे कितने खुश होंगे!"

विजयकुमार का दो-टूक उत्तर था—

"मैं पुस्तक समाप्त किए बिना लालटेन तुमको नहीं दूँगा। तुम भैया से मेरी शिकायत कर देना।"

यह निर्णय सुनकर जयदेव कपूर नाराज होते हुए बोले—

"अच्छा, इस पुस्तक के साथ लालटेन को भी चाट लेना। मैं तो अपना बिस्तर लेकर नीचे चला। तुम जैसे झगड़ालू आदमियों के साथ सोने की अपेक्षा मैं नीचे किसी दुकान के पटिए पर सर्दी में सोना अधिक पसंद करूँगा।"

इस झगड़े को देखनेवाले वहाँ दो साथी और थे। एक थे बटुकेश्वर दत्त और दूसरे थे विश्वनाथ वैशंपायन। झगड़ा बढ़ते देख बटुकेश्वर दत्त ने कहा—

"क्या बच्चों जैसा झगड़ा कर रहे हैं आप लोग भी। मेरा तो कहना है कि आप दोनों ही अपना-अपना काम छोड़कर सो जाइए। रात भी बढ़ती जा रही है और ठंड भी।"

दोनों में से कोई भी झुकने को तैयार नहीं था। जयदेव कपूर एक दरी और तकिया लेकर जीने से नीचे उतर गए। उनके जाने पर विजयकुमार सिन्हा ने जीने के किवाड़ अंदर से बंद कर लिये और बोले—

"मैं तुम दोनों से कहे देता हूँ कि वह साला बड़ा अकड़कर गया है, अगर वह आए तो तुममें से कोई भी किवाड़ मत खोलना। सर्दी से ठिठुरता हुआ अभी पाँच मिनट में ही ऊपर आने वाला है।"

वैशंपायन ने कहा—

"अरे विजय बाबू! आप दरवाजा खुला छोड़ दीजिए। झगड़ा बढ़ाने से क्या लाभ!"

विजयकुमार सिन्हा ने उनकी बात नहीं मानी। थोड़ी देर तक तो पढ़ने का अभिनय किया, पर साथी की चिंता सताने लगी। जब पुस्तक पढ़ने में मन नहीं लगा तो प्रस्ताव रख दिया—

"चलो ताश खेलकर ही समय निकाला जाए।"

बटुकेश्वर दत्त ने चुटकी ली—

"मैं खूब समझ रहा हूँ। मन-ही-मन साथी की चिंता सता रही है और नाटक कर रहे हैं पुस्तक पढ़ने या ताश खेलने का। मैं कहता हूँ, सो क्यों नहीं जाते?"

जयदेव के चले जाने से सभी को अच्छा नहीं लग रहा था। नींद भी सभी की उड़ गई थी। समय निकालने के लिए ताश खेलना प्रारंभ कर दिया गया। ताश फेंटते-फेंटते विजयकुमार सिन्हा ने ऊपरी मन से वैशंपायन से फिर कहा—

"देखना, साले जयदेव के लिए दरवाजा मत खोलना। अब आए भी तो अंदर नहीं आने देंगे।"

कहने को तो यह कह दिया, लेकिन अपने कान वे दरवाजे की तरफ ही लगाए हुए थे और जयदेव के आने की आहट टटोल रहे थे। ताश सभी खेल रहे थे, लेकिन मन किसीका नहीं लग रहा था। थोड़ी देर ताश खेलने के बाद सब लोग लेट गए। नींद भी किसीको नहीं आ रही थी। मन शंकित था कि कहीं जयदेव पुलिस के हाथों न पकड़ा जाए। क्रांतिकारियों पर कब कौन-सी मुसीबत आ जाए, कोई ठिकाना नहीं था।

लगभग एक घंटे पश्चात् किसीके जीने पर चढ़ने की आहट सुनाई दी। फिर दरवाजा भी खटखटाया गया। सब लोगों ने मुक्ति की साँस ली। उठनेवालों में विजयकुमार ही पहले व्यक्ति थे। फिर भी अपनी अकड़ दिखाते हुए बोले—

"वैशंपायन! साले जयदेव के लिए दरवाजा मत खोलना। बाहर गया था बड़ी ठसक से।"

इसपर बटुकेश्वर दत्त ने बुजुर्गाना गंभीरता के स्वर में विजयकुमार को झिड़कते हुए कहा—"क्या बच्चों जैसी बातें करते हो! खोलने दो दरवाजा।"

यह कहकर उन्होंने स्वयं दरवाजा खोल दिया। बगल में दरी और तकिया दबाए हुए सामने जयदेव कपूर खड़े मुसकरा रहे थे। जब वे अंदर आ गए तो विजय भी नकली घुड़की लगाते हुए बोले—

"बड़े गए थे बाहर सोने। अब चले क्यों आए?"

जयदेव ने दरी एक ओर फेंककर और विजयकुमार के बगलगीर होकर कहा—

"मैं बाहर सोया तो रहता, पर तेरा साला वो—वो पुलिसवाला जो आ धमका। मैंने तो सामने की दुकान पर सोने का इंतजाम कर ही लिया था। उस पुलिसवाले ने आकर जगाया और एक शरीफ आदमी को सोता देख…"

जयदेव कुछ आगे कहें, इसके पहले ही विजयकुमार ने उसे बीच में टोकते हुए कहा—

"तुझे उसने शरीफ आदमी समझा। अरे जा-जा, उसने तुझे चोर-उचक्का ही समझा होगा। इसीलिए तो उसने तुझे उठाकर भगा दिया।"

अपनी बात को पूरा करने के उद्देश्य से जयदेव कपूर ने कहा—

"मैंने उस पुलिसवाले से कहा कि ऊपर घर में मेहमान ज्यादा आ गए हैं, इसीलिए मैं यहाँ आकर सो रहा। इसपर उस पुलिसवाले ने कहा कि 'बाबू, अगर किसी दुकान का ताला टूट गया तो आप मुसीबत में फँस जाएँगे।' उसकी यह बात सुनकर यहाँ आने के सिवा और कोई चारा नहीं था।"

अपना वक्तव्य पूरा करके जब जयदेव विजयकुमार के बिस्तर पर लेटने लगा तो विजय बाबू ने कहा—

"अब जाकर वह चूहा मार न?"

जयदेव ने गर्व प्रदर्शन के लहजे में कहा—

"छोड़ो उस चूहे को। अब किसी दिन कोई शेर मारेंगे। पर यार, इस समय नींद नहीं आ रही। उठो, सब लोग ताश खेलें।"

जयदेव की बात मान ली गई। सब लोग ताश खेलने बैठे। नकली झगड़ा समाप्त हो गया था। ताश के खेल में विजयकुमार सिन्हा एवं जयदेव कपूर जोड़ीदार बने और बहुत देर तक ताश खेलते रहे। जब नींद ने हमला किया तो विजयकुमार और जयदेव एक ही रजाई में दुबककर सो गए।

आगरा में रहते हुए एक दिन यह निश्चित हुआ कि काकोरी कांड में सजा पाए हुए साथी योगेशचंद्र चटर्जी को जेल से छुड़ाया जाए। उस समय योगेशचंद्र फतहगढ़ जेल में थे और शीघ्र ही उनका स्थानांतरण आगरा जेल में होने वाला था। भगतसिंह का प्रस्ताव था कि इस जेल-परिवर्तन के क्रम में ही कभी अवसर पाकर योगेश दा को छुड़ा लिया जाए। विजयकुमार सिन्हा ने प्रस्ताव रखा कि पहले हममें से कोई साथी योगेश दा का रिश्तेदार बनकर फतहगढ़ जेल में उनसे भेंट करके संभावनाओं का पता लगाए। विजयकुमार सिन्हा का यह प्रस्ताव मान लिया गया और स्वयं उन्हें तथा शिव वर्मा को यह दायित्व दिया गया कि वे फतहगढ़ जेल

पहुँचकर योगेश दा से भेंट करके आगे की योजना तैयार करें।

ये दोनों साथी फतहगढ़ जेल पहुँचें, इसके पहले उस जेल में योगेशचंद्र चटर्जी से संबंधित एक घटना हो गई थी। उस जेल के एक वार्डर को योगेशचंद्र ने पटा रखा था। उस वार्डर के प्रतिद्वंद्वी दूसरे वार्डर ने जेलर से शिकायत कर दी कि उस वार्डर ने योगेशचंद्र चटर्जी के पास एक पिस्तौल पहुँचाई है। तलाशी में वह पिस्तौल तो नहीं निकली, पर योगेशचंद्र और उनके सहायक वार्डर पर नजर रखी जाने लगी। इसी समय विजयकुमार सिन्हा और शिव वर्मा ने योगेशचंद्र चटर्जी से भेंट करने का आवेदन-पत्र दे दिया।

परिणाम यह निकला कि फतहगढ़ जेल के अधिकारियों ने विजयकुमार और शिव वर्मा के पीछे खुफिया पुलिस लगा दी। योगेश बाबू से भेंट भी नहीं हुई और पुलिस अलग पीछे पड़ गई। ये लोग भागकर फतहगढ़ रेलवे स्टेशन पर पहुँचे और कानपुर के टिकट खरीद लिये गए। खुफिया पुलिस ने टिकट बाबू से मिलकर इनके गंतव्य और टिकट नंबर नोट कर लिये। जिस डिब्बे में ये लोग बैठे, उस डिब्बे में कुछ सिपाही भी बैठ गए। इन्होंने समझा कि बीच के किसी स्टेशन पर हम लोग गिरफ्तार कर लिये जाएँगे। जब इनकी गाड़ी जलालाबाद स्टेशन पर रुककर कुछ आगे बढ़ी तो शिव वर्मा चलती ट्रेन से कूद गए। उनके पीछे एक सिपाही भी ट्रेन से कूदा। शिव वर्मा तो सोच-समझकर पूरी सावधानी के साथ चलती ट्रेन से कूदे थे, इस कारण उनको चोट नहीं लगी; लेकिन पुलिसवाला तो हड़बड़ी में कूदा था, इस कारण वह चोटें खा गया। जलालाबाद के अगले स्टेशन पर विजयकुमार भी ट्रेन से कूद गए; पर उनका किसीने पीछा नहीं किया। दोनों ही किसी प्रकार कानपुर पहुँच गए। उन्होंने देखा कि उनके पहुँचने के साथ ही पीछा करनेवाली पुलिस कानपुर पहुँच चुकी है। यह इसलिए संभव हुआ, क्योंकि पुलिस ने उनके गंतव्य मालूम कर लिये थे। उस समय तो वे लोग पुलिस को चकमा देकर बच गए, पर उसके पश्चात् उन्हें फरारी जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य होना पड़ा। योगेशचंद्र चटर्जी को जेल से छुड़ाने की योजना क्रियान्वित नहीं हो सकी।

घटनाक्रम के अंतर्गत दिल्ली असेंबली में बम विस्फोट करके भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने अपनी गिरफ्तारियाँ दे दीं। कुछ क्रांतिकारी पकड़े गए और उनमें से कुछ कच्चे निकल गए। वे पुलिस के मुखबिर बन गए। परिणाम यह हुआ कि लगभग सभी क्रांतिकारी गिरफ्तार कर लिये गए और उन्हें लाहौर जेल में रखकर उनपर 'द्वितीय लाहौर षड्यंत्र केस' चलाया गया। इस केस के अंतर्गत क्रांतिकारियों ने लंबी भूख हड़ताल की, जिसमें तिरसठ दिन के अनशन के पश्चात् साथी यतींद्रनाथ दास शहीद हो गए। जब यतींद्रनाथ दास जीवन की अंतिम घड़ियाँ गिन रहे थे तो उन्होंने

साथियों से कुछ गाने के लिए कहा। विजयकुमार सिन्हा ने उस समय कवींद्र रवींद्र का प्रसिद्ध गीत 'एकला चलो रे' बड़े करुणापूर्ण स्वर में गाया था। उस गीत को सुनते-सुनते ही यतींद्रनाथ दास ने अपनी अंतिम साँस ली थी।

जेल के अधिकारियों द्वारा वचन भंग करने पर एक दूसरे चक्र की भूख हड़ताल में भी विजयकुमार सिन्हा ने दमखम के साथ भाग लिया था।

जब ७ अक्तूबर, १९३० को लाहौर षड्यंत्र केस का फैसला सुनाया गया तो विजयकुमार सिन्हा को आजीवन कालापानी की सजा घोषित की गई।

□

★ विश्वंभरदयाल


विश्वंभरदयाल

उज्जैन के भारती भवन में पं. सूर्यनारायण व्यास के साथ एक क्रांतिकारी आकर ठहर गया। उसका नाम विश्वंभरदयाल था। चंद्रशेखर आजाद ने दिल्ली में बहुत ही सफलतापूर्वक गाडोदिया स्टोर पर छापा मारकर वहाँ से लगभग चौदह हजार रुपए लूटे और उसमें से कुछ पैसा विश्वंभरदयाल को देकर उसे हथियार खरीदने के लिए राजस्थान भेजा। विश्वंभरदयाल ने लंबा सफर एक साथ करना उचित न समझकर छोटी-छोटी यात्राएँ कीं। कुछ दिन वह उज्जैन आकर रहा।

पुलिस को किसी तरह यह सुराग लग गया कि विश्वंभरदयाल उज्जैन में पं. सूर्यनारायण व्यास के यहाँ ठहरा हुआ है। अपनी अत्यधिक ईमानदारी के कारण विश्वंभरदयाल से एक गलती हो गई। जब उसके पास का सब पैसा समाप्त हो गया तो हथियारों की खरीद के लिए रखी राशि में से उसने कुछ भी नहीं निकाला और अपने एक रिश्तेदार से पं. सूर्यनारायण व्यास के मार्फत एक मनीऑर्डर मँगवाया। पुलिस के आदमी नागरिक वेश में पोस्टमैन के पीछे-पीछे चले गए। मनीऑर्डर प्राप्त करने के पश्चात् विश्वंभरदयाल भारती भवन के अंदर न जाकर कहीं बाजार की ओर चल दिया। पुलिस के आदमी उसके पीछे हो लिये। अपने पीछे कुछ

आदमियों को आता देखकर विश्वंभरदयाल दौड़ते-दौड़ते मोटर स्टैंड पहुँचा और आगरा की ओर जा रही एक बस में बैठ गया। पुलिसवालों ने मोटर साइकिल पर बैठकर बस का पीछा किया। मोटर साइकिल आगे निकल गई। उधर से दो बैलगाड़ियाँ आ रही थीं। पुलिसवालों ने गाड़ियों को सड़क पर इस तरह खड़ा कर दिया, जिससे मोटर न निकल सके। इस प्रकार आगरा जानेवाली मोटर रोक ली गई और उसमें बैठे विश्वंभरदयाल को गिरफ्तार कर लिया गया। उसे दिल्ली षड्यंत्र केस में सम्मिलित करने के लिए दिल्ली भेज दिया गया।

विश्वंभरदयाल दिल्ली के गाडोदिया स्टोर में बाबू का काम करता था। चंद्रशेखर आजाद ने जानबूझकर उसे गाडोदिया स्टोर में नौकरी करने की प्रेरणा दी थी। विश्वंभरदयाल ने आजाद को बताया कि प्रतिदिन रात्रि को लगभग दस बजे रोकड़ सँभाली जाती है और उस समय लगभग बीस हजार रुपए हुआ करते हैं।

विश्वंभरदयाल की सूचना पर आजाद ने ३ जून, १९३० को गाडोदिया स्टोर पर धावा बोल दिया। विश्वंभरदयाल उस समय स्टोर में ही था। पिस्तौलें देखकर मुनीम ने रुपयों की थैलियाँ (उस समय नोटों का अधिक प्रचलन नहीं था) आजाद के सामने सरका दीं। तिजोरियाँ खोलकर उसने सोने के जेवर की थैलियाँ भी आजाद के सामने रख दीं। आजाद ने मुनीम से कहा—

"हम लोग क्रांतिकारी हैं, पेशेवर डाकू नहीं हैं; माँ-बहनों के जेवर हम लोग नहीं छुएँगे।"

आजाद और साथी रुपयों की तीन थैलियाँ ले गए। लगभग चौदह हजार रुपए उन थैलियों में निकले। लगभग पाँच सौ रुपयों की रेजगारी भी थी। वह यमुना नदी में फेंक दी गई।

आजाद ने विश्वंभरदयाल से फरार होने के लिए कह दिया और हथियार खरीदने के लिए पैसा देकर उसे राजस्थान भेज दिया। उज्जैन में विश्वंभरदयाल गिरफ्तार हो गया।

गाडोदिया स्टोर के मालिक सेठ लक्ष्मीनारायण ने पुलिस के सामने जों बयान दिया, उसमें उन्होंने यही बताया कि डाके में मेरा कोई नुकसान नहीं हुआ है। वह आजाद की उस बात से बहुत प्रभावित हुआ, जो उन्होंने मुनीम से कही थी—

'हम लोग क्रांतिकारी हैं, पेशेवर डाकू नहीं हैं; माँ-बहनों के जेवर हम लोग नहीं छुएँगे।'

उस मामले में पुलिस खीजकर रह गई और विश्वंभरदयाल को मुक्त कर दिया गया।

□

★ विश्वनाथ वैशंपायन

एक नौ-दस वर्ष का बालक अपने जेब खर्च के लिए दिए गए पैसे जमा करता रहा। उसके पास पाँच रुपए एकत्र हो गए, जो उसकी माँ के पास जमा थे। एक दिन एक तमंचा बेचनेवाला व्यक्ति आया। उसके पास नकली तमंचे थे; पर वे बिलकुल असली जैसे लगते थे। उनसे गोली भी निकलती थी और आवाज भी बहुत करते थे। एक तमंचा खरीदने के लिए उसका मन ललचा गया। माँ के पास जाकर उसने अपने पैसे माँगे। माँ किसी काम में बहुत व्यस्त थी। उसने पैसे दे तो दिए, पर झुँझलाहट में यह कह दिया—''मुझे अपना मुँह मत दिखाना।''



विश्वनाथ वैशंपायन

बालक विश्वनाथ पैसे लेकर चला गया और तमंचा खरीद लिया। वह तमंचा माँ को दिखाने घर की ओर लपका; लेकिन उसे खयाल आ गया कि माँ ने तो कहा था कि मुझे मुँह मत दिखाना। उसके जो पैर घर की तरफ मुड़े थे, वे स्टेशन की तरफ बढ़ गए। यार्ड में एक खाली गाड़ी खड़ी थी, उसमें वह सो गया। उसकी नींद तब खुली जब गाड़ी मथुरा पहुँच गई। उसकी परेशानी देख एक यात्री ने उसे झाँसी जानेवाली गाड़ी में बिठा दिया। झाँसी पहुँचकर भी वह अपने घर नहीं गया। एक पुलिया पर बैठ रहा। झाँसी में उसकी तलाश तो हो ही रही थी। वह घर तभी गया, जब माँ स्वयं उसको लिवाने आई।

बालक विश्वनाथ का जन्म २८ नवंबर, १९१० को बाँदा, उत्तर प्रदेश में हुआ था। पिता का तबादला होने पर वह झाँसी पहुँच गया और सरस्वती विद्यालय में पढ़ने लगा। इस विद्यालय में एक चित्रकला शिक्षक थे, जिनको लोग मास्टर रुद्रनारायण के नाम से पुकारते थे। मास्टर रुद्रनारायण का परिचय क्रांतिकारी शचींद्रनाथ बख्शी से था। एक बार शचींद्रनाथ बख्शी क्रांतिकारी दल में रंगरूटों की भरती के लिए जब झाँसी पहुँचे तो मास्टर रुद्रनारायण ने बख्शीजी को विश्वनाथ वैशंपायन से मिला दिया। उस समय विश्वनाथ वैशंपायन इंटर कॉलेज में पढ़ रहे थे। बख्शीजी ने उन्हें क्रांतिकारी दल में भरती कर लिया। झाँसी से जिन अन्य दो

युवकों को क्रांतिकारी दल में सम्मिलित किया गया, वे थे भगवानदास माहौर और सदाशिवराव मलकापुरकर। चंद्रशेखर आजाद जब काकोरी कांड के पश्चात् अज्ञातवास करने झाँसी पहुँचे तो झाँसी के इन तीन क्रांतिकारी युवकों से उनका परिचय हुआ। वे तीनों ही आजाद के बहुत विश्वासपात्र साथी बन गए।

विश्वनाथ वैशंपायन अपने क्रांतिकारी जीवन में चंद्रशेखर आजाद के ही साथ संलग्न रहे। वे एक प्रकार से आजाद के निजी सचिव और अंगरक्षक भी थे। आजाद ने उन्हें निशानेबाजी का अच्छा अभ्यास करा दिया था। जिन लोगों को बम बनाने का प्रशिक्षण दिया गया था, उनमें विश्वनाथ वैशंपायन भी एक थे।

चंद्रशेखर आजाद ने विश्वनाथ वैशंपायन को एक बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य दिया और वह यह कि वे लाहौर जाकर देखें कि लाहौर जेल से भगतसिंह को छुड़ाने की संभावनाएँ हैं या नहीं। उन दिनों भगतसिंह दिल्ली असेंबली में बम फेंककर अपनी गिरफ्तारी दे चुके थे और लाहौर षड्यंत्र केस में सम्मिलित करने के लिए उन्हें लाहौर भेज दिया गया था। विश्वनाथ वैशंपायन लाहौर पहुँचे और पंजाबी लिबास में रहकर जेल के चक्कर काटने लगे। उन्होंने सेंट्रल जेल में बंद भगतसिंह से संबंध भी स्थापित कर लिया।

विश्वनाथ वैशंपायन ने जो दूसरा अच्छा काम किया, वह यह कि क्रांतिकारी भगवतीचरण के प्रति पार्टी के लोगों को जो गलतफहमी पैदा हो गई थी, वह उन्होंने दूर करा दी और चंद्रशेखर आजाद को भगवतीचरण के रूप में एक बहुत ही विश्वासपात्र और योग्य साथी मिल गया। जब तक भगवतीचरण जीवित रहे, चंद्रशेखर आजाद उनसे पूछे बिना कोई कार्य नहीं करते थे। वैशंपायन ने जब आजाद को यह रिपोर्ट दी कि भगवतीचरण की सहायता से भगतसिंह को जेल से छुड़ाया जा सकता है, तो आजाद लाहौर पहुँच गए और भगतसिंह को जेल से छुड़ाने की योजना को कार्यान्वित करने में जुट गए।

इस योजना के अंतर्गत लाहौर में एक कोठी का आधा हिस्सा किराए पर ले लिया गया। उस कोठी में जो लोग रहते थे, वे थे—भगवतीचरण बोहरा, चंद्रशेखर आजाद, विश्वनाथ वैशंपायन, धनवंतरी, सुखदेवराज और यशपाल। महिलाओं में भगवतीचरण की पत्नी दुर्गा देवी और सुशीला दीदी वहाँ रहती थीं। छैलबिहारी एवं मदनगोपाल को उस परिवार के नौकर और खानसामा के रूप में रखा गया था। कार का ड्राइवर टहलराम भी था।

२८ मई, १९३० को दिन के लगभग ग्यारह बजे भगवतीचरण बोहरा, विश्वनाथ वैशंपायन और सुखदेवराज साइकिलों से रावी नदी की तरफ चले। बोट क्लब के पास उन लोगों ने अपनी साइकिलें छोड़ीं और एक नाव लेकर धारा के

सहारे आगे बढ़ गए। एक स्थान पर नाव बाँधकर वे लोग जंगल की तरफ बढ़े और एक उपयुक्त स्थान देखकर वहाँ साथ ले गए बम का परीक्षण करना चाहा। वैशंपायन और सुखदेवराज शिलाओं की ओट लेकर छिप गए। भगवतीचरण ने बम अपने हाथों में लिया और उसे फेंकना चाहा; लेकिन बम उनके हाथों में ही फट गया। भगवतीचरण मरणासन्न स्थिति में पहुँच गए। सुखदेवराज के पैर में बम का एक टुकड़ा लगा। साथियों को सूचना देने के लिए सुखदेवराज कोठी की तरफ चले और वैशंपायन घायल भगवतीचरण के पास रहे। साथ ले गए संतरे छील-छीलकर वे भगवती भाई के मुँह में बूँद-बूँद रस टपकाते रहे। कोठी से सहायता पहुँचे, इससे पहले ही भगवतीचरण का देहावसान हो गया। उनकी अंतिम इच्छा थी कि भगतसिंह को छुड़ाने का अभियान स्थगित न किया जाए।

अपने साथी की अंतिम इच्छा के अनुसार चंद्रशेखर आजाद एक लॉरी में बैठकर जेल तक जा पहुँचे। भगतसिंह को पहरे के साथ जेल से बाहर निकाला गया। पूर्व निश्चित योजना के अनुसार विश्वनाथ वैशंपायन ने बाँसुरी बजाई; लेकिन भगतसिंह ने अपनी ओर से कोई संकेत नहीं दिया। निराश होकर सब लोग वापस लौट आए। लाहौर की कोठी में विस्फोट हो जाने के कारण सभी ने वह कोठी छोड़ दी। इसके बाद लाहौर भी छोड़ दिया गया। चंद्रशेखर आजाद ने वैशंपायन को हथियार लाने जयपुर भेज दिया। बहुत सूझबूझ के साथ वैशंपायन जयपुर से हथियार लाने में सफल हो गए।

लाहौर अभियान की विफलता के पश्चात् चंद्रशेखर आजाद ने कानपुर और इलाहाबाद को अपना कार्यक्षेत्र बना लिया। एक बार उन्हें इलाहाबाद से ट्रेन द्वारा कानपुर पहुँचना था। वैशंपायन उनके साथ थे। सर्दी के दिन थे। दोनों ने लुधियाना की शॉल ओढ़ रखी थी। गाड़ी में देर थी। आजाद ने सुझाया कि हम लोगों ने कटरा में जो गरम कोट सिलाने डाल रखे हैं, उन्हें देखते चलें। वे दर्जी की दुकान पर पहुँचे। कोट सिलकर तैयार थे। दोनों ने कोट पहन लिये और शॉल पेटी में डाल दी। जब उनकी गाड़ी कानपुर पहुँची तो पुलिस का भारी जमघट देखा। इलाहाबाद से पुलिस ने सूचना दे दी थी कि चंद्रशेखर आजाद अपने एक साथी के साथ कानपुर की गाड़ी में बैठे हैं और दोनों ने लुधियाना की शॉलें ओढ़ रखी हैं। जब ट्रेन कानपुर पहुँची तो वहाँ भारी संख्या में तैनात पुलिस शॉल ओढ़े हुए व्यक्तियों को खोजने लगी। आजाद ने वैशंपायन से कहा—

''बच्चन, चालाकी से निकलने का प्रयत्न करो और पुलिस से लड़ना ही पड़े तो मेरी पीठ से पीठ भिड़ाकर युद्ध करना।''

दोनों के हाथ अपनी जेबों में पहुँच गए। आजाद ने अपनी पेटी एक कुली

को देकर उसे बाहर भेज दिया और फिर वे वैशंपायन को लेकर बाहर निकल गए। कोट पहनकर चलने की उनकी अंत:प्रेरणा काम कर गई।

चंद्रशेखर और वैशंपायन के बिछुड़ने का समय भी आ गया। वीरभद्र तिवारी और शिवचरणलाल ने योजना बनाकर वैशंपायन को पुलिस के हाथों गिरफ्तार करा दिया। यह घटना ११ फरवरी, १९३१ की है। २७ फरवरी को तो चंद्रशेखर आजाद भी शहीद हो गए।

विश्वनाथ वैशंपायन सन् १९३१ में कारागार से मुक्त हुए। आजाद ने उन्हें अपना परम विश्वासपात्र साथी समझा, यह विचार ही उनके शेष जीवन के लिए संबल बना रहा।

□

★ विश्वेश्वर


विश्वेश्वर

लाहौर नगर के सभी महाविद्यालयों के छात्रों ने मिलकर 'स्टूडेंट्स यूनियन' नाम की एक संस्था का निर्माण इसलिए कर डाला कि नौजवानों में राष्ट्रीय चेतना का प्रसार किया जा सके और इन चुने हुए नौजवानों में से कुछ को क्रांतिकारी पार्टी के 'हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र संघ' का सदस्य बनाया जा सके। 'स्टूडेंट्स यूनियन' का निर्माण प्रसिद्ध क्रांतिकारी भगवतीचरण बोहरा की प्रेरणा से हुआ था। उन दिनों सुखदेवराज को इसका महामंत्री चुना गया। विश्वेश्वर नाम के नौजवान का उत्साह देखते ही बनता था। सुखदेवराज और विश्वेश्वर की अच्छी जोड़ी जम गई।

रावी के किनारे परीक्षण के समय हाथ में ही बम फट जाने के कारण भगवतीचरण तो शहीद हो गए और सुखदेवराज पैर में बम का एक टुकड़ा घुस जाने के कारण घायल हो गया। पुलिस की सरगर्मी के कारण सुखदेवराज को लाहौर से अमृतसर पहुँचाया गया। साथी धनवंतरी ने उसके ठहरने की व्यवस्था प्रसिद्ध

आर्यसमाजी श्री आत्माराम के घर कर दी। एक डॉक्टर प्रतिदिन उसकी मरहम-पट्टी कर जाता था। साथी विश्वेश्वर को सुखदेवराज के नौकर के रूप में घोषित किया गया। विश्वेश्वर ने अपने घायल साथी की बहुत सेवा की। बाद में चंद्रशेखर आजाद ने विश्वेश्वर को अपने पास दिल्ली बुलवा लिया और गाडोदिया डकैती कांड में भाग लेकर विश्वेश्वर फिर लाहौर चला गया।

जब अमृतसर में पुलिस की सरगर्मी बढ़ने लगी तो सुखदेवराज को वहाँ से हटकर धर्मपुर जाना पड़ा। उसका साथ देने के लिए विश्वेश्वर, अमीर मेहरा, सर्वदयाल सूरी और हीरालाल थे। एक दिन सी.आई.डी. की दृष्टि सुखदेवराज पर पड़ गई। धर्मपुर से इन लोगों को भागना पड़ा। जिसको जो साधन मिला, वह धर्मपुर छोड़कर चल दिया। सभी साथियों का सामान एक कार द्वारा भेजा गया। कार में ड्राइवर के अतिरिक्त विश्वेश्वर भी था।

रास्ते में पुलिस ने क्रांतिकारियों को पकड़ने के लिए जाल बिछा रखा था। एक स्थान पर कार रोककर उसकी तलाशी ली। विश्वेश्वर का कद इतना छोटा था कि सीट के नीचे बैठकर उसने कुछ सामान अपने ऊपर रख लिया। पुलिसवालों ने कार के अंदर झाँककर भी देखा; लेकिन उन्हें यह संदेह नहीं हुआ कि इसके अंदर कोई आदमी भी छिपा बैठा है। इस प्रकार अपनी सूझबूझ से विश्वेश्वर गिरफ्तार होने से बच गया।

विश्वेश्वर बहुत ही फुरतीला युवक था। वह एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर और दूसरे से तीसरे पर बंदर की तरह कूद जाया करता था। उसकी फुरती को देखकर भगवतीचरण उसे 'बुलेट' (गोली) कहकर पुकारते थे। चंद्रशेखर आजाद भी उसे बहुत मानते थे। गुरदासपुर में खानबहादुर अब्दुल अजीज पर गोली चलाने की योजना क्रांतिकारियों ने बना डाली। खानबहादुर पर क्रांतिकारियों का आक्रोश इसलिए था, क्योंकि सरदार भगतसिंह के मामले की पड़ताल उन्होंने की थी। १ अक्तूबर, १९३० को धनवंतरी, विश्वेश्वर और टहलसिंह ने गोली कांड किया भी; पर खानबहादुर बच गया। ४ नवंबर, १९३० को पुलिस ने टहलसिंह और विश्वेश्वर को घेर लिया। उन दोनों के बीच केवल एक ही पिस्तौल थी। उस समय वह पिस्तौल टहलसिंह के पास थी। टहलसिंह ने मुकाबला किया। पर वह पकड़ लिया गया। उस समय विश्वेश्वर के पास केवल एक चाकू था। वह अपना चाकू खींचकर खड़ा हो गया। पुलिस ने चेतावनी दी—

''चाकू फेंक दो, वरना गोली मार दी जाएगी।''

विश्वेश्वर ने वीर दर्प के साथ उत्तर दिया—

''क्रांतिकारी लोग अपने हथियार नहीं फेंका करते।''

विश्वेश्वर ने सोचा कि इसके पहले कि पुलिस गोली मारे या जीवित गिरफ्तार करे, क्यों न किसीको चाकू के वार से खत्म किया जाए। यह सोचते ही वह चाकू लेकर पुलिस के ऊपर झपट बैठा। उसे झपटता हुआ देख एक पुलिसवाले ने उसपर गोली चला दी। गोली विश्वेश्वर के सीने में लगी और वह गिरकर शहीद हो गया। विश्वेश्वर की शहादत से दल को भारी क्षति पहुँची। □

★ वीरेंद्रनाथ पांडेय

सुरेंद्रनाथ पांडेय ने अपने छोटे भाई वीरेंद्रनाथ पांडेय को समझाते हुए कहा—



वीरेंद्रनाथ पांडेय

''कानपुर में पुलिस की सरगर्मी इतनी बढ़ गई है कि मुझे लगता है कि अब मुझे फरारी जीवन ही व्यतीत करना पड़ेगा। मेरी फरारी की दशा में तुम्हारे ऊपर कुछ जिम्मेदारियाँ आने वाली हैं। क्या तुमको उनका अंदाजा है?''

''हाँ, भैया, एक जिम्मेदारी का तो मुझे भान है और वह यह कि आपके चले जाने के बाद घर की देखरेख मुझको करनी पड़ेगी। जहाँ तक मुझसे बन पड़ेगा, मैं दायित्व का निर्वाह करूँगा।''

''एक जिम्मेदारी इससे भी बड़ी है, और वह है अपने क्रांतिकारी परिवार की देखरेख। तुम जानते ही हो कि बड़ी मेहनत से हम लोगों ने क्रांति संगठन खड़ा किया है। ऐसा न हो कि मेरे चले जाने के बाद वह संगठन बिखर जाए। क्या यह दायित्व भी तुम अपने ऊपर ले सकोगे?''

''मैं समझता हूँ कि शायद इतना प्रशिक्षण तो मैंने आपसे प्राप्त कर ही लिया है कि मैं इस संगठन को बनाए रख सकूँ। इस काम के लिए भी आप मुझपर विश्वास कर सकते हैं।''

''हाँ, तुम्हारी क्षमताओं पर मुझे पूरा भरोसा है। मैं एक और भी बहुत विश्वसनीय कार्य तुमको दे रहा हूँ। तुम्हें यहाँ से एक माउजर पिस्टल झाँसी ले

जाकर हमारी सेना के कमांडर इन चीफ चंद्रशेखर आजाद को देनी होगी। पिछली बार जब मेरी उनसे भेंट हुई तो मैंने देखा कि उनके पास अच्छे हथियार नहीं हैं।''

''इस दायित्व को पूर्ण करने में मुझे विशेष प्रसन्नता होगी; क्योंकि हमारे नेता आजाद से मिलने का सौभाग्य प्राप्त होगा।''

अपने भाई वीरेंद्रनाथ से आश्वासन पाकर सुरेंद्रनाथ पांडेय घर से फरार हो गए। वीरेंद्रनाथ ने अपने ऊपर आई हुई जिम्मेदारियों का बहुत योग्यता के साथ निर्वाह किया। वह दुर्भाग्यपूर्ण समय भी आया, जब युद्ध करते हुए कमांडर इन चीफ आजाद शहीद हो गए। यह सुनने को मिला कि पुलिस को आजाद की उपस्थिति की सूचना वीरभद्र तिवारी ने दी थी। वीरभद्र तिवारी को दंडित करने की योजना बनानेवाले साथियों को सही-सलामत निकालने का दायित्व भी वीरेंद्रनाथ पांडेय ने अपने ऊपर लिया।

वीरेंद्रनाथ पांडेय को अपनी योग्यता का पुरस्कार दस वर्ष की सजा के रूप में मिला। यह पुरस्कार पाते हुए उन्हें बहुत हर्ष हुआ।

□



★ शंकरराव मलकापुरकर



शंकरराव मलकापुरकर

उस नौजवान की रेलवे विभाग में लगी हुई नौकरी छूटी, अपनी आजीविका चलाने के लिए उसने दर्जी का काम करना प्रारंभ किया तो वह दुकान भी चौपट कर दी गई और जिस छप्पर के नीचे वह अपना सिर छिपाकर रह लेता था, वह छप्पर भी उससे छिन गया। उसके बहनोई ने उसका हाथ पकड़कर उसको सड़क पर खड़ा कर दिया। आखिर उसका अपराध क्या था? युवक शंकरराव मलकापुरकर का अपराध यही था कि वह क्रांतिकारियों के मध्य सेतु का काम करता था। चंद्रशेखर आजाद झाँसी में अज्ञातवास कर रहे थे। काकोरी कांड के पश्चात् अन्य सभी क्रांतिकारी या तो फाँसी के फंदों पर लटका दिए गए थे या लंबी-लंबी सजाएँ देकर जेलों में बंद कर दिए गए थे। अपनी सतर्कता के कारण चंद्रशेखर आजाद पुलिस के हाथ नहीं आ रहे थे। अन्य क्रांतिकारी आजाद की खोज कर पार्टी का संगठन-भार उनको सौंपना चाहते थे; पर आजाद का पता लगे तब ना!

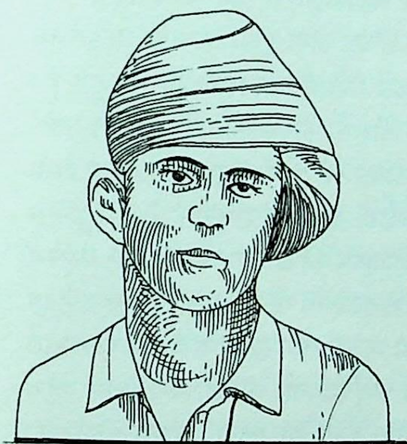
किसी प्रकार गणेशशंकर विद्यार्थी को यह पता चल गया कि झाँसी के शंकरराव मलकापुरकर द्वारा चंद्रशेखर आजाद का पता चल सकता है। आजाद शायद आसानी से मिल जाते, पर शंकरराव मलकापुरकर बहुत खोज के बाद हाथ लगे। जब वे मिल गए तो आजाद तुरंत मिल गए। आजाद को भी अन्य क्रांतिकारियों से काम होता तो वे शंकरराव का भरपूर उपयोग करते थे। आखिर एक बहुत महत्त्वपूर्ण काम में शंकरराव मलकापुरकर का उपयोग किया गया।

भगवानदास माहौर और शंकरराव के छोटे भाई सदाशिवराव मलकापुरकर भुसावल स्टेशन पर बम बनाने का मसाला एवं पिस्टल-कारतूसों सहित गिरफ्तार कर लिये गए। जलगाँव की अदालत में उनपर मुकदमा चला। उनके खिलाफ गवाही देने के लिए पंजाब से उन्हींके गद्दार साथी जयगोपाल और फणींद्र घोष अदालत में पहुँचने वाले थे। सदाशिवराव ने यह योजना बना डाली कि किसी प्रकार यदि एक पिस्तौल हाथ लग जाए तो कोर्ट में गद्दारों को मौत के घाट उतारा जाए।

शंकरराव मलकापुरकर ने चंद्रशेखर आजाद से संपर्क स्थापित किया और उनसे एक पिस्तौल लेकर, उसे चावल के बड़े कटोरे के नीचे छिपाकर स्वयं जेल में अपने भाई सदाशिवराव को दे आए। २१ फरवरी, १९३० को उस पिस्तौल का उपयोग भगवानदास माहौर ने गद्दारों पर किया; लेकिन वे घायल होकर रह गए। अदालत में गोली चलाने के कारण उनपर मुकदमा चला और उन्हें आजीवन कारावास का दंड मिला। सदाशिवराव को पंद्रह वर्ष के कारावास का दंड मिला। शंकरराव मलकापुरकर को भी जेल की हवा खानी पड़ी। जेल से छूटने के बाद उनपर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा।

□

★ शालिग्राम शुक्ल



शालिग्राम शुक्ल

"तुम लोग कल सुबह ठीक साढ़े पाँच बजे ग्रीन पार्क पहुँच जाओ। हम लोग कल कानपुर के बाहर कहीं निशानेबाजी के लिए चलेंगे।"

चंद्रशेखर आजाद ने यह प्रस्ताव अपने जिन साथियों के सामने रखा, वे थे—प्रो. नंदकिशोर निगम, सुरेंद्रनाथ पांडेय, विश्वनाथ वैशंपायन और शालिग्राम शुक्ल। इस समय तक उनकी पार्टी के बहुत से साथी गिरफ्तार हो चुके थे। कुछ शहीद भी हो चुके थे और कुछ साथी गद्दार भी सिद्ध हो चुके थे, जो पुलिस को खबरें देकर उन लोगों की गिरफ्तारी के लिए जाल बुन रहे थे। इन घटनाओं से आजाद के दिल पर

भी ठेस लगी थी; पर एक सच्चे क्रांतिकारी होने के नाते वे स्वयं भी इन आघातों को झेल गए थे और चाहते थे कि उनके बचे-खुचे साथी भी अपना उत्साह कायम रखें। निशानेबाजी का प्रस्ताव उन्होंने इसीलिए रखा था कि उनके साथियों का दिल बहल जाएगा और निशानेबाजी का अभ्यास भी हो जाएगा। नए भरती हुए सदस्यों को वे निशानेबाजी का अभ्यास कराना बहुत आवश्यक समझते थे। इन साथियों में वैशंपायन को तो निशानेबाजी का बहुत अच्छा अभ्यास था; क्योंकि झाँसी से ही वे आजाद के बहुत पुराने साथी थे। सुरेंद्रनाथ पांडेय भी निशानेबाजी की कला में पारंगत हो चुके थे। प्रो. नंदकिशोर निगम दिल्ली के एक कॉलेज में प्रोफेसर थे और इस कारण निशानेबाजी के अवसर उन्हें बहुत ही कम मिले थे। शालिग्राम शुक्ल की तो दल में भरती कुछ समय पहले ही हुई थी। वे कानपुर के ही निवासी थे।

चंद्रशेखर आजाद ने शालिग्राम शुक्ल को संबोधित करते हुए यह भी कहा—''हम सभी लोग साइकिलों से ही शहर के बाहर चलेंगे। यह तुम्हारी जिम्मेदारी है कि हम पाँचों साथियों के लिए खाना तैयार कराके टिफिन में बंद करके ले आना। तुम और सुरेंद्र पांडेय ग्रीन पार्क पहुँच जाना। मैं, निगम और वैशंपायन कुछ समय पश्चात् वहाँ पहुँचेंगे। तुम लोग पुलिस की नजरों से भी बचे रहने का ध्यानं रखना। कैलाशपति ने गिरफ्तार होकर सब चौपट कर दिया है। उसने हम सबका कच्चा चिट्ठा खोलकर पुलिस के सामने रख दिया है।''

आजाद के निर्देश स्पष्ट थे। अगले दिन १ दिसंबर, १९३० को ठीक पाँच बजे सुरेंद्रनाथ पांडेय और शालिग्राम शुक्ल साइकिलों से ग्रीन पार्क पहुँच गए। शुक्ल की साइकिल के कैरियर पर टिफिन बॉक्स लगा हुआ था और हैंडिल के सहारे कपड़े का एक थैला लटक रहा था। इस थैले में तीन रिवॉल्वर रखे हुए थे। ग्रीन पार्क पहुँचकर ये दोनों आजाद, निगम और वैशंपायन की प्रतीक्षा करने लगे।

इसी समय डी.ए.वी. कॉलेज के छात्रावास की तरफ से पुलिस का एक दस्ता उधर आता हुआ दिखाई दिया, जिसमें सी.आई.डी. इंस्पेक्टर शंभूनाथ भी था। पुलिस का यह दस्ता इन्हींके एक फरार साथी गजानन पोत्दार की खोज करने डी.ए.वी. कॉलेज के छात्रावास पहुँचा था; क्योंकि पुलिस को खबर लगी थी कि वह वहाँ ठहरा हुआ है। पुलिस दस्ता वहाँ से खाली हाथ लौट रहा था। वे लोग नागरिक वेश में छात्रावास गए थे और उस समय उनमें से किसीके पास कोई हथियार भी नहीं था। निकट पहुँच जाने पर शालिग्राम शुक्ल को इंस्पेक्टर शंभूनाथ ने पहचान लिया। पुलिस को उसकी तलाश भी थी। शंभूनाथ ने शालिग्राम से पूछा—

''कहिए शुक्लाजी, इतने दिन से आप कहाँ थे और आज यहाँ कैसे?''

शालिग्राम ने इंस्पेक्टर शंभूनाथ के प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया। उसने

शंभूनाथ की ओर अपनी पीठ इस इरादे से कर ली, जिससे वह यह समझ ले कि उसने किसी गलत आदमी को पुकारा है। शंभूनाथ ने इसे अच्छा अवसर समझा। उसने पीछे से शालिग्राम को अपनी भुजाओं में कस लिया और चिल्लाया—

''क्रांतिकारी को पकड़ो! भाग न जाए।''

पुलिस के अन्य लोग भी शंभूनाथ की सहायता के लिए पहुँच गए। अब शालिग्राम को तीन-चार लोग पकड़े हुए थे। उसने किसी प्रकार अपना दाहिना हाथ मुक्त करके रिवॉल्वर निकाल लिया और गोलियाँ चलाने लगा। उसकी एक गोली एक सिपाही को लगी और वह गिरकर वहीं ढेर हो गया। उसकी दूसरी गोली पुलिस के सहायक सुपरिटेंडेंट के घुटने में लगी और वह गंभीर रूप से घायल हो गया।

यह सबकुछ सेकंडों में ही हो गया। इस बीच सुरेंद्रनाथ पांडेय आजाद और साथियों को देखने उस तरफ बढ़ गए थे, जिधर से वे आने वाले थे। जब उन्होंने गोलियों की आवाज सुनी तो वे समझे कि उनके साथी की पुलिस से मुठभेड़ हो गई। अँधेरा था ही। नीचे गिरे हुए पुलिस के आदमी को वे समझे उनका साथी शालिग्राम पुलिस की गोली से गिर गया है। पुलिस के कब्जे में होते हुए शालिग्राम को यह चिंता हुई कि कहीं उनका साथी सुरेंद्रनाथ पांडेय न पकड़ा जाए। वह जोर से दो बार चिल्लाया—

''पुलिस से सावधान! पुलिस से सावधान!''

शालिग्राम तगड़ा व्यक्ति था। वह पुलिस को भारी पड़ रहा था। घटनास्थल के बिलकुल पास में ही ऑग्जिलियरी फोर्स का दफ्तर था, जहाँ दो सैनिक बंदूक लेकर पहरा दे रहे थे। शंभूनाथ ने सहायता के लिए पुकार की। पहरेदार सैनिक उसकी आवाज को पहचान गए। एक सैनिक तो पहरा देता रहा और दूसरा सैनिक घटनास्थल पर पहुँच गया। इंस्पेक्टर शंभूनाथ ने पकड़े हुए व्यक्ति पर गोली चलाने के लिए कहा। उस नए आए हुए सैनिक ने शालिग्राम शुक्ल की कनपटी पर अपनी राइफल की नली रखकर गोली चला दी। शालिग्राम की तत्काल मृत्यु हो गई। उसकी लाश सड़क पर पड़ी हुई थी। उसकी साइकिल भी मय थैले और टिफिन बॉक्स के वहीं रखी हुई थी।

जब शालिग्राम ने 'पुलिस से सावधान! पुलिस से सावधान!' चिल्लाकर कहा था तो पुलिस के आदमियों ने सहज रूप से यह अनुमान लगा लिया कि इसके और साथी यहाँ होंगे, जिन्हें सावधान होने के लिए इसने आवाज लगाई है। जब शालिग्राम निष्प्राण होकर सड़क पर गिर गया तो पुलिस के शेष आदमी छिपकर उसके अन्य साथियों की प्रतीक्षा करने लगे। मछली फँसाने के लिए जैसे चारा डाला

जाता है, उसी प्रकार उसकी साइकिल और सामान वहाँ से नहीं हटाया गया। शालिग्राम का निर्देश सुनकर सुरेंद्रनाथ पांडेय ने भी सुरिक्षत स्थान खोज लिया था। ऑग्जिलियरी फोर्स के दोनों सिपाही भी साइकिल पर नजर रखे हुए थे।

निश्चित कार्यक्रम के अनुसार चंद्रशेखर आजाद, विश्वनाथ वैशंपायन और प्रो. नंदकिशोर निगम उधर से निकले। अपनी साइकिल चलाते हुए निगम आगे थे। आजाद की साइकिल पीछे थी और उनकी साइकिल के कैरियर पर वैशंपायन लदे हुए थे। इन तीनों ने भी दूर से गोलियाँ चलने की आवाज सुनी थी और इन्हें आशंका हुई थी कि कहीं अपने साथियों की ही पुलिस से मुठभेड़ न हो गई हो। कुछ दूर पर प्रो. निगम ने अपने साथी शालिग्राम की लाश पड़ी देख ली और मय सामान के साइकिल भी। उनका मन हुआ कि लपककर थैला उठा लाएँ। आजाद उनके इरादे को ताड़ गए। उन्होंने ऑग्जिलियरी फोर्स के सैनिकों को उधर निशाना साधे हुए देख लिया था। आजाद ने प्रो. निगम को जोर से डपटते हुए कहा—

"साइकिल तेजी से आगे बढ़ाओ! देख नहीं रहे हो, फैक्टरी पर पहुँचने के लिए हम लोगों को पहले ही देर हो गई है और अगर धीरे-धीरे चले तो मील का फाटक बंद हो जाएगा तथा हम लोगों की एक दिन की पगार कट जाएगी।"

निगम ने आजाद के इस संकेत को समझ लिया। वे सभी लोग तेजी से पैडल मारते हुए काफी आगे निकल गए। आजाद की आवाज इंस्पेक्टर शंभूनाथ ने भी सुनी थी। न तो वह उनकी शक्ल पहचानता था और न आवाज ही। उसने सोचा कि मील के मजदूर काम पर जा रहे हैं। आजाद की सूझबूझ ने स्वयं उन्हें तथा साथियों को बचा लिया। जब वे सुरक्षित स्थान पर पहुँच गए तो साइकिलों पर से उतरकर थोड़ा दम लिया। आजाद ने कहा—

"आज हमने एक बहुत वीर और भरोसे का साथी खो दिया है। कितना मनहूस दिन है आज का! अपने साथी के गम में हम लोग आज भोजन से व्रत रखेंगे। पता नहीं, कहाँ पहुँचेंगे हम। भरोसे के सभी साथी शहीद होकर या गिरफ्तार होकर साथ छोड़ते जा रहे हैं।"

शालिग्राम शुक्ल ने स्वयं शहीद होकर देश की आजादी के लिए अपना बलिदान दे दिया। उसने अपने साथियों को भी संकट से बचाकर अपनी सूझबूझ का परिचय दिया।

□



★ शिवराम हरि राजगुरु



शिवराम हरि राजगुरु

अपने क्रांतिकारी साथी शिव वर्मा के साथ राजगुरु को यह दायित्व दिया गया कि वह दिल्ली के एक गद्दार साथी को गोली से उड़ाने के अभियान में सम्मिलित होकर अपनी प्रथम परीक्षा में उत्तीर्ण होकर दिखाए। राजगुरु को यह काम बहुत अच्छा लगा। वह तो चाहता ही था कि उसे मरने या मारने के काम में सम्मिलित किया जाए। उस समय नई दिल्ली नगर पूरी तरह से बसा नहीं था। लोग नगर से बाहर दूर तक घूमने जाया करते थे। क्रांतिकारियों का वह गद्दार साथी भी प्रतिदिन संध्या समय घूमने जाया करता था। शिव वर्मा और राजगुरु ने छिप-छिपकर उसकी गतिविधियों का अध्ययन कर लिया। उन दोनों के पास एक ही रिवॉल्वर था। दूसरा रिवॉल्वर लेने के लिए शिव वर्मा साथी भगतसिंह के पास लाहौर चले गए। वे अपना रिवॉल्वर राजगुरु को देकर कह गए कि गद्दार की गतिविधियों पर तुम नजर रखना।

एक दिन संध्या समय राजगुरु ने देखा कि उस तरफ काफी सुनसान है और वह गद्दार साथी अकेला घूमने जा रहा है। उसे मारने का उन्होंने वह अच्छा अवसर समझा और तेज कदमों से उसके पास पहुँचकर बहुत निकट से उसकी पीठ में गोली मार दी। गोली खाकर वह गद्दार पीठ के बल भूमि पर गिर पड़ा। राजगुरु ने सोचा कि यह जिंदा न रह जाए, इस विचार से उसने एक गोली उसके सीने में मार दी और भाग खड़ा हुआ।

गोलियों की आवाजें सुनकर पुलिस की दौड़-धूप प्रारंभ हो गई, सीटियाँ बजने लगीं और टॉर्च की रोशनी से अपराधी की खोज की जाने लगी। राजगुरु ने सोचा कि यदि सड़क-सड़क भागूँगा तो मोटर गाड़ियाँ पीछा करेंगी, अत: वह रेलवे लाइन के सहारे भागने लगा। जब वह काफी दूर निकल गया तो उसने देखा कि रेल पथ के समानांतरवाली सड़क से पुलिस की गाड़ियाँ उसका पीछा कर रही हैं। अब उसने रेल पथ छोड़ दिया और खेतों की तरफ दौड़ने लगा। दो-तीन सूखे खेतों को

पार करके वह गन्ने के एक ऐसे खेत के पास पहुँचा, जिसमें हाल ही में पानी दिया गया था। उसने छिपने के लिए वह स्थान उपयुक्त समझा। वह खेत के पानी और कीचड़ में इस तरह लोट गया कि केवल उसका सिर बाहर रहे और पूरा शरीर कीचड़-पानी में डूब जाए। सर्दी के दिन थे। वह ठंड के मारे बेहाल था; पर चुपचाप पड़े रहने के अतिरिक्त और कोई चारा भी नहीं था।

पुलिस के लोग टॉर्च लिये हुए उस खेत के पास पहुँचे। उसमें पानी और कीचड़ देखकर उन लोगों ने प्रवेश तो नहीं किया, पर इधर-उधर टॉर्च की रोशनी फेंककर वे अपराधी की तलाश करने लगे। जिस तरफ तनिक भी पत्तों के खड़कने की आवाज आती, तो उस तरफ गोली दाग दिया करते थे। उन लोगों ने कई गोलियाँ चलाईं। कुछ गोलियाँ राजगुरु के बिलकुल पास से भी निकल गईं; पर वह दम साधे पड़ा रहा।

राजगुरु दो-तीन घंटे तक कड़कड़ाती हुई सर्दीवाली उस रात में पानी और कीचड़ में पड़ा रहा। जब उसने देखा कि कहीं कोई हलचल नहीं है तो वह खेत से बाहर निकला और रेल पथ के सहारे फिर चल दिया। उसने पैदल चलकर एक स्टेशन पार किया। इस बीच उसके कपड़े सूख गए। अगले स्टेशन पर उसे मथुरा जानेवाली एक ट्रेन मिल गई। वह उसमें सवार हो गया। उसके सौभाग्य से वह ट्रेन मथुरा स्टेशन के आउटर पर रुक गई। राजगुरु उतरा और यमुना नदी की तरफ चल दिया। यमुना नदी में उसने लँगोट पहने हुए स्नान किया और अपने कपड़े धोकर सूखने के लिए झाड़ियों पर डाल दिए। जब कपड़े सूखे, सुबह हो चुकी थी। वह स्टेशन पहुँचा और गाड़ी पकड़कर कानपुर पहुँच गया। कानपुर में वह उस स्थान पर गया, जहाँ उसके साथी शिव वर्मा रहते थे। उसने अपनी सारी कहानी साथी शिव वर्मा को कह सुनाई। शिव वर्मा ने उसे बताया—

''जब मैं दूसरा रिवॉल्वर लेकर दिल्ली पहुँचा तो स्टेशन से उतरकर उस तरफ गया, जिस तरफ वह गद्दार घूमने जाया करता था। वहाँ मैंने पुलिस की दौड़-धूप देखी। लोगों ने मुझे बताया कि कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति को दो गोलियाँ मारकर भाग गया है। मैंने सोचा कि तुम्हींने अपने गद्दार साथी को मारा होगा। उसके बाद मैं अपने ठहरने के स्थान पर गया। वहाँ तुम्हें न पाकर मैं यहाँ कानपुर चला आया हूँ। जब अखबारों में मैंने दिल्ली की घटना का विवरण पढ़ा तो मरनेवाले का नाम-धाम पढ़कर मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि तुमने गलत आदमी को मार दिया। मैंने यह भी पता लगा लिया कि वह गद्दार तो जिंदा है।''

शिव वर्मा द्वारा अपनी भयंकर भूल की बात सुनकर राजगुरु को बहुत दुःख और पश्चात्ताप हुआ। बात आई-गई हो गई।

इस घटना का एक अच्छा परिणाम यह निकला कि जब चंद्रशेखर आजाद और भगतसिंह ने लाला लाजपतराय के हत्यारे उप पुलिस अधीक्षक जे.पी. सांडर्स को लाहौर में मृत्युदंड देने का निश्चय किया तो उस अभियान में राजगुरु को भी सम्मिलित किया गया। आजाद का तर्क था कि राजगुरु बहादुर भी है और सूझबूझवाला भी।

लाहौर के पुलिस कार्यालय पर ही सांडर्स को घेरा गया। कार्यालय के बाहर क्रांतिकारी साथी जयगोपाल को तैनात किया गया। जयगोपाल अपनी बिगड़ी हुई साइकिल को सुधारने का अभिनय करने लगा। पुलिस ऑफिस के सामनेवाली सड़क पर भगतसिंह और राजगुरु खड़े होकर पढ़ाई-लिखाई की बातें करने लगे। पुलिस कार्यालय के सामने ही डी.ए.वी. कॉलेज था। कॉलेज के फाटक की ओट में चंद्रशेखर आजाद अपना माउजर पिस्तौल लेकर इस इरादे से बैठ गए कि वारदात के पश्चात् यदि किसीने भगतसिंह और राजगुरु का पीछा किया तो उनसे मैं निबट लूँगा।

ठीक पाँच बजे संध्या को अपना काम समाप्त करके सांडर्स बाहर निकला और अपनी मोटर साइकिल पर बैठकर उसे स्टार्ट किया। उसे ऐसा करते देख जयगोपाल अपनी साइकिल की ठुक-ठुक बंद करके उठ खड़ा हुआ। भगतसिंह और राजगुरु ने इस संकेत को समझ लिया और उनके हाथ अपनी जेबों में चले गए। सांडर्स मोटर साइकिल पर चल पड़ा। भगतसिंह ने मन में सोचा कि गोली खाली न जाए, इस हेतु उचित होगा कि सांडर्स को और निकट आने दिया जाए। राजगुरु को सब्र नहीं हुआ। उसने अपनी पिस्तौल निकाली और सांडर्स पर गोली दाग दी। उसकी गोली सांडर्स के मस्तक पर लगी और मोटर साइकिल के साथ वह भूमि पर गिर पड़ा। अब भगतसिंह ने भी उसपर चार-छह गोलियाँ जड़ दीं। गोलियों की आवाज सुनकर पुलिस कार्यालय के अंदर से एक अंग्रेज पुलिस इंस्पेक्टर मि. फर्न घटनास्थल की ओर लपका। उसने देख लिया था कि एक युवक की पिस्तौल पूरी खाली हो चुकी है और दूसरे की जाम हो चुकी है। स्थिति का लाभ उठाकर उसने भगतसिंह को पकड़ लेना चाहा। जब उसने भगतसिंह को पकड़ने को हाथ बढ़ाया तो राजगुरु ने फुरती से इंस्पेक्टर फर्न को अपने हाथों में ऊपर उठा लिया और पूरी ताकत के साथ उसे भूमि पर दे मारा। ज्यादा चोट लग जाने के कारण फर्न उठ नहीं सका।

अब इन लोगों का पीछा करने के लिए तीन सिपाही दौड़े। आजाद ने कड़कती हुई आवाज में गोली मार देने की चेतावनी देकर उन लोगों से पीछे लौट जाने के लिए कहा। दो सिपाही तो पीछे लौट गए, पर एक हवलदार चाननसिंह

आगे ही बढ़ता गया। वह रुक जाए, इसलिए आजाद ने उसके पैर में एक गोली मारी। गोली खाकर भी वह लँगड़ाता हुआ आगे बढ़ने लगा। आजाद ने अब उसके सीने में गोली मारकर उसे ठंडा कर दिया।

सांडर्स का वध करके सभी लोग अपने ठहरने के स्थान लाहौर के मोजंग हाउस में सुरक्षित पहुँच गए। पुलिस ने पूरे शहर की नाकेबंदी कर डाली।

समस्या यह सामने आई कि अब ये लोग लाहौर के बाहर कैसे जाएँ? यह तय हुआ कि आजाद एक पंडे का रूप धारण करके तीर्थयात्रियों का दल बनाकर हरे राम-हरे कृष्ण करते हुए बाहर निकल जाएँ। भगतसिंह ने फौज के अफसर का रूप धारण किया। उनके साथ क्रांतिकारी साथी भगवतीचरण की पत्नी श्रीमती दुर्गा देवी ने भगतसिंह की पत्नी का अभिनय किया। दुर्गा भाभी के तीन वर्ष के बालक शचींद्र को भगतसिंह ने अपनी गोद में उठाया। राजगुरु की शक्ल-सूरत अच्छी नहीं थी। उसने भगतसिंह के नौकर का अभिनय किया। इस प्रकार पुलिस की आँखों में धूल झोंककर वे लोग लाहौर से बाहर निकल गए। लखनऊ तक सब लोग साथ गए। वहाँ से भगतसिंह और दुर्गा भाभी कलकत्ता चले गए और राजगुरु आगरा पहुँच गया। कुछ दिन बाद सभी लोग आगरा में एकत्र हो गए और वहाँ बम कारखाना खोलकर बम बनाने लगे।

कुछ दिन पश्चात् ब्रिटिश हुकूमत ने 'जन सुरक्षा बिल' और 'औद्योगिक विवाद बिल' पेश करके उन्हें कानून के रूप में परिणत करना चाहा। क्रांतिकारियों ने इन काले कानूनों का विरोध करने के लिए यह तय किया कि जिस दिन वे कानून के रूप में परिणत किए जाने वाले हों, उस दिन विधान परिषद् भवन में बम विस्फोट किए जाएँ। यह भी निश्चय हुआ कि भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त दिल्ली असेंबली में बम विस्फोट करके अपनी गिरफ्तारी दें।

राजगुरु को जब इस निर्णय की सूचना मिली तो शहादत का अवसर हाथ से जाता देख वह बहुत छटपटाया। उसने चंद्रशेखर आजाद से जाकर बहस की—

''आप भगतसिंह को असेंबली में बम फेंकने क्यों भेज रहे हैं? उसकी जगह मुझे भेजिए। जो काम भगतसिंह कर सकता है, वह मैं भी कर सकता हूँ।''

आजाद ने राजगुरु को समझाने का प्रयत्न किया—

''केंद्रीय समिति ने भगतसिंह को भेजने का निर्णय इसलिए लिया है कि वह अपनी गिरफ्तारी देकर अदालत में अंग्रेजी में बयान देगा और उसके उन बयानों से सारी दुनिया में हमारे सिद्धांतों का प्रचार होगा।''

राजगुरु ने प्रस्ताव रखा—

''जो बयान भगतसिंह देने वाला है, वह लिखकर मुझे दे दे। मैं उसे हरफ-

ब-हरफ रट लूँगा और वैसा-का-वैसा अदालत में उगल दूँगा। जब मैंने बनारस में विद्याध्ययन करते समय संस्कृत की कई पुस्तकें रट डाली हैं तो क्या मैं अंग्रेजी का एक बयान नहीं रट पाऊँगा?''

राजगुरु की इश्के-शहादत देख आजाद दंग रह गए। उन्होंने उसे दूसरी तरह समझाने का प्रयत्न किया—

''देखो राजगुरु! तुम सांडर्स के वध में सम्मिलित हो और असेंबली में बम फेंककर गिरफ्तारी देने का मतलब होगा कि सांडर्स के वध में तुम शामिल हो, यह सिद्ध हो जाने पर तुम्हें फाँसी होगी। तुम बचे रहो, इसीलिए केंद्रीय समिति ने तुम्हें न भेजने का निर्णय लिया है।''

राजगुरु का तर्क था—

''मैं इसीलिए क्रांतिकारी पार्टी में आया हूँ कि मरने और मारने के कामों में मुझे सबसे आगे रखा जाए। भगतसिंह भी तो सांडर्स के वध में सम्मिलित है। मुझसे यह सहन नहीं होगा कि देश के लिए शहीद होने का अवसर उसे तो मिले और मुझे न मिले।''

उस समय राजगुरु को असेंबली में बम विस्फोट के लिए चुनना संभव नहीं हुआ। इस बात से राजगुरु रूठकर पूना चला गया। कुछ दिन बाद वह पूना में गिरफ्तार कर लिया गया।

जब भगतसिंह ने असेंबली में बम फेंककर अपनी गिरफ्तारी दी तो गिरफ्तार हुए सारे क्रांतिकारियों को मुकदमा चलाए जाने के लिए लाहौर में इकट्ठा किया गया। इस प्रकार राजगुरु भगतसिंह से फिर जा मिला। वह इस बात से हर्षित था कि शहादत के पथ पर वह भगतसिंह से पिछड़ेगा नहीं।

जेल में रहते हुए भी राजगुरु इस ताक में रहने लगा कि शहादत की होड़ में वह भगतसिंह से आगे निकल जाए। जेल में सब लोगों ने अनशन किया तो राजगुरु को अच्छा अवसर हाथ लग गया। जब डॉक्टर ने राजगुरु के पेट में दूध पहुँचाने के लिए उसके गले में नली डाली तो राजगुरु ने झगड़ा किया। झगड़े का दुष्परिणाम यह निकला कि दूध राजगुरु के पेट में न जाकर फेफड़ों में पहुँच गया। उसे जोरदार निमोनिया हो गया और बेहद कष्ट होने लगा। राजगुरु को उस कष्ट में भी आनंद आने लगा। उसे यह विचार पुलकित कर रहा था कि साथी यतींद्रनाथ दास की भाँति वह भी अनशन के कारण शहीद हो जाएगा और इस प्रकार शहादत की होड़ में भगतसिंह को मात दे सकेगा।

एक दिन सभी क्रांतिकारी राजगुरु की चारपाई के आसपास एकत्र हुए और उससे अनशन तोड़ने का जोरदार आग्रह किया। राजगुरु आग्रह टाल न सका। जब

भगतसिंह ने अपने हाथ से उसे दूध का गिलास दिया तो उसने पूछा—

"राजगुरु! यह बता कि मुझसे पहले तू दूसरी दुनिया में जाने का उपक्रम क्यों कर रहा था?"

राजगुरु ने भगतसिंह के इस प्रश्न का इतना बढ़िया उत्तर दिया कि उसे सुनकर सभी साथी ठहाका मारकर हँस पड़े। वह बोला—

"क्रांतिकारी जीवन में मैं हमेशा तेरा नौकर रहा हूँ न! इसीलिए मैंने सोचा कि नौकर का फर्ज है कि दूसरी दुनिया में आगे पहुँचकर अपने साहब के लिए एक अच्छा-सा फ्लैट बुक कराके उसकी सफाई करके रखे।"

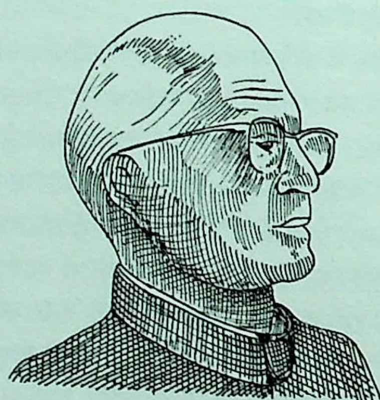
आखिर वह दिन भी आ गया, जब न्यायालय ने अपना फैसला सुना दिया। भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु को फाँसी के दंड की घोषणा की गई।

२३ मार्च, १९३१ को लाहौर किले की जेल में भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु को फाँसी के तख्ते पर खड़ा कर दिया गया। राजगुरु को बहुत हर्ष था कि शहादत की दौड़ में वह भगतसिंह से पीछे नहीं रहा।

तीनों साथियों ने 'इनकलाब जिंदाबाद!' के जोरदार नारे लगाए और देश की आजादी का चिंतन करते हुए फाँसी के फंदों पर झूल गए।

□

★ शिव वर्मा



शिव वर्मा

वह सन् १९२७ का जनवरी का महीना था और सुबह का समय। कानपुर में कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। डी.ए.वी. कॉलेज का एक छात्र शिव वर्मा कॉलेज छात्रावास के अपने कमरे में अध्ययन में रत था। कमरे के बाहर से आई हुई एक आवाज उसके कानों में पड़ी। कोई पड़ोस के कमरे में रहनेवाले छात्र से पूछ रहा था—

"यहाँ मि. शिव वर्मा किस कमरे में रहते हैं?"

अपने नाम के विषय में पूछताछ सुनकर शिव वर्मा बाहर निकला। एक

सिख युवक बरामदे में खड़ा हुआ था। जिस छात्र से जानकारी चाही गई थी, उसने शिव वर्मा की ओर संकेत करते हुए कहा—

''ये हैं मि. शिव वर्मा।''

निहायत बेतकल्लुफी से उस सिख युवक ने अपने दोनों हाथ फैलाकर शिव वर्मा को अपनी बाँहों में भर लिया। वह इतनी आत्मीयता से मिला मानो वर्षों के बिछुड़े हुए दो मित्र मिल रहे हों। वह छात्र, जिसने शिव वर्मा से मिलाया था, उसने तो यही समझा कि ये दोनों बहुत पुराने मित्र हैं। वह सिख युवक सफर से मैली हुई सलवार-कमीज पहने हुए था और सिर पर पगड़ी थी। सर्दी से बचने के लिए उसने एक कंबल लपेट रखा था। उसका कद लंबा, रंग गोरा-चिट्टा, आँखें छोटी-छोटी बादाम के शक्ल की और निगाह बहुत पैनी थी। उसके चेहरे पर विरल दाढ़ी भी थी। प्रथम मिलन और आलिंगन के पश्चात् उस सिख युवक ने ही शिव वर्मा को कमरे के अंदर खींचा; जैसे वह उसीका कमरा हो। बिस्तर जमीन पर ही लगा हुआ था। दीवार का सहारा लेकर उसपर बैठता हुआ वह बोला—

''मेरा नाम रणजीत है। तुम्हारी ही डगर का राही हूँ। दिल्ली में तुम्हारे एक मित्र ने तुम्हारा और जयदेव का परिचय मुझे दिया था। इसीलिए तुम दोनों से मिलने यहाँ आया हूँ। हाँ, यह बताओ कि क्या तुम सुरेंद्रनाथ पांडेय और विजयकुमार सिन्हा को जानते हो?''

शिव वर्मा ने 'हाँ' भर दी तो रणजीत ने कहा—

''उन दोनों को खबर भिजवा दो कि आज रात यहाँ आकर वे मुझसे मिल लें। मैं तुम्हारे पास चार-पाँच दिन ठहरूँगा। और हाँ, यह तो बताओ कि जयदेव कहाँ है?''

शिव वर्मा ने जयदेव के विषय में झूठ बोल दिया। कह दिया कि इस समय कहीं बाहर गया हुआ है। वह युवक शिव वर्मा के झूठ को ताड़ गया और कुछ उदास हो गया। अपने साथ लाई गई एक पुस्तक पढ़कर वह अपनी उदासी भुलाने लगा। शिव वर्मा को भी झूठ बोलने पर पश्चात्ताप हुआ। वह यह कहकर कमरे से बाहर चला गया कि मैं सुरेंद्रनाथ पांडेय और विजयकुमार सिन्हा को रात को यहाँ आने की सूचना देने जा रहा हूँ।

जो सिख नौजवान शिव वर्मा के पास पहुँचा था, वह एक पहुँचा हुआ क्रांतिकारी था और उसका असली नाम सरदार भगतसिंह था। वह पहले भी कानपुर आया था और श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के 'प्रताप प्रेस' में काम कर रहा था। इस बार वह घर छोड़कर आया था और उसका उद्देश्य था—अपनी पार्टी के लोगों से मिलकर इस संभावना का पता लगाना कि क्या काकोरी षड्यंत्र केस के बंदी

पं. रामप्रसाद बिस्मिल को जेल से छुड़ाया जा सकता है।

शिव वर्मा की उस युवक से यह पहली मुलाकात थी। शिव वर्मा को अपने दिल्ली के मित्र का पत्र पहले मिल चुका था कि कोई पंजाबी महाशय आपसे मिलने पहुँचेंगे। क्रांतिकारी दूरदर्शिता के तकाजे से शिव वर्मा ने अपने कमरे से सब आपत्तिजनक सामान हटा दिया। उनमें और जयदेव कपूर में यह भी तय हो गया था कि यदि वे पंजाबी महाशय पहले शिव वर्मा के पास पहुँचें तो वे उसे जयदेव से नहीं मिलने देंगे और यदि वे पहले जयदेव के पास पहुँचें तो वे उन्हें शिव वर्मा से दूर रखेंगे। लेकिन रणजीत नामधारी भगतसिंह के साथ पहली मुलाकात ने ही शिव वर्मा के सारे हथियार डलवा लिये और उन्हें अपनी रणनीति पर खेद भी हुआ। भगतसिंह और शिव वर्मा एक ही पार्टी 'हिंदुस्तान प्रजातंत्र संघ' के सदस्य थे। दोनों ने मिलकर कई-कई योजनाएँ निश्चित कर डालीं।

कुछ दिन शिव वर्मा के साथ रहकर भगतसिंह वापस चला गया। शिव वर्मा इस उधेड़बुन में लीन हो गए कि रामप्रसाद बिस्मिल को जेल से कैसे छुड़ाया जाए! कुछ योजनाएँ बनीं, लेकिन वे कार्यान्वित नहीं हो सकीं। होते-होते रामप्रसाद बिस्मिल की फाँसी का समय भी निकट आ पहुँचा। उन्हें गोरखपुर जेल में १९ अगस्त, १९२७ को फाँसी होनी थी।

फाँसी के एक दिन पूर्व अर्थात् १८ अगस्त, १९२७ को रामप्रसाद बिस्मिल की माताजी अपने पुत्र से अंतिम भेंट करने गोरखपुर जेल पहुँचीं। वहाँ शिव वर्मा पहले से ही मौजूद थे। वे भी बिस्मिलजी से भेंट करना चाहते थे; लेकिन कोई सूरत नजर नहीं आ रही थी। बिस्मिल की माताजी को आया हुआ देख शिव वर्मा ने उनसे कहा—

''माताजी! मैं बिस्मिलजी की पार्टी का आदमी हूँ। यदि आप उनसे मेरी भेंट करा दें तो बड़ी कृपा होगी। पार्टी की कुछ बातें उनसे करनी हैं।''

बिस्मिल की माताजी ने त्वरित उत्तर दिया—

''मैं अपने बेटे से तुम्हारी भेंट अवश्य करा दूँगी। मैं तुम्हें अपनी बहन का बेटा बताऊँगी। तुम भी मुझे 'मौसी' कहकर पुकारना और यदि कोई पूछे तो अपना नाम शंकरप्रसाद बताना।''

जेल में रामप्रसाद बिस्मिल और उनकी माताजी की भेंट हुई। चूँकि वह उनकी आखिरी मुलाकात थी, इस कारण उन्हें थोड़ा एकांत दे दिया गया। जब अपने बेटे से माताजी की बात पूरी हो गई तो उन्होंने शिव वर्मा की ओर इशारा करते हुए बिस्मिल से कहा—

''तुम्हारी पार्टी के आदमी हैं। इनकी बात सुन लो।''

शिव वर्मा की बिस्मिलजी से थोड़ी देर बात हुई। बिस्मिलजी ने उन्हें दो पते दिए, जहाँ पार्टी का कुछ धन और हथियार रखे हुए थे। एक पता तो बहुत दूर देहात का था। शिव वर्मा नहीं जा सके। एक वकील साहब का पता दिया गया था। उनके पास से शिव वर्मा को बहुत थोड़ा सामान मिला।

पार्टी के संगठन क्रम में शिव वर्मा ने सुरेंद्रनाथ पांडेय और विजयकुमार सिन्हा के साथ मिलकर बहुत अच्छा काम किया। उस समय इनके कदम समाजवाद की तरफ बढ़ने लगे थे। कानपुर के एक पत्रकार और लेखक श्री राधामोहन गोकुलजी से उन्हें समाजवाद की प्रेरणा मिल रही थी। विजयकुमार सिन्हा के द्वारा शिव वर्मा का परिचय भी राधामोहन गोकुलजी से हो गया। उनके प्रथम परिचय की घटना संस्मरणात्मक है।

विजयकुमार सिन्हा के साथ शिव वर्मा पहली बार राधामोहनजी के पास गए। वे कानपुर के कराचीखाने में मजदूरों की चाल में ऊपर का मकान लेकर रह रहे थे। विजयकुमार ने शिव वर्मा का परिचय दिया तो राधामोहन जी सब्जी काटते-काटते बोले—''फिर कभी आना।'' शिव वर्मा को इस उपेक्षा से बुरा लगा। वे राधामोहनजी का अच्छा प्रभाव लेकर नहीं गए।

दूसरी बार शिव वर्मा अकेले राधामोहनजी के पास गए। उस समय वे चारपाई पर लेटे हुए कोई पुस्तक पढ़ रहे थे। उठकर बैठ गए और एक टूटे हुए मोढ़े पर बैठने के लिए शिव वर्मा को संकेत किया। उसके बाद उन्होंने प्रश्नों की झड़ी लगा दी। उनके प्रश्न थे—

''क्या नाम है? किस जगह के रहनेवाले हो? कॉलेज में किस कक्षा में पढ़ते हो? आर्ट्स पढ़ते हो या साइंस? शादी हुई है या नहीं? कोर्स के अतिरिक्त और कौन-कौन-सी पुस्तकें पढ़ी हैं? बम-पिस्तौल चलाने के अलावा क्या इनके अंतिम उद्देश्य से परिचित हो या नहीं?''

शिव वर्मा ने इन प्रश्नों के जो उत्तर दिए, उनसे राधामोहनजी को संतोष हुआ। उन्होंने एक पुस्तक निकालकर शिव वर्मा को दी और बोले—

''इस पुस्तक को अच्छी तरह पढ़ना। जब इसे लौटाने आओगे तो इसपर मैं तुमसे प्रश्न पूछूँगा। मैं बहुत सख्त मास्टर हूँ।''

कुछ दिन पुस्तक अपने पास रखने के बाद शिव वर्मा जब उसे लौटाने गए तो राधामोहनजी ने प्रश्न किया—

''अच्छा बताओ, कम्यूनिज्म का अंतिम उद्देश्य क्या है?''

शिव वर्मा का उत्तर था—

''एक वर्गहीन श्रेणीरहित समाज की स्थापना, जिसमें मनुष्य द्वारा मनुष्य का

शोषण समाप्त हो जाएगा और उसकी क्षमता के अनुसार काम लिया जाएगा तथा उसकी आवश्यकता के हिसाब से दाम दिया जाएगा।''

यह उत्तर सुनकर राधामोहनजी ने शिव वर्मा की पीठ थपथपाई और बोले—

''तुम मेरे इम्तहान में पास हो गए हो। जब चाहो, मुझसे पुस्तकें लेने या चर्चा करने के लिए आते रहना।''

इसके पश्चात् राधामोहनजी के साथ शिव वर्मा का संपर्क बढ़ता ही गया। झाँसी का अज्ञातवास समाप्त करके जब चंद्रशेखर आजाद कुंदनलाल गुप्त के साथ कानपुर पहुँचे तो उन्हें राधामोहन गोकुलजी के साथ ही ठहराया गया। शिव वर्मा और आजाद की पहली भेंट वहीं हुई। आजाद के व्यक्तित्व से शिव वर्मा बहुत प्रभावित हुए।

शिव वर्मा और चंद्रशेखर आजाद के संबंध निरंतर प्रगाढ़ होते गए। उन्हें भगतसिंह ने भी प्रभावित किया था और चंद्रशेखर आजाद ने भी। फिर भी इन दोनों के व्यक्तित्व में मौलिक भेद था। भगतसिंह लंबे कद का गोरा-चिट्टा व्यक्ति था। चंद्रशेखर औसत ऊँचाई के तगड़े व्यक्ति थे। भगतसिंह के खूबसूरत चेहरे पर पैनी दृष्टिवाली आँखें थीं। चंद्रशेखर आजाद के चेहरे पर चेचक के हलके निशान थे; पर उनके चेहरे पर रोबीलापन अधिक था और उनकी आँखों में रहस्यों की गहराई थी। पहली मुलाकात में ही भगतसिंह का प्रभाव सामनेवाले पर सीधा हमला करता था और वह बचकर रहने के सारे प्रयत्न विफल करके सामनेवाले के सारे हथियार डलवा लेता था। चंद्रशेखर आजाद की मुलाकात का जादू सामनेवाले पर धीरे-धीरे चढ़ना प्रारंभ होता था और वह उसे 'मेरा मन अनत कहाँ सुख पावे' कहने के लिए विवश कर देता था। भगतसिंह और चंद्रशेखर आजाद से संबंध स्थापित हो जाने के बाद शिव वर्मा को लगा कि इन लोगों के साथ जीने और मरने का मजा आएगा।

कानपुर के सीमित क्षेत्र से बाहर निकलकर शिव वर्मा क्रांतिकारियों के अखिल भारतीय क्षेत्र में पहुँच गए। ८ और ९ सितंबर, १९२८ को दिल्ली के फिरोजशाह कोटला किले के खंडहरों में क्रांतिकारियों ने जिस केंद्रीय समिति का निर्माण किया, उसमें शिव वर्मा भी एक थे। उन्हें उत्तर प्रदेश का संगठक भी बनाया गया था। भगतसिंह ने पार्टी के नाम में 'समाजवादी' शब्द जोड़ने का जब प्रस्ताव रखा तो शिव वर्मा ने उस प्रस्ताव का जोरदार समर्थन करते हुए समाजवाद की अच्छी व्याख्या की।

साहसिक कार्यों में भी शिव वर्मा को सम्मिलित किया जाना आवश्यक समझा जाने लगा। उस समय काकोरी केस में बंदी पार्टी के वरिष्ठ नेता योगेशचंद्र चटर्जी फतहगढ़ जेल में बंद थे। उन्हें जेल से छुड़ाने की स्वीकृति लेने के लिए

शिव वर्मा और विजयकुमार सिन्हा को फतहगढ़ जेल भेजा गया।

उस समय फतहगढ़ जेल में एक नया गुल खिल चुका था। जेल के एक वार्डर को योगेशचंद्र चटर्जी ने पटा रखा था। योगेशचंद्र चटर्जी के सहायक वार्डर की शिकायत करते हुए एक अन्य वार्डर ने जेल के अधिकारियों से कहा कि उसने एक पिस्तौल लाकर योगेशचंद्र चटर्जी को दी है। तलाशी लेने पर कोई पिस्तौल तो बरामद नहीं हुई, पर एक शक का वातावरण अवश्य पैदा हो गया और योगेशचंद्र चटर्जी पर कड़ी नजर रखी जाने लगी। इसी समय फतहगढ़ जेल पहुँचकर शिव वर्मा और विजयकुमार सिन्हा ने योगेशचंद्र चटर्जी से भेंट करने का आवेदन-पत्र दे दिया। उनकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की गई। खुफिया पुलिस अलग पीछे पड़ गई। खुफिया पुलिस से पीछा छुड़ाने के लिए वे लोग स्टेशन पहुँचे और कानपुर के दो टिकट खरीद लिये। खुफिया पुलिस के लोगों ने टिकट बाबू से मिलकर उनका गंतव्य मालूम कर लिया और उनके टिकट नंबर भी लिख लिये। जब वे लोग ट्रेन में बैठ गए तो पुलिस के कुछ सिपाही भी उस डिब्बे में बैठ गए।

शिव वर्मा और विजयकुमार सिन्हा को लगा कि किसी स्टेशन पर अवश्य गिरफ्तार कर लिये जाएँगे। जब उनकी ट्रेन जलालाबाद स्टेशन पर रुककर गति पकड़ रही थी तो शिव वर्मा ट्रेन से कूद पड़े। उनके पीछे एक सिपाही भी कूदा। शिव वर्मा तैयारी और होशियारी के साथ कूदे थे। वे साफ निकल गए। उनका पीछा करनेवाला सिपाही हड़बड़ाकर जल्दी-जल्दी में कूदा था। वह काफी चोटें खा गया। जलालाबाद से अगले स्टेशन पर विजयकुमार सिन्हा भी उसी प्रकार ट्रेन से कूद गए। किसीने उनका पीछा नहीं किया।

पुलिसवालों को यह तो मालूम था कि दोनों क्रांतिकारियों ने कानपुर के टिकट लिये हैं। पुलिस कानपुर पहुँच गई। उन दोनों ने पीछा करती हुई पुलिस को देख लिया और उसे चकमा देकर वे सुरक्षित स्थान पर जा पहुँचे। उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि अब बगैर फरार हुए काम नहीं चलेगा। यहीं से उन दोनों का फरारी जीवन प्रारंभ हो गया।

अपने फरारी जीवन में शिव वर्मा को कोई योजना निश्चित करने के लिए पंजाब पहुँचना पड़ा। लाहौर में सुखदेव ने उनके ठहरने का प्रबंध किया। सुखदेव अपने किस्म का एक ही क्रांतिकारी था। जो बात उसे पसंद आ जाए, वह उसे करके छोड़ता। दूसरे की टीका-टिप्पणी की तो वह चिंता ही नहीं करता था। अपने साथियों की सुख-सुविधा का वह बहुत ध्यान रखता था।

जब शिव वर्मा लाहौर पहुँचे, वे घोर गरमियों के दिन थे। एक दिन दोपहरी के समय सुखदेव ने प्रस्ताव रखा—

''चलो, कहीं बाहर घूम आएँ।''

जलती दोपहरी में बाहर घूमने का विचार सुखदेव के दिमाग में ही आ सकता था। शिव वर्मा ने बहुत हीले-हवाले किए; पर सुखदेव ने उनकी एक नहीं सुनी। शिव वर्मा ने कहा—

''मेरे पास पंजाबी लिबास नहीं है।''

सुखदेव गए और उनके नाप के पंजाबी कपड़े ले आए। सलवार व लंबी कमीज पहनकर जब शिव वर्मा ने पगड़ी पर कुल्ला बाँधा और नए जूते पहने तो सुखदेव कह उठा—

''अब तो यार तुम पूरे पंजाबी जँच रहे हो।''

सुखदेव मैले कपड़े पहने हुए था। शिव वर्मा ने उससे कपड़े बदलने के लिए कहा तो वह बोला—

''मैं इसी हाल में ठीक हूँ। ज्यादा-से-ज्यादा कोई तुम्हें मालिक और मुझे तुम्हारा नौकर ही तो समझेगा।''

उस जलती दोपहरी में दोनों बाजार निकल गए। किसी चौराहे पर मक्का के भुनते हुए भुट्टों की गंध ने सुखदेव को खींच लिया। चार भुने हुए भुट्टे खरीद लिये। दो भुट्टे शिव वर्मा की तरफ बढ़ा दिए। शिव वर्मा ने बड़ी मुश्किल से एक ही भुट्टा लिया। सुखदेव ने दो भुट्टे अपनी बगल में दबाए और एक भुट्टा अपने दाँतों से नोच-नोचकर खाने लगा। उसने शिव वर्मा से भी उसी प्रकार भुट्टा खाने का आग्रह करते हुए कहा—

''सच पूछा जाए तो भुट्टा खाने का असली मजा इसी प्रकार उसे दाँतों से नोच-नोचकर खाने में है। इस प्रकार खाने से भुट्टे की ऊष्मा और उसकी खुशबू का भी आनंद मिलता है।''

शिव वर्मा का पंजाब प्रवास समाप्त हुआ। आगरा के बम निर्माण प्रशिक्षण में सुखदेव के साथ उनका मिलन फिर हो गया। बम निर्माण के क्रम में सब लोग आपस की छेड़छाड़ और हो-हल्ले का आनंद भी लेते थे। बम बना लेने के बाद उनका परीक्षण करने के लिए जो लोग झाँसी के आसपास के पहाड़ी इलाके में गए, उनमें शिव वर्मा भी एक थे। बम भगतसिंह ने अपने हाथों से फेंका। प्रयोग बहुत सफल रहा।

भगतसिंह की योजना के अनुसार पार्टी के कुछ लोग दिल्ली पहुँच गए। वहाँ सरकार द्वारा बनाए जानेवाले काले कानूनों का विरोध करने के लिए दिल्ली के असेंबली भवन में बमों का विस्फोट करना था। किसीने विचार दिया कि वाइसराय अपने विशेषाधिकार से उन बिलों को कानून का रूप प्रदान करे, उसके पहले

वाइसराय को ही क्यों न समाप्त कर दिया जाए। विचार निर्णय में परिणत हो गया। जो टीम इस काम के लिए चुनी गई, उसमें शिव वर्मा, जयदेव कपूर और राजगुरु थे। शिव वर्मा को इस अभियान का नेतृत्व प्रदान किया गया।

दिल्ली स्थित आई.सी.एस. अफसरों ने एक भोज का आयोजन कर उसमें वाइसराय लॉर्ड इरविन को आमंत्रित किया। वाइसराय महोदय ने पहुँचने की स्वीकृति दे दी। क्रांतिकारियों को इस आयोजन की सूचना मिल गई। उन्होंने सोचा कि गीदड़ या लोमड़ी पर गोलियाँ खर्च करने के बजाय बड़ा शिकार ही किया जाए।

तीनों क्रांतिकारियों में से प्रत्येक ने युक्तिपूर्वक कई बार वाइसराय महोदय को देखकर उनकी पहचान कर ली, जिससे कोई दूसरा व्यक्ति न मारा जाए। वाइसराय की गाड़ी पर ताज का चिह्न भी रहता था। वाइसराय भवन से कुछ दूर हटकर मोरचाबंदी की गई। सबसे पहला मोरचा सँभाला राजगुरु ने। उन्हें शिव वर्मा ने यह काम दिया कि वे वाइसराय को पहचानकर अपना सीधा हाथ ऊपर करके मारने का संकेत दे दें। दूसरे मोरचे पर जयदेव कपूर को रखा गया। राजगुरु द्वारा दिया गया वध-संकेत देखकर जयदेव कपूर को वाइसराय की गाड़ी पर बम का प्रहार करना था। तीसरे और अंतिम मोरचे पर शिव वर्मा स्वयं तैनात हुए। यदि जयदेव कपूर का बम प्रहार असफल होता है तो शिव वर्मा को बम प्रहार करना था। तीनों साथियों के पास अतिरिक्त मैगजीन और भरे हुए रिवॉल्वर भी थे। वाइसराय की गाड़ी के आगे पायलट के रूप में एक मोटर साइकिल सवार चलता था। गाड़ी के पीछे सुरक्षा गार्ड की गाड़ी रहती थी। इन लोगों से बचकर निकल भागने का प्रयत्न सफल न होने की दशा में आजाद का निर्देश था कि गिरफ्तार होने की अपेक्षा तीनों साथियों का लड़ते-लड़ते मारा जाना श्रेयस्कर होगा।

वाइसराय की गाड़ी निकलने का समय हुआ। तीनों साथी दिया हुआ काम संपन्न करने के लिए सन्नद्ध हो गए। वाइसराय की गाड़ी के आगे पायलट के रूप में मोटर साइकिल सवार निकला। उसके पीछे ताज के निशानवाली गाड़ी राजगुरु के पास से निकल गई। राजगुरु ने वध-संकेत देने के लिए हाथ नहीं उठाया। उसके हाथ न उठाने से उधर जयदेव कपूर और शिव वर्मा दोनों परेशान हुए। उन लोगों के पास से जब वाइसराय की गाड़ी निकली तो भेद उनकी समझ में आ गया कि राजगुरु ने हाथ उठाकर वध-संकेत क्यों नहीं दिया। उन लोगों ने देखा कि गाड़ी में ड्राइवर के अतिरिक्त तीन महिलाएँ थीं। उस गाड़ी में वाइसराय महोदय नहीं थे। राजगुरु की सूझबूझ पर सभी को प्रसन्नता हुई। जब चंद्रशेखर आजाद को स्थिति का ब्योरा दिया गया तो उन्होंने राजगुरु की पीठ ठोकते हुए कहा—

''राजगुरु! आज तूने सही निर्णय लेकर बुद्धिमत्ता का परिचय दिया है। वैसे

तो तुझसे उम्मीद यह थी कि वाइसराय को मारने के उत्साह में तू उसके न होने पर भी मारने का संकेत दे देता। गाड़ी के अंदर की सवारियाँ देखने तक तू रुका रहा, यह सचमुच ही गजब की बात है।''

अपने नेता की शाबाशी पाकर राजगुरु फूलकर कुप्पा हो गया। पूर्व निश्चित योजना के अनुसार भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने ८ अप्रैल, १९२९ के दिन दिल्ली असेंबली में बम विस्फोट करके अपनी गिरफ्तारियाँ दीं। कुछ साथी तो पहले ही दिल्ली छोड़ चुके थे, कुछ घटना के पश्चात् दिल्ली छोड़ गए। गिरफ्तारियों से बचने के लिए चंद्रशेखर आजाद की अपने साथियों को यही हिदायत थी। दिल्ली में केवल शिव वर्मा और जयदेव कपूर थे।

रात को अपने ठहरने के स्थान पर शिव वर्मा और जयदेव कपूर बड़े भारी मन से लौटे। कुछ खाया-पिया नहीं गया। सो जाने का नाटक किया गया। दोनों ही आँखें बंद करके लेट गए। दोनों जाग रहे थे; लेकिन उनमें से हर एक यह समझ रहा था कि दूसरा सो गया। शिव वर्मा उठे और उस खिड़की के पास पहुँच गए, जो सड़क की तरफ खुलती थी। वहाँ बैठकर वे निरंतर बाहर देखते रहे। जयदेव ने आँखें खोलीं तो शिव वर्मा गायब। समझते देर नहीं लगी कि वे कहाँ होंगे। जयदेव भी खिड़की के पास पहुँच गए और पुकारा—''शिव!'' शिव वर्मा ने मुड़कर देखा। दोनों की आँखें चार हुईं। चाहने पर भी दोनों बात न कर सके। यदि बातें करते तो आँखों की कमजोरी प्रकट हो जाती। दोनों ही खिड़की के पास से हटे और बिस्तर पर आ लेटे। दोनों खामोश थे, लेकिन एक ही भाव उनके दिलों में उठ रहे थे—

'कल रात हम चार साथी यहाँ सोए थे। आज हम केवल दो रह गए हैं। पता नहीं, अब बिछुड़े हुए साथियों से कभी मिलन होगा या नहीं।'

दिल्ली असेंबली बम कांड के पश्चात् सभी साथी इधर-उधर बिखर गए। उन्हें बिखरना ही था। बम के किसी एक कारखाने में सबका एक साथ गिरफ्तार होना कोई अक्लमंदी की बात तो न होती। शिव वर्मा, जयदेव कपूर और डॉ. गयाप्रसाद को निर्देश मिला कि वे लोग सहारनपुर जाकर वहाँ बम फैक्टरी खोलें। वे लोग चले गए। मुश्किल से एक मकान किराए पर मिला, वह भी लक्कड़खाने में। योजना यह थी कि वहाँ डॉ. गयाप्रसाद अपना दवाखाना चालू कर लेंगे और शिव वर्मा तथा जयदेव कपूर उनके कंपाउंडर व ड्रेसर के रूप में काम करेंगे। यह भी प्रस्तावित था कि रात को वे लोग बम बनाया करेंगे। पहुँचने को तो वे लोग पहुँच गए, पर डिस्पेंसरी खोलने के लिए कहीं से पैसा नहीं मिल सका। डिस्पेंसरी में फर्नीचर आदि जो सामान आवश्यक होता है, वह भी नहीं जुटाया जा सका। तीनों हाथ-पर-हाथ रखे बैठे रहते थे। एक और साथी थे—काशीराम। पैसे का प्रबंध करने के लिए उन्हें बाहर भेजा

गया। जब वे नहीं लौटे तो इस काम के लिए डॉ. गयाप्रसाद स्वयं गए। अब वहाँ रह गए केवल शिव वर्मा और जयदेव कपूर।

डॉक्टर की दुकान पर दवाइयाँ न हों और लोग निठल्ले बैठे रहें, लोगों को शक तो होता ही। वह शक पुलिस तक पहुँच गया। उन लोगों पर नजर रखी जाने लगी। सन् १९२९ का वर्ष और मई का महीना था। दोनों साथी रात को छत पर पहुँच जाते थे और आसपास के मकानों की गतिविधियों पर दृष्टि रखते थे। उनका अनुभव था कि गिरफ्तारी के लिए पुलिस सुबह चार बजे के आसपास छापा मारती है। वे लोग रात को बारी-बारी से जागकर पहरा देते थे। सुबह हो जाने पर बेफिक्री से सोते थे। एक रात इसी प्रकार जागकर जब बिलकुल सुबह हो गई तो दोनों छत से उतरे और आँगन में पड़ी चारपाइयों पर सो गए। गहरी नींद लग गई। दिन खूब चढ़ गया था। जब वे लोग सो रहे थे तो किसीने जोर-जोर से बाहर का दरवाजा खटखटाया। जयदेव सोते रहे। शिव वर्मा की नींद खुल गई। उन्होंने सोचा कि डॉ. गयाप्रसाद पैसे का प्रबंध करके सुबह की गाड़ी से लौटे हैं। बिना सँभले ही वे उठे और अपने साथी के लिए दरवाजा खोलने जा पहुँचे। दरवाजा खोला तो देखा कि सामने सशस्त्र पुलिस है। पकड़ लिये गए। उन्हें गिरफ्तार करने पुलिस के डिप्टी सुपरिंटेंडेंट महोदय अपने साथ शहर कोतवाल और अमले को लेकर गए थे। शिव वर्मा को पकड़कर वे सड़क पर खुलनेवाले उस कमरे में ले गए, जिसे डिस्पेंसरी नाम दिया गया। डिप्टी सुपरिंटेंडेंट मि. मथुरादत्त जोशी ने शिव वर्मा से पूछा—

"क्या आप ही डॉ. गयाप्रसाद हैं?"

शिव वर्मा का उत्तर था—

"जी नहीं, मैं तो रिश्तेदार हूँ। बनारस विश्वविद्यालय में पढ़ता हूँ।"

"यहाँ क्यों आए हो?"

"जी, गरमियों की छुट्टियाँ चल रही हैं। मसूरी गया था। विचार हुआ कि लौटते समय अपने रिश्तेदार डॉ. साहब से मिल लिया जाए। इसीलिए यहाँ आ गया हूँ।"

इस बीच साहब ने एक अलमारी खोल ली। उसमें बम का तैयार मसाला रखा था। उसके बारे में साहब ने पूछा, "यह क्या है?"

शिव वर्मा का उत्तर था—

"मैं क्या जानूँ, साहब, कि यह क्या है! डॉक्टर साहब शायद कुश्ता फूँकते होंगे। वही होगा!"

इधर डिप्टी साहब शिव वर्मा से जानकारी ले रहे थे, उधर शहर कोतवाल अंदर के कमरे में पहुँच गया था। वहाँ से एक सिपाही की आवाज आई—

"इधर आइए, हुजूर! इधर बहुत कुछ है।"

सिपाहियों के घेरे में डिप्टी साहब शिव वर्मा को अंदर लिवा ले आए। उन्होंने देखा कि जयदेव कपूर भी तीन-चार सिपाहियों से घिरे खड़े हैं और शहर कोतवाल को बम के खोल मिल गए हैं। एक संदूक की ओर इशारा करके डिप्टी साहब ने शिव वर्मा से पूछा—

"इस संदूक में क्या है? इसे खोलो।"

शिव वर्मा ने अकड़कर उत्तर दिया—

"साहब, तलाशी आप ले रहे हैं। आप ही खोलिए न उस संदूक को और देख लीजिए कि उसमें क्या है!"

डिप्टी साहब ने शिव वर्मा को ही वह संदूक खोलने के लिए विवश किया। शिव वर्मा ने उस संदूक के अंदर हाथ डाला और एक भरा हुआ बम निकालकर उसे डिप्टी साहब की ओर फेंकने की मुद्रा बनाते हुए कहा—

"लो, अब मरो सब लोग। बम मेरे हाथ में आ गया है।" यह कथन सुनकर भगदड़ मच गई। भागनेवालों में डिप्टी साहब सबसे आगे थे। वे सड़क पर जा पहुँचे और वहाँ से ही 'पकड़ो-पकड़ो' चिल्लाते रहे। शहर कोतवाल ने भागकर एक किवाड़ की ओट ले ली, जिसकी दराज से वह शिव वर्मा की सभी गतिविधियों को भली प्रकार देख सकता था। शिव वर्मा के हाथ में बम तो आ गया था, लेकिन बमों को चलाने के तोड़े दूसरी अलमारी में रखे हुए थे। कहीं कोई दुर्घटना न हो जाए, इससे बम और तोड़े अलग-अलग रखे गए थे। उस अलमारी में दो पिस्तौलें भी रखी हुई थीं। शिव उस अलमारी के पास पहुँच गए कि बम के तोड़े और पिस्तौलें उठा लें। उन्होंने अपने हाथ का बम नीचे जमीन पर रखा और अलमारी खोलने लगे। किवाड़ की दराज में से शहर कोतवाल यह देख रहा था। वह जाति का राजपूत और दिलेर था। यह कहते हुए कि 'जब क्रांतिकारियों को पकड़ने आए हैं तो मौत से क्यों डरें' शिव वर्मा की तरफ लपक पड़ा। वह शरीर से हट्टा-कट्टा तथा लहीम-शहीम था और शिव वर्मा थे दुबले-पतले। उसने शिव वर्मा को कमर से पकड़कर जमीन पर पटक दिया और उनकी पीठ को अपने घुटनों से दबाकर बैठ गया। अन्य सिपाही भी दौड़े और उन्हें अच्छी तरह काबू में कर लिया गया। शिव वर्मा व जयदेव कपूर दोनों के हाथ पीछे बाँधकर उन्हें कोतवाली ले जाया गया और एक कोठरी में बंद कर दिया गया। शहर कोतवाल ने पराजित शत्रु के प्रति उदारता दिखाने के भाव से उनके साथ अच्छा सलूक किया और उनके खाने-पीने का अच्छा प्रबंध किया। जो सिपाही दबिश में गए थे, उन्होंने कहा—

"हम लोगों को तो डिप्टी साहब ने यह बताया था कि कुछ कोकीन और अफीम के तस्करों को पकड़ना है। अगर हमें पता होता कि क्रांतिकारियों को पकड़ने हमें ले जाया जा रहा है तो हम आप लोगों को निकल भागने का कुछ अवसर भी दे सकते थे।"

गिरफ्तारी के बाद शिव वर्मा और जयदेव कपूर को मालूम पड़ा कि उनकी गिरफ्तारी उन्हींके गद्दार साथी फणींद्र घोष की जानकारी पर हुई है, जो गिरफ्तार होते ही पुलिस का मुखबिर बन गया था।

इन लोगों को गिरफ्तार करके लाहौर षड्यंत्र केस में सम्मिलित करने के लिए लाहौर जेल में भेज दिया गया।

लाहौर पहुँचकर शिव वर्मा और जयदेव कपूर को यह संतोष था कि उन्हें अपने बिछुड़े साथियों से मिलने का अवसर मिलेगा। उस समय तक उनके कई साथी गिरफ्तार होकर लाहौर पहुँच चुके थे। अधिकांश साथियों को लाहौर की बोर्स्टल जेल में रखा गया था। भगतसिंह को सेंट्रल जेल में रखा गया था।

भगतसिंह ने दिल्ली असेंबली में बम विस्फोट करके अपनी गिरफ्तारी देने का निर्णय इसी उद्देश्य से लिया था कि पहले अदालत को अपने विचारों के प्रचार का मंच बनाया जाएगा और उसके पश्चात् भूख हड़ताल करके जेल को। उसका वह कथन उसके गंभीर चिंतन का परिणाम था कि ब्रिटिश हुकूमत से हमारी लड़ाई किसी-न-किसी रूप में चलती रहनी चाहिए। जब वह बाहर रहा तो उसने सांडर्स वध को और असेंबली के बम विस्फोट को अपनी पार्टी के सिद्धांतों का प्रचार करने का माध्यम बनाया तथा जब वह जेल में पहुँच गया तो लंबे अनशन के द्वारा जेल को अपने सिद्धांतों के प्रचार का माध्यम बनाया। यह ठीक है कि ब्रिटिश सरकार क्रांतिकारी कैदियों के साथ जेलों में बदसलूकी कर रही थी; पर भगतसिंह ने अनशन की जो शृंखला प्रारंभ की, वह अपनी सुख-सुविधा के लिए नहीं, अपने विचारों के प्रचार के लिए प्रारंभ की थी। बहुत हद तक वह अपने उद्देश्य में सफल हुआ। उन अनशनों से भारत में जो क्रांतिकारियों के पक्ष में जनमत बना ही, संसार के अन्य देशों में भी ब्रिटेन के झूठे प्रचार का पर्दाफाश हुआ, साथ ही भारतीय क्रांति के सिद्धांत भी बाहर पहुँचे।

जिस समय भगतसिंह के साथी क्रांतिकारियों ने १३ जुलाई, १९२९ से अपने साथी के अनशन को बल प्रदान करने को सामूहिक अनशन प्रारंभ किया; उस समय भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त को अनशन करते हुए एक महीना हो चुका था।

शिव वर्मा यद्यपि शरीर से दुबले-पतले थे, पर अनशन की स्पर्द्धा में वे तगड़े सिद्ध हुए। उन्होंने अपने मन में कोई कमजोरी नहीं आने दी और बहुत संयम

का परिचय दिया। जिस प्रकार भगतसिंह की फाँसी प्रचार का प्रबल साधन बनी, उसी प्रकार अनशन के दिनों में तिरसठ दिन के अनशन के परिणामस्वरूप साथी यतींद्रनाथ दास का बलिदान भी क्रांतिकारियों के प्रचार का बहुत सशक्त साधन बना।

अनशन के क्रम में जेल के अधिकारी बलात्पान कराते थे। उसमें भी शिव वर्मा ने अपनी मानसिक दृढ़ता का अच्छा परिचय दिया। जहाँ वे शारीरिक रूप से कमजोर पड़ते थे, वहाँ उनके तगड़े साथी उनके लिए ढाल बन जाया करते थे। बहुधा ही पुलिस और जेल के अधिकारियों के साथ क्रांतिकारियों की हाथापाई व मारपीट हो जाया करती थी। यह स्वाभाविक ही था कि पुलिस बंदी क्रांतिकारियों की बहुत ही निर्ममता के साथ पिटाई करती थी। मार खाने के अवसरों पर भगतसिंह, जयदेव कपूर, सुखदेव और महावीरसिंह जैसे तगड़े व्यक्ति अपने दुबले-पतले साथियों के हिस्से की मार भी स्वयं खा लेते थे।

होते-होते वह समय भी आ गया, जब ७ अक्तूबर, १९३० को 'द्वितीय लाहौर षड्यंत्र केस' का फैसला सुना दिया गया। फैसले के अनुसार भगतसिंह, सुखदेव एवं राजगुरु को फाँसी का दंड दिया गया था और शिव वर्मा तथा उनके कुछ साथियों को आजीवन कारावास की सजाएँ सुनाई गई थीं। उस समय शिव वर्मा और उनके साथियों को लगा कि फाँसी की सजा पानेवाले व्यक्ति हमसे बहुत ऊँचे उठ गए हैं तथा हमारी और उनकी कोटि अलग हो गई है।

फैसला सुनाने के बाद अन्य क्रांतिकारियों को भी बोर्स्टल जेल से हटाकर सेंट्रल जेल भेज दिया गया। जिन लोगों को फाँसी की सजा सुनाई गई थी, उनके अतिरिक्त अन्य क्रांतिकारियों को विभिन्न जेलों में भेजा जाना आवश्यक था। एक दिन जेल के बड़े दारोगा ने शिव वर्मा और उनके साथियों को कोठरियाँ खाली करने का आदेश दिया। इन लोगों को लेकर जब वह जाने लगा तो उसके मन में कुछ दया-ममता जागी और उसने उनसे पूछा—

''क्या आप लोग अपने फाँसी पानेवाले साथियों से मिलेंगे?''

भला यह विचार उन्हें क्यों न पसंद आता। उसकी उदारता के लिए उन लोगों ने उसे बहुत-बहुत धन्यवाद दिए। उसने उन लोगों को ले जाकर भगतसिंह की कोठरी के सामने खड़ा कर दिया। इस विचार से कि अपने साथी से यह अंतिम भेंट है, सभी के मन उदास थे। बिदाई लेते समय शिव वर्मा की आँखों में आँसू छलक आए। अपने साथी के आँसुओं को देखकर भगतसिंह ने कहा—

''भावुक बनने का समय नहीं है, शिव! मैं तो कुछ ही दिनों में सारे झंझटों से छुटकारा पा जाऊँगा; लेकिन तुम लोगों को लंबा सफर पार करना पड़ेगा। मुझे

विश्वास है कि दायित्व के भारी बोझ के बावजूद इस लंबे अभियान में तुम थकोगे नहीं, पस्त नहीं होगे और हार मानकर रास्ते में बैठ नहीं जाओगे।''

यह कहकर भगतसिंह ने सीखचों के बाहर हाथ निकालकर अपने सभी साथियों से हाथ मिलाया। मुलाकात समाप्त हो चुकी थी।

अपने जेल जीवन के क्रम में शिव वर्मा को वर्तमान आंध्र प्रदेश की राजमहेंद्री जेल में भेज दिया गया। वहीं उनको दो घातक समाचार मिले। पहला घातक समाचार था अपने प्रिय नेता चंद्रशेखर आजाद के चिर बिछोह का, जो २७ फरवरी, १९३१ को इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में पुलिस के साथ वीरतापूर्वक युद्ध करते हुए शहीद हो गए थे। उन्हें दूसरा घातक समाचार मिला अपने तीन प्रिय साथी—भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु की २३ मार्च, १९३१ को लगाई गई फाँसी का। एक क्रांतिकारी होने के नाते इन आघातों को उन्हें बिना शिकवा-शिकायत किए झेलना पड़ा। अपने साथी के अंतिम शब्द उन्हें बल प्रदान करते रहे—

'तुम लोगों को लंबा सफर पार करना है। मुझे विश्वास है कि दायित्व के भारी बोझ के बावजूद इस लंबे अभियान में तुम थकोगे नहीं, पस्त नहीं होगे और हार मानकर रास्ते में बैठ नहीं जाओगे।'





★ सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'



सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'

लाहौर में क्रांतिकारियों की गोपनीय बैठक आयोजित थी। विचारार्थ प्रश्न था कि पार्टी के लिए आवश्यक हथियारों का संग्रह किस तरह किया जाए? यशपाल ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा—

''यह ठीक है कि हम लोग साथी रामकृष्ण द्वारा सरहद पार से हथियार मँगाते रहते हैं, पर इस काम में बहुत-सी कठिनाइयाँ आती हैं। पहली बात तो यह है कि हमें हथियारों की बहुत अधिक कीमत देनी पड़ती है। दूसरी बात यह है कि वहाँ जानेवाले हमारे साथियों का जीवन खतरे में रहता है; क्योंकि कबीलों के लोग एक-दूसरे पर गोलियाँ चलाते रहते हैं। हमारे साथी भी उस चपेट में आ सकते हैं। तीसरी बात यह है कि हथियार खराब हो जाने पर उनकी मरम्मत भी हमें सरहद पार भेजकर ही करानी पड़ती है। मेरे कहने का मतलब यह है कि क्या यह संभव नहीं है कि हम लोग कहीं हथियार बनाने या कम-से-कम हथियारों की मरम्मत करने का कारखाना खोल सकें?''

यशपाल के इन विचारों पर टिप्पणी की सुखदेव ने। उसने कहा—

''हम लोगों में कोई ऐसा कुशल कारीगर होगा, अभी तक तो यह मेरी जानकारी में नहीं है। दूसरी बात यह भी है कि लाहौर में हम लोगों ने बम बनाने का कारखाना खोल रखा है, इसलिए यह आवश्यक है कि हथियारों का कारखाना लाहौर से बाहर किसी स्थान पर खोला जाए।''

सुखदेव के विचार को आगे बढ़ाया धनवंतरी ने। उसका कहना था—

''नौजवान भारत सभा के हमारे साथियों में एक बहुत ही उपयोगी सदस्य है। उसका नाम है सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन। वैसे तो वह कॉलेज में विज्ञान विषय पढ़ रहा है और इस विषय में वह बहुत अच्छा विद्यार्थी भी है; पर मिस्त्रीगिरी भी उसे बहुत अच्छी आती है तथा थोड़े-बहुत प्रशिक्षण से वह हथियारों का निर्माण और मरम्मत का काम भी कर सकता है। है भी वह बहुत भरोसे का आदमी। हमारे गोपनीय परचे बाँटने में उसकी बहुत अच्छी भूमिका रही है। क्यों न इस काम के लिए उसे आजमाया जाए?''

साथी धनवंतरी के विचार को सुनकर यशपाल ने कहा—

''हम अपने इस साथी को अवश्य आजमाएँगे; लेकिन जैसाकि सुखदेव ने चाहा है कि हथियारों का कारखाना लाहौर से बाहर हो, ऐसी स्थिति में हमारा वह साथी क्या अपना परिवार छोड़कर बाहर रह सकेगा?''

धनवंतरी का उत्तर था—

''मुझे तो लगता है कि साथी सच्चिदानंद पार्टी के लिए सबकुछ करने को तैयार रहेगा। यदि अनुमति हो तो उससे बात करके देखूँ।''

धनवंतरी को इस काम की अनुमति मिल गई। उसने साथी सच्चिदानंद से बात की। सच्चिदानंद का उत्तर था—

''जब देश का काम हाथ में लिया है तो परिवार का मोह कैसा! देश के काम के लिए मैं कोई भी जोखिम उठाने के लिए तैयार हूँ।''

अमृतसर में हथियारों की मरम्मत का कारखाना खोल दिया गया। सच्चिदानंद की सहायता के लिए दो और साथी दिए गए। इन लोगों ने बिजली का काम करने की दुकान खोल ली। उन दिनों मुसलमान मिस्त्री ही बिजली का काम किया करते थे। इन लोगों ने भी मुसलिम नाम धारण करके बिजली का काम प्रारंभ कर दिया। जहाँ भी काम मिलता, उसे पूरा करने वहाँ चले जाते थे। अवकाश के समय में अपने मकान के अंदर के भाग में हथियारों की मरम्मत का काम करते रहते थे। देशी पिस्तौलें आसानी से मिल जाया करती थीं। उन पिस्तौलों को ये लोग कारतूसी पिस्तौलों में परिणत कर लेते थे। ये लोग खाली कारतूसों को भी भर लेते थे। दल का काम बहुत अच्छा चल निकला।

इन्हीं दिनों हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र सेना के कमांडर इन चीफ चंद्रशेखर आजाद का विचार हुआ कि दिल्ली में बम बनाने का कारखाना खोला जाए। विचार शीघ्र ही कार्यरूप में परिणत भी हो गया। दिल्ली के कुतुब रोड पर ऊपर की मंजिल का एक मकान किराए पर ले लिया गया और उसपर 'हिमालयन टॉयलेट फैक्टरी'

का बोर्ड टाँग दिया गया। पहले कमरे को दुकान का रूप दे दिया गया; जिसमें तेल, साबुन तथा क्रीम आदि विक्रय की वस्तुएँ रखी गईं। इन वस्तुओं के नाम बड़े साहित्यिक थे; जैसे—वसंत पराग सोप, वसंत क्रीम तथा वसंत बहार हेयर ऑइल आदि। पहले कमरे से लगा हुआ एक आँगन था और उस आँगन से लगे हुए दो कमरे थे; जिनमें से एक रहने के काम आता था और दूसरे कमरे में बम बनाए जाते थे। बम के इस कारखाने में काम कर रहे थे—विमलप्रसाद जैन, गिरवरसिंह, कैलाशपति, भवानीसहाय, यशपाल और प्रकाशवती। कभी-कभी वहाँ सुशीला दीदी और दुर्गा भाभी भी पहुँचा करती थीं। यशपाल के सुझाव पर इस कार्य में विशेष सहयोग देने के लिए पंजाब के साथी सच्चिदानंद को भी बुलाया गया। अपने विज्ञान के ज्ञान के आधार पर सच्चिदानंद वात्स्यायन ने बम फैक्टरी को अच्छी गति प्रदान कर दी।

सच्चिदानंद की अनुपस्थिति में अमृतसर की हथियार फैक्टरी का काम शिथिल पड़ गया। उसे फिर अमृतसर भेज दिया गया। एक बार सच्चिदानंद को यह काम दिया गया कि वे बम बनाने के लिए आवश्यक सामग्री लेकर लाहौर पहुँचें। वह सामान लेकर वे ट्रेन से लाहौर चल दिए।

लाहौर स्टेशन पर सच्चिदानंद ने पुलिस की बहुत भीड़ देखी। विस्फोटक सामग्री साथ थी, पकड़े जाने का भय था। वे प्लेटफॉर्म पर खड़े विचार कर रहे थे कि पुलिस का एक निरीक्षक उनके पास से निकलता हुआ कहता गया—

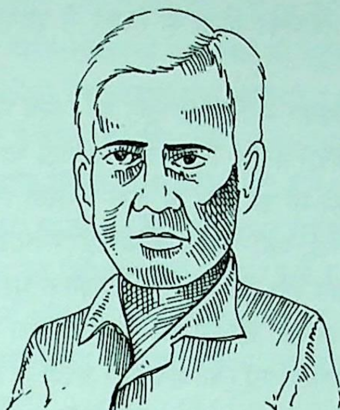
''अभी मैंने तुम्हें देखा नहीं है।''

पुलिस का यह निरीक्षक कॉलेज में सच्चिदानंद का सहपाठी रह चुका था। उसके संकेत को वे समझ गए और शीघ्र ही फाटक के बाहर हो गए। उनके फाटक के बाहर होते ही उनके सहपाठी पुलिस निरीक्षक ने सीटी बजाना प्रारंभ कर दिया और घेरकर लोगों की तलाशी ली जाने लगी।

उस अवसर पर तो सच्चिदानंद गिरफ्तारी से बच गए; पर चूँकि उनपर शक हो चुका था, इस कारण अगले समय वे फैक्टरी में ही गिरफ्तार कर लिये गए। उनकी फैक्टरी में कई पिस्तौलें पुलिस के हाथ लगीं। उन लोगों पर मुकदमा चलाया गया। सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन को पाँच वर्ष की कैद की सजा भुगतनी पड़ी। अपने जेल-जीवन को उन्होंने अध्ययन एवं लेखन के लिए अच्छा अवसर समझा और उसका भरपूर सदुपयोग किया।

□

★ सदाशिवराव मलकापुरकर



सदाशिवराव मलकापुरकर

अमर शहीद चंद्रशेखर आजाद की पूज्य माताजी श्रीमती जगरानी देवी को तीर्थाटन कराने के क्रम में जब सदाशिवराव मलकापुरकर कानपुर स्टेशन पर पहुँचे तो उनके स्वागत के लिए आए हुए लोगों की इतनी भीड़ थी कि प्लेटफॉर्म पर पैर रखने की जगह नहीं मिल रही थी। ज्यों ही सदाशिवराव माताजी को थामकर प्लेटफार्म पर उतरे, लोगों के कंठों से गगनभेदी नारे फूट पड़े—

''अमर शहीद आजाद की माताजी की जय!''

''भारत माता की जय!''

''राष्ट्रमाता जगरानी देवी की जय!''

''इनकलाब जिंदाबाद!''

''अमर शहीद चंद्रशेखर आजाद जिंदाबाद!''

दूर तक खड़े हुए लोग माताजी के दर्शन कर सकें, इसके लिए वेटिंग रूम में से कोई एक मेज व कुरसी उठा लाया और मेज पर कुरसी रखकर उसपर माताजी को बिठा दिया। लोगों ने माताजी को इतने हार पहनाए कि कई बार उनका शरीर ढक गया। उन्हें एक बग्घी में बिठाकर नगर में घुमाया गया। शाम को जब एकांतवास मिला तो माताजी ने सदाशिवराव से बातचीत की—

''क्यों सदू! स्टेशन पर इतने लोग मेरी और चंदर की जय क्यों बोल रहे थे?''

''माताजी, आपका बेटा चंद्रशेखर इस देश का गौरव है। उसने वह काम किया है, जो इतिहासों में उसका नाम अमर करेगा।''

''लेकिन बेटा, मेरे गाँव के लोगों ने तो मुझसे यह कहा था कि तुम्हारा बेटा चोर और डाकू है, इसीलिए तो अंग्रेज सरकार ने उसे मार दिया। मैं तो शर्म के मारे उन लोगों से मुँह छिपाती रहती थी।''

''नहीं माँ! आपका बेटा चोर या डाकू नहीं था। वह तो महान् योद्धा था।

वह अंग्रेजों के साथ देश की आजादी की लड़ाई लड़ रहा था। हम सब लोग उसके सिपाही थे। वह हमारा सेनापति था। सैकड़ों सिपाहियों से उस अकेले ने ऐसा भयंकर युद्ध किया कि इतिहास उसको कभी भूल नहीं सकता। आपके गाँव के लोग बहुत खराब हैं, जो एक देशभक्त योद्धा के विषय में इतना गलत प्रचार करते हैं।''

''बेटा, आज स्टेशन का दृश्य देखकर मेरी आँखें खुल गईं। अब मैं लोगों से अपना मुँह नहीं छिपाऊँगी। अब मैं उनसे कहूँगी कि चंदर मेरा बेटा था।''

सचमुच ही चंद्रशेखर आजाद की माँ को गाँव के कुछ शरारती लोगों ने मुगालते में रखा था। माताजी जहाँ-जहाँ गईं, वहाँ-वहाँ उन्हें कानपुरवाला ही दृश्य देखने को मिला। उनके मन से सारी ग्लानि और बेटे की मृत्यु का शोक धुल गया।

सदाशिवराव मलकापुरकर, जो आजाद की माँ को तीर्थाटन करा रहे थे, एक बार आजाद के साथ उनकी जन्मस्थली भाबरा (वर्तमान मध्य प्रदेश के झाबुआ जिले के अंतर्गत) पहुँचकर माताजी के दर्शन कर आए। चंद्रशेखर आजाद को सदाशिव पर बहुत अधिक भरोसा था। वे ही ऐसे क्रांतिकारी निकले, जिन्हें आजाद अपनी जन्मस्थली भाबरा ले गए थे। प्रस्ताव रखते हुए आजाद ने कहा था—

''चल सदू! आज मैं तुझे अपने साथ अपनी जन्मस्थली भाबरा लिये चलता हूँ। वहाँ मेरे माता-पिता रहते हैं।''

सदाशिव को हर्ष हुआ कि उन्हें इतने महान् क्रांतिकारी की जन्मस्थली देखने को मिलेगी और उनके पूज्य माता-पिता के दर्शन होंगे। आजाद ने वहाँ पहुँचने की व्यवस्था पहले ही कर ली थी। उन्होंने अपने चचेरे भाई मनोहरलाल त्रिवेदी को सूचना भेज दी थी कि वे किस तारीख को किस गाड़ी से दोहद स्टेशन पर उतरेंगे।

दोनों ने झाँसी से भोपाल, भोपाल से उज्जैन, उज्जैन से नागदा और नागदा से दोहद के टिकट खरीदे। उन्होंने ऐसा इसलिए किया था कि यदि कोई जासूस पीछा कर रहा हो तो उसे शक न हो सके। वे लोग एक दिन उज्जैन ठहरकर घूमे-फिरे भी थे। जब उनकी ट्रेन दोहद पहुँची तो मनोहरलाल त्रिवेदी प्लेटफॉर्म पर दिखाई दे गए; लेकिन उन्होंने अपरिचित जैसा व्यवहार किया। वे पहले गेट के बाहर निकल गए और आजाद व मलकापुरकर उनसे काफी फासला रखकर उस बस में जा बैठे, जिसमें मनोहरलाल जाकर बैठे थे। उन लोगों में आपस में कोई बातचीत नहीं हुई।

लगभग दो घंटे पश्चात् बस भाबरा पहुँची। मनोहरलाल त्रिवेदी बस से उतरकर अपने मकान की ओर चल दिए। आजाद और मलकापुरकर अपरिचित

जैसे उनके पीछे-पीछे हो लिये। घर के अंदर पहुँचकर आजाद ने मनोहरलालजी के पैर छुए। उन्हें ऐसा करते देख सदाशिवराव मलकापुरकर ने भी उनके पैर छुए। सदाशिवराव आजाद की इस सूझबूझ पर लट्टू हुए बिना न रह सके।

मनोहरलालजी ने आजाद के पहुँचने का समाचार उनके माता-पिता को दे दिया। थोड़ी देर पश्चात् एक ऋषिकल्प वृद्ध पुरुष ने मकान में प्रवेश किया और आजाद ने उनके पैर छुए। पिता ने दस साल से बिछुड़े अपने पुत्र को छाती से लगा लिया और सिसक-सिसककर रोने लगे। आजाद ने सार्थक स्वर से 'दादा' कहा और दादा समझ गए कि मुझे जोर-जोर से विलाप करके अपने क्रांतिकारी पुत्र के आगमन का विज्ञापन नहीं करना। इसी समय आजाद की माताजी वहाँ पहुँच गईं और उन्हें अंदर के कमरे में ले जाया गया। आजाद ने वहाँ पहुँचकर उनके पैर छुए। माँ ने अपने बेटे का सिर गोद में रख लिया और आँसुओं से वे उसका अभिषेक करती रहीं।

चार-पाँच दिन तक आजाद भाबरा रहे। वे और सदाशिव रात का भोजन माँ के घर करते थे। एक दिन भोजन कराने के क्रम में सदाशिव ने माँ के सीधे हाथ की मध्यमा और अनामिका उँगलियाँ आपस में बँधी हुई देखीं। उन्होंने माँ से पूछा—

''माँ! आपकी दो उँगलियाँ बँधी हुई हैं। इसका कारण क्या है?''

माँ ने आजाद की ओर देखते हुए कहा—

''बेटे! जब से चंदर मुझे छोड़कर गया, तभी से इसके आने की मनौती के रूप में मैंने ये उँगलियाँ बाँधकर रखी हैं। इन्हें बाँधे हुए दस वर्ष हो गए। मुझे ध्यान ही नहीं रहा कि अब यह बंधन मुझे खोल देना चाहिए। तू चंदर का साथी है, तू ही खोल दे मेरी उँगलियाँ।''

सदाशिव ने बड़ी युक्तिपूर्वक माँ की उँगलियों का बंधन खोल दिया। बंधनमुक्त हो जाने पर भी उँगलियाँ पृथक् नहीं हुईं। उनकी चमड़ी आपस में चिपककर एक हो गई थी।

कुछ दिन भाबरा रहने के पश्चात् चंद्रशेखर आजाद और सदाशिवराव मलकापुरकर आगरा पहुँच गए। इस बीच आजाद ने साथियों को बम बनाने के प्रशिक्षण की व्यवस्था की और सदाशिवराव भी बम बनाने में पारंगत हो गए।

सितंबर सन् १९२९ में अपने साथी भगवानदास माहौर के साथ अकोला जाते हुए भुसावल स्टेशन पर सदाशिवराव गिरफ्तार हो गए। जलगाँव की अदालत में उनपर मुकदमा चला। उनके खिलाफ गवाही देने के लिए उन्हींके गद्दार साथी जयगोपाल और फणींद्र घोष लाहौर से जलगाँव पहुँचने वाले थे। सदाशिव के मन में यह पश्चात्ताप था कि गिरफ्तारी के समय पुलिस के हाथों उनका वह माउजर

पिस्टल छिन गया, जो चंद्रशेखर आजाद ने उन्हें दिया था। वे इसी उधेड़बुन में रहे कि किसी प्रकार पुलिस के मुखबिर जयगोपाल और फणींद्र घोष को समाप्त किया जाए। इसके लिए पहले तो उनके दिमाग में यह योजना आई कि स्वयं पुलिस का मुखबिर बनकर जयगोपाल और फणींद्र घोष के साथ रहने का अवसर खोजना चाहिए। भगवानदास माहौर के साथ इस संबंध में उनका वार्त्तालाप भी हुआ। उनका कथन था—

''मैं समझता हूँ कि यदि मैं पुलिस का मुखबिर बन जाऊँ तो मुझे भी तुम्हारे विरुद्ध गवाही देने के लिए जयगोपाल और फणींद्र के साथ अदालत में लाया जाएगा।''

''यह तो तुम ठीक कहते हो, सदू! लेकिन क्या इसमें तुम्हारी बदनामी नहीं होगी? अभी तक साथी चंद्रशेखर आजाद को हम झाँसीवालों पर अटूट विश्वास रहा है। तुम्हारे मुखबिर बन जाने की घोषणा से न केवल तुम्हारे ऊपर कलंक लगेगा, अपितु झाँसी के सभी साथियों के मुँह पर कालिख पुत जाएगी।''

''मैं तुम्हारी बात से सहमत हूँ, भगवानदास! लेकिन मेरा तर्क यह है कि मुखबिर बनने की बदनामी मुझे कुछ दिन उठानी पड़ेगी। जब मैं उन गद्दार मुखबिरों में से दोनों या किसी एक को समाप्त कर दूँगा तो लोगों को प्रकट हो जाएगा कि मैं मुखबिर क्यों बना था। यह ठीक है कि गद्दारों को खत्म कर देने में मुझे मृत्युदंड ही मिलेगा; लेकिन यह तो संतोष होगा कि उन्हें गद्दारी का मजा चखा दिया गया।''

''अच्छा यह बताओ कि गद्दार साथियों को समाप्त करने के लिए तुम्हारे पास क्या योजना है?''

''मैं किसी प्रकार कोई हथियार प्राप्त करने का प्रयत्न करूँगा। यदि कोई भी हथियार नहीं मिल सका तो भी मैं किसी एक के गले की नसों को अपने दाँतों से काट दूँगा और वह बच नहीं सकेगा।''

''तुम्हारी इस योजना से मुझे संतोष नहीं हो रहा, सदू! वैसे यदि तुम पुलिस के मुखबिर बनने का नाटक करना ही चाहते हो तो मैं इसका विरोध नहीं करूँगा। कम-से-कम हम लोगों में कोई गलतफहमी पैदा नहीं होगी।''

अपने प्रिय साथी भगवानदास की अनुमति प्राप्त कर सदाशिवराव ने पुलिस के साथ मेल-जोल बढ़ाने का क्रम प्रारंभ किया। पुलिस उनसे कहीं अधिक चालाक थी। वह इस झाँसे में नहीं आई। उसका कथन था—

''एक आदमी को फाँसने के लिए तीन मुखबिरों की कोई आवश्यकता नहीं।''

सदाशिवराव अपना-सा मुँह लेकर रह गए। मुखबिरों को खत्म करने का उनका चिंतन चलता ही रहा। उन्होंने भगवानदास के सामने एक नई योजना रख दी—

''हम लोग अपने वकील श्री धुलेकर द्वारा चंद्रशेखर आजाद को संदेश भेजकर कोई पिस्टल मँगवा लें। यदि वह पिस्टल हमारे पास तक पहुँच जाता है तो कोर्ट में गवाही के समय हम उन गद्दार मुखबिरों को मौत के घाट उतार सकते हैं।''

भगवानदास का कथन था—

''तुम्हारे इस विचार से मैं सहमत हो सकता हूँ, सदू! यह योजना मुझे व्यावहारिक भी लगती है। आजाद के पास संदेश भी भिजवाया जा सकता है और हमारे पास पिस्टल भी आ सकता है। प्रश्न यह है कि वह पिस्टल हमारे पास कौन लाएगा और जो लाएगा, यदि वह तलाशी में पकड़ा गया तो सारा गुड़ गोबर हो जाएगा।''

''पिस्टल लाने की जिम्मेदारी मैं अपने बड़े भाई शंकरराव पर डाल सकता हूँ। ज्यादा-से-ज्यादा यही तो होगा कि घटना के पश्चात् वे भी हमारे साथ फाँस दिए जाएँगे। जब चाफेकर बंधुओं में से तीन को फाँसी हो सकती है तो हम दो भाइयों की कुरबानी उनकी कुरबानी से बड़ी नहीं होगी। इसके लिए आवश्यक यह है कि हम लोग अपने अच्छे व्यवहार की धाक जेल के कर्मचारियों पर जमा दें और अपने लिए बाहर से खाना मँगवाने का सिलसिला प्रारंभ कर दें। जरूरत के दिन भोजन के कटोरदान के साथ पिस्टल भी हम लोगों के पास पहुँच सकता है।''

भगवानदास इस योजना से सहमत हो गए। आजाद के पास यह संदेश पहुँच गया। आजाद ने अपने फरार क्रांतिकारी साथी भगवतीचरण को वकील के रूप में सदाशिवराव और भगवानदास से मिलने जेल में भेजा। और उन्होंने कहा—

''आप लोगों के पास एक पिस्तौल समय पर पहुँच जाएगी। चंद्रशेखर आजाद का कथन है कि यदि दोनों मुखबिर मारे जा सकें, तो दोनों को ही मारा जाए और यदि केवल एक मुखबिर को मारने की सुविधा हो तो फणींद्र घोष को मारा जाए; क्योंकि वह क्रांतिकारियों की केंद्रीय समिति का सदस्य रह चुका है। आजाद ने यह भी कहा है कि गोली चलाने का काम अकेला भगवानदास करे और सदाशिवराव को मुक्त रखा जाए; क्योंकि एक ही मामले में दो आदमी फाँसी पाएँ, यह अच्छा नहीं है।''

आदेश चंद्रशेखर आजाद का था, इसलिए उसे मानना आवश्यक था। वैसे प्रस्तावित कांड की पूरी योजना सदाशिवराव ने बनाई थी और वे अपने साथी को

बचाना चाहते थे। अपने साथी भगवानदास के प्रति उनके हृदय में मातृवत् स्नेह नहीं, मातृवत् ममता थी। भगवानदास को इस कार्य को संपन्न करने का यश मिलेगा, इस विचार से उनका हृदय ईर्ष्यालु भी नहीं हुआ। गद्दारों को ठिकाने लगाना उनका उद्देश्य था।

समय पर उनके पास पिस्तौल पहुँच भी गई और भगवानदास ने गोलियाँ भी चलाईं; लेकिन पुलिस इंस्पेक्टर और दोनों गद्दार घायल होकर रह गए। सदाशिवराव को बहुत खेद हुआ कि एक पिस्तौल भी खोई और मुखबिर भी बच गए। मुकदमे में भगवानदास माहौर को आजीवन कारावास और सदाशिवराव को पंद्रह वर्ष के कारावास का दंड मिला।

सन् १९३८ में कांग्रेस के मंत्रिमंडलों की स्थापना के कारण कैदियों को मुक्त किया गया। सदाशिवराव जेल से पहले छूट गए। वे बंबई उस समय तक डटे रहे, जब तक अपने प्रिय साथी भगवानदास को मुक्त नहीं करा लिया। उनको साथ लेकर ही वे झाँसी पहुँचे।

क्रांतिकारी व्यक्ति कभी खाली हाथ नहीं बैठ सकता। सदाशिवराव ने 'कांग्रेस कौमी सेवादल' गठित कर डाला। जब सन् १९३९ में द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़ा तो वे भारत रक्षा कानून के अंतर्गत फिर गिरफ्तार कर लिये गए। युद्ध की समाप्ति पर ही वे जेल से छोड़े गए। इसके बाद भी वे जेल जाते-आते रहे; क्योंकि उन्होंने साम्यवादी कार्यक्षेत्र अपना लिया था।

देश आजाद हो चुका था। सदाशिवराव को सूचना मिली कि भाबरा में चंद्रशेखर आजाद के पिताजी का देहावसान हो चुका है और उनकी माताजी भूखों मर रही हैं। उन्हें बड़ी पीड़ा हुई। वे माताजी को अपने साथ लाने भाबरा पहुँच गए। उन्होंने स्वयं देखा कि आजाद की माताजी का जीवन बड़ा कष्टमय है। पति की छोड़ी हुई कोई संपत्ति तो थी ही नहीं, माताजी जंगल में निकल जाती थीं और कुछ कंडे-लकड़ियाँ बीनकर ले आती थीं और उन्हें बेचकर अपना गुजारा करती थीं। उनको इतना पैसा भी नहीं मिलता था कि वे दोनों समय भोजन कर सकें। इतने कम पैसे मिल पाते थे कि वे गरीबों का अनाज कोदों या मक्का खरीद लेती थीं और उसके आटे को उबालकर पी जाती थीं। रोटियाँ बनाने लायक आटा भी वे कंडे-लकड़ियों से नहीं जुटा पाती थीं। किसी-किसी दिन तो उन्हें भूखा ही रहना पड़ता था। स्वाभिमान के कारण वे किसीके आगे हाथ नहीं फैलाती थीं।

सदाशिवराव ने जब आजाद की माँ की यह दशा देखी तो वे रोने लगे। वे माँ को समझाने गए थे, पर माँ उनको समझा रही थीं। उन्होंने माँ के सामने प्रस्ताव रख दिया—

''माँ! तुम मेरे साथ झाँसी चलो। आजाद ने कभी मुझसे कहा था कि यदि तुम जीवित रहो तो मेरी माँ को तीर्थयात्रा करा देना। मेरे साथ चलो, मैं तुम्हें तीर्थयात्रा कराऊँगा।''

आजाद की माँ ने कहा—

''अपने कष्टों से मुक्ति के लिए तो मैं तुम्हारे साथ नहीं जाती। मेरी इच्छा थी कि जिस कुटिया में मेरे बेटे चंदर ने जन्म लिया है, उसी कुटिया में मरूँ; लेकिन तुमने कहा कि मुझे तीर्थ घुमाने की बात चंदर ने कही है, इसलिए मैं मान जाती हूँ। अगर मुझे लेने और कोई आता तो मैं न जाती। तुम चंदर के साथ यहाँ आ चुके हो और मेरे लिए तुम चंदर जैसे ही हो, इसलिए मैं तुम्हारे साथ चलती हूँ।''

सदाशिवराव सन् १९४९ में आजाद की माताजी को झाँसी ले गए। झाँसीवासियों के लिए आजाद की माताजी साक्षात् तीर्थ बन गईं। वे सदाशिवराव के साथी भगवानदास माहौर के घर रहने लगीं।

सदाशिवराव मलकापुरकर माँ को लेकर तीर्थाटन के लिए निकल पड़े। यद्यपि स्वयं ऩनकी आर्थिक स्थिति बहुत दयनीय थी, फिर भी माँ को उन्होंने कई तीर्थ कराए।

मार्च सन् १९५१ में झाँसी में ही आजाद की माँ का देहावसान हो गया। उनकी अंत्येष्टि सदाशिवजी ने ही संपन्न की। झाँसी के उत्साही लोगों ने माँ के स्मारक के रूप में एक सार्वजनिक स्थान पर रातोरात एक प्याऊ का निर्माण कर दिया। सरकार ने इसे अवैध कार्यवाही की संज्ञा दी। लोगों का विचार हुआ कि प्याऊ के पास आजाद की माँ की मूर्ति स्थापित की जाए। आजाद के साथी मास्टर रुद्रनारायण बहुत अच्छे मूर्तिकार थे। माँ की मृत्यु के उपरांत उन्होंने उनके चेहरे का एक साँचा बना लिया था। उनके कई चित्र भी उन्होंने लिये थे। उन्होंने माँ की एक सुंदर मूर्ति बना दी। इस समाचार से सरकार के कान खड़े हो गए। नगर में निषेधाज्ञा लागू कर दी गई। लोगों ने निषेधाज्ञा भंग करके आजाद की माँ की मूर्ति लगाने का संकल्प किया। सदाशिवराव मलकापुरकर ने कहा—

''मेरे साथी चंद्रशेखर आजाद पुलिस के साथ युद्ध करते हुए शहीद हो गए। दुर्भाग्य से मैं जिंदा बच गया। आज शहीद होने का अवसर मुझे मिल रहा है। मैं इस अवसर को नहीं छोड़ सकता।''

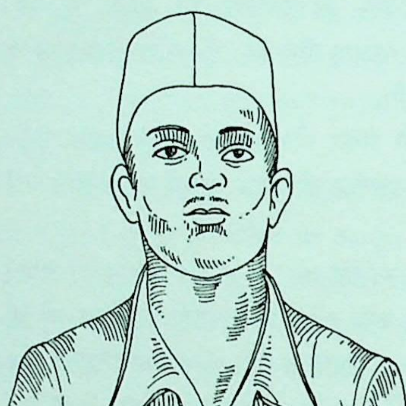
यह कहकर उन्होंने आजाद की माँ की मूर्ति अपने सिर पर रखी और पुलिस की नजरों से बचते-बचते प्याऊ की तरफ चल दिए। वे चले तो और दीवाने भी साथ हो लिये। सरकार ने इसे अपना अपमान समझा। गोली चलाने की आज्ञा दी गई। झाँसी के दीवानों ने सदाशिवजी को घेरकर अपने बीच में कर लिया। गोलियाँ

चलीं। सदाशिवजी बच गए, लेकिन तीन देशभक्तों ने अपने प्राण दे दिए। आजाद की माँ की मूर्ति नहीं लगाई जा सकी। सदाशिवजी का कथन था—

"चंद्रशेखर आजाद भारत माता के लिए शहीद हो गए। मैं कितना अभागा हूँ, जो उनकी माँ के लिए भी शहीद न हो सका!"

□

★ सुखदेव



सुखदेव

एक दिन बालक सुखदेव बहुत खोज करके महारानी लक्ष्मीबाई का एक चित्र खरीद लाया और अपनी माँ को वह चित्र दिखाता हुआ बोला—

"देखो तो माँ! कितनी वीरांगना थीं महारानी लक्ष्मीबाई! वे अपनी पीठ से अपने पुत्र को बाँधकर और घोड़े पर सवार होकर अंग्रेजों से युद्ध करती थीं।"

माँ ने कहा, "भारतवासियों को वीर होना ही चाहिए। हमारे सभी पूर्वज लोग बहुत वीर थे।"

सुखदेव बोला, "माँ! मैं भी बड़ा होकर अंग्रेजों के साथ युद्ध करूँगा। हमें अंग्रेजों को भगाकर अपने देश को उनके पंजे से मुक्त कराना है।"

बचपन से ही सुखदेव ने अपने जीवन का लक्ष्य स्थिर कर लिया। भारत भूमि पर हावी अंग्रेजों से उसे नफरत हो गई। कुछ और बड़ा हुआ तो संकल्पों में और निखार आया। पंजाब में दमन-चक्र चल रहा था। सुखदेव लायलपुर में विद्यालय में पढ़ रहा था। एक अंग्रेज अफसर विद्यालय में पहुँचा। सभी छात्रों को आदेश मिला कि वे उस अंग्रेज अफसर को सलाम करें। अन्य छात्रों ने उस अंग्रेज को सलामी दी, पर सुखदेव ने नहीं दी। सुखदेव पर रूल से भारी मार पड़ी; लेकिन उसने अंग्रेज को सलाम नहीं किया तो नहीं किया।

सुखदेव युवक हुआ तो माँ ने उसके रंगीन जीवन के सपने सँजोए। वह बोलीं—

''सुखदेव, तू घोड़ी पर चढ़कर जा और अपने लिए दुलहिन ले आ।''

सुखदेव ने दृढ़ता से उत्तर दिया—

''माँ! मुझे तो फाँसी के तख्ते पर चढ़ना है।''

माँ समझ गईं कि बेटा किस रास्ते पर चल पड़ा है। सुखदेव के तायाजी ने उन्हें समझाया—

''अपने बेटे से छेड़छाड़ मत किया करो। हमारे कोई भी प्रयत्न उसका रास्ता नहीं बदल सकते। वह जितने दिन हमारे बीच रहे, हमें उतने से संतोष कर लेना चाहिए।''

सुखदेव के तायाजी श्री चिंतराम ने ही उसे पाला था। सुखदेव का जन्म १५ मई, १९०७ को लुधियाना जिले के 'नौघराँ' स्थान पर हुआ था। जब वह केवल तीन वर्ष का था तो उसके पिता श्री रामलाल का देहावसान हो गया। उसकी माता श्रीमती रल्ली देई ने अपने जेठ श्री चिंतराम थापर की देखरेख में उसे बड़ा किया। उसके तायाजी लायलपुर में रहते थे और राष्ट्रीय विचारधारा के व्यक्ति थे। देश के कार्य के लिए उन्होंने जेल-जीवन का भी अनुभव किया था।

लायलपुर से हाई स्कूल पास कर लेने के पश्चात् सुखदेव कॉलेज की शिक्षा के लिए लाहौर के नेशनल कॉलेज में भरती हो गया और शीशमहल बोर्डिंग हाउस में रहने लगा। वह अपने अन्य साथियों से बहुत अलग था। जो उसे अच्छा लगता था, वह करता था। किसीके कहने-सुनने की उसने कभी चिंता नहीं की। बोर्डिंग के जिस कमरे में सुखदेव रहता था, उस कमरे में उसका तयेरा भाई जयदेव और यशपाल भी रहते थे। सुखदेव ने अपने तायाजी श्री चिंतराम का वह चित्र रख छोड़ा था, जिसमें वे कैदी के रूप में थे। उस चित्र के अनुरूप अपने जीवन को ढालने का संकल्प शायद उसने उसी उम्र में कर लिया हो।

सुखदेव के साथी पढ़ने में बहुत समय देते थे। वे पाठ्य पुस्तकें भी पढ़ते थे और बाहर की पुस्तकें भी। सुखदेव पढ़ता कम था, लेकिन उसकी स्मरण शक्ति बहुत अच्छी थी। कई महीनों पहले पढ़ी हुई सामग्री वह ज्यों-की-त्यों बता सकता था।

सुखदेव के साथियों को उससे एक शिकायत थी और वह यह कि अपनी जीवन-पद्धति में उसे किसीका हस्तक्षेप सहन नहीं होता था। उसे जैसा अच्छा लगता था वैसा लिबास पहनता था और जो काम अच्छा लगता था, वह करता था।

कॉलेज में पढ़ते-पढ़ते सुखदेव को अपना स्वास्थ्य सुधारने की धुन सवार हुई। खूब दंड-बैठकें लगाई जाने लगीं और अखाड़ेबाजी होने लगी। पहलवानों की तरह ढीला कुरता और लुंगी बदन पर फबने लगी। कुरते की बाँहें लौटाकर बहुत

ऊपर की जाने लगीं, जिससे बाजुओं के पुट्ठे दिखाई देते रहें। कुरते के बटन खुले रहने लगे, जिससे सीना दिखाई देता रहे। कभी-कभी इसी लिबास में श्रीमान बाजार भी जाने लगे। साथी टोकते—

"सुखदेव! जरा बाजार में तो भले आदमियों की तरह चला करो।"

सुखदेव का उत्तर होता—

"मुझे इसी तरह रहते अच्छा लगता है। यदि तुम्हें मेरे कारण शर्म लगती हो तो तुम मुझसे हटकर चला करो।"

सुखदेव को फूलों का भी बहुत शौक था। खुशबूदार फूल, जैसे बेला, चमेली और गुलाब आदि उसे बेहद प्रिय थे। कभी-कभी तो इस प्रकार के फूल वह अपने बिस्तर पर भी बिखरा लेता था। एक बार यशपाल और सुखदेव बाजार जा रहे थे। बेला के हार बेचनेवाला एक व्यक्ति दिखाई दे गया। सुखदेव ने झट दो हार खरीद लिये। एक हार अपने गले में डाल लिया और दूसरा हार यशपाल की तरफ बढ़ा दिया। यशपाल ने उस हार को लेने से इनकार कर दिया तो सुखदेव ने उसे अपने एक हाथ में लपेट लिया। जो हार गले में पड़ा था, उसे वह नाक से सूँघते हुए चलने लगा। यशपाल ने आपत्ति की—

"हारों का इस प्रकार उपयोग करना भले आदमियों को शोभा नहीं देता। कोई देखेगा तो क्या कहेगा!"

सुखदेव का उत्तर था—

"तुम मुझसे दूर हटकर चल सकते हो और भले बने रह सकते हो। मैं तो इसी तरह चलूँगा।"

कॉलेज में ही पढ़ते-पढ़ते सुखदेव का झुकाव क्रांति की ओर हो गया। क्रांति के मार्ग पर चलनेवाले उसके अन्य साथी थे—भगतसिंह, यशपाल और भगवतीचरण। क्रांति के कार्यों को अधिक समय देने के लिए सुखदेव ने बोर्डिंग हाउस छोड़कर एक मकान किराए पर ले लिया और अपने छोटे भाई मथुरादास के साथ उसमें रहने लगा। उसका वह मकान क्रांतिकारियों का अड्डा बन गया। भगतसिंह तो अकसर वहीं जमा रहता था। दोनों लोग क्रांति-संबंधी साहित्य खूब पढ़ते और घंटों तक बहस किया करते। क्रांति के कार्य से सुखदेव बाहर भी आने-जाने लगा।

एक दिन सुखदेव बाहर के किसी स्थान से ट्रेन द्वारा लाहौर लौट रहा था। जिस डिब्बे में उसने प्रवेश किया, उसमें पुलिस के बहुत से सिपाही बैठे हुए थे। उन लोगों ने सुखदेव को उस डिब्बे में चढ़ने से रोका। सुखदेव अकड़कर बोला—

"आप लोगों ने यह डिब्बा रिजर्व नहीं करा रखा है। मैं इसी डिब्बे में

बैठूँगा। देखें, मुझे कौन रोकता है!''

यह कहकर सुखदेव बलपूर्वक उस डिब्बे में चढ़ गया। सिपाहियों ने इसे अपना अपमान समझा। वे सुखदेव पर टूट पड़े। जितना बन सकता था, सुखदेव ने प्रतिरोध किया। सिपाहियों की संख्या अधिक थी। उन लोगों ने लातों व घूँसों से सुखदेव की जमकर पिटाई की और अगला स्टेशन आने पर उसे डिब्बे से उतार दिया। एक सिपाही बोला—

''भले आदमी, इतनी मार खा गया। अपना नाम तो बता दे।''

सुखदेव का उत्तर था—''मार खाणा!'' (मार खानेवाला)

लाहौर पहुँचकर सुखदेव अपने मकान पर पहुँचा और छोटे भाई से बोला—

''अरे मथुरा, जरा तेल की शीशी तो देना।''

मथुरादास ने सरसों के तेल की शीशी लाकर दे दी। भगतसिंह भी वहीं बैठा था। सुखदेव ने तेल की शीशी भगतसिंह की तरफ बढ़ा दी और बोला—

''भगतसिंह, जरा बदन पर मालिश तो कर दे। सालों ने बहुत पिटाई की है।''

मालिश कराते-कराते घटना का पूरा ब्योरा भगतसिंह को दे दिया और बोला—

''मैं अपनी सहन शक्ति की परीक्षा करना चाहता था कि मैं कितनी मार खा सकता हूँ!''

सुखदेव की बात सुनकर भगतसिंह ने जोर का ठहाका लगाया। सुखदेव ने भी ठहाका लगाकर उसका साथ दिया। दोनों देर तक ठहाके लगाते रहे। सुखदेव अपना दर्द भूल चुका था।

इन्हीं दिनों सुखदेव ने किसी पुस्तक में पढ़ लिया था कि अपने से तगड़े प्रतिद्वंद्वी के मुँह पर एक घूँसा मार दिया जाए तो थोड़ी देर के लिए वह व्यक्ति मूर्च्छित हो जाएगा। इस नुस्खे की आजमाइश के लिए सुखदेव निकल पड़ा। बाजार में एक लंबा-चौड़ा पहलवान जा रहा था। उसके सामने पहुँचकर सुखदेव ने उसके मुँह पर एक घूँसा जड़ दिया। उस पहलवान की आँखों के सामने अँधेरा छा गया और वह दोनों हाथों से अपने सिर को थामकर वहीं बैठ गया। सुखदेव के लिए खिसक जाने का यह बहुत अच्छा अवसर था; लेकिन इस अवसर का लाभ न उठाकर वह वहीं खड़ा रहा। मूर्च्छा दूर होने पर वह पहलवान उठा और उसने आक्रमणकारी को सामने ही पाया। बस, फिर क्या था! वह सुखदेव पर पिल पड़ा। खूब मरम्मत की। सुखदेव पिटता रहा। लोगों ने बीच-बचाव किया और पूछा—

''तुमने ऐसा क्यों किया?''

सुखदेव का उत्तर था—

"पहले मैंने इन्हें मारा है। अब ये मुझे मार लें। मैं यह देखने के लिए इनके पास खड़ा रहा कि एक घूँसे से किसी व्यक्ति को कितनी देर तक मूर्च्छा रहती है।"

सुखदेव और भगतसिंह पहले तो कभी-कभी घर से गायब रहा करते थे, लेकिन आवश्यकता पड़ने पर उन लोगों ने हमेशा के लिए अपने-अपने घर छोड़ दिए। अब वे पूर्णरूप से क्रांतिकारी थे।

क्रांतिकारियों की एक बैठक ८ और ९ सितंबर, १९२८ को दिल्ली में फिरोजशाह कोटला के किले के खंडहरों में आयोजित की गई। इसमें सुखदेव और भगतसिंह दोनों ही सम्मिलित हुए। इस मीटिंग में क्रांतिकारियों की एक केंद्रीय समिति का निर्माण किया गया। इस मीटिंग के निर्णय के अनुसार सुखदेव को पंजाब प्रांत का संगठनकर्ता नियुक्त किया गया। सुखदेव ने पूरे पंजाब में घूम-घूमकर विश्वस्त व्यक्तियों को क्रांतिकारी पार्टी में सम्मिलित किया। उसने सिद्ध कर दिया कि उसमें संगठन की अद्‌भुत क्षमता है। एक प्रांत के नेता के नाते उसे अपने साथियों की सुख-सुविधाओं का पूरा ध्यान रहता था। अपनी ओर से तो वह हमेशा ही लापरवाह रहता था।

घटनाक्रम के अंतर्गत जब २० अक्तूबर, १९२८ को साइमन कमीशन लाहौर पहुँचा तो लाहौर में उसका घोर विरोध किया गया। विरोध प्रदर्शन में वयोवृद्ध नेता लाला लाजपतराय बुरी तरह चोट खा गए और १७ नवंबर, १९२८ को उनका देहावसान हो गया। यद्यपि सैद्धांतिक रूप से सुखदेव और भगतसिंह की लालाजी से पट नहीं रही थी; पर लालाजी की मृत्यु के पश्चात् उनकी मृत्यु का बदला लेने का निर्णय उन दोनों ने लिया और इस प्रश्न को केंद्रीय समिति में रखकर उसकी स्वीकृति ले ली गई। योजना को अंतिम रूप देने चंद्रशेखर आजाद और कई चुने हुए साथी लाहौर पहुँच गए। कौन कहाँ ठहरेगा और 'एक्शन' के बाद किसको कहाँ पहुँचाया जाएगा, इस सबका प्रबंध सुखदेव ने किया और बहुत उत्तम प्रबंध किया।

योजना के परिणामस्वरूप सांडर्स मारा गया। उसके वध के पश्चात् दुर्गा भाभी से मिलकर भगतसिंह और राजगुरु को सुरक्षापूर्वक लाहौर से बाहर निकालने का काम सुखदेव ने ही किया। लाहौर से निकलकर भगतसिंह कलकत्ता पहुँचा। वहाँ के क्रांतिकारियों के साथ उसने परिचय स्थापित किया। यतींद्रनाथ दास भगतसिंह और उनके साथियों को बम बनाना सिखाने के लिए सहमत हो गए। बम निर्माण का प्रशिक्षण आगरा नगर में आयोजित किया गया। आगरा में क्रांतिकारियों का अच्छा-खासा जमघट हो गया। बम निर्माण का प्रशिक्षण भी होता और खूब हो-हल्ला भी। सुखदेव भी बम निर्माण कला में पारंगत हो गया।

बचपन में सुखदेव ने अपने एक हाथ में 'ॐ' और अपना नाम 'सुखदेव' गुदवा लिया था। उसने सोचा कि क्रांतिकारियों के शरीर पर अपनी शिनाख्तगी का कोई चिह्न नहीं होना चाहिए। पिकरिक एसिड बनाने के लिए उन लोगों के पास नाइट्रिक एसिड तो रहता ही था। एक दिन अवसर पाकर सुखदेव ने नाइट्रिक एसिड की बोतल उठा ली और एक काड़ी से अपने हाथ के गुदे हुए भाग पर अच्छी तरह एसिड लगा लिया। हाथ की चमड़ी जल गई और काफी सूजन आ गई। बुखार भी आ गया। सुखदेव ने साथियों को यह तनिक भी अनुभव नहीं होने दिया कि उसे कोई कष्ट है। अपने सारे काम और साथियों से छेड़खानियाँ यथावत् करता रहा। किसी प्रकार उसका जख्म किसी साथी को दिखाई दे गया। भगतसिंह और चंद्रशेखर आजाद ने उसका माकूल इलाज कराने का भरपूर आग्रह किया; पर वह सुखदेव था कि उसने जख्म पर मरहम भी नहीं लगाया। प्रशिक्षण समाप्त होने पर उसी प्रकार वह लाहौर चला गया। वहाँ भी उसने किसीको कुछ नहीं बताया।

लाहौर में साथी भगवतीचरण का घर क्रांतिकारियों का अड्डा था। सुखदेव वहाँ जा पहुँचा। भगवतीचरण तो उस समय घर पर थे नहीं, दुर्गा भाभी ऊपर के कमरे में खाना बना रही थीं। सुखदेव नीचे के कमरे में बैठ गया। उसका ध्यान अपने हाथ की तरफ गया और उसने पाया कि एसिड से जलाने पर भी गुदे हुए नाम का कुछ भाग मिटा नहीं है। भगवतीचरण की मेज की दराज से मोमबत्ती निकाली और उसे जलाकर टेबल पर रख दी। गुदे हुए नाम का वह भाग, जो मिट नहीं पाया था, उसने मोमबत्ती की लौ के ऊपर कर लिया। हाथ की खाल जल-जलकर टपकने लगी। जीवित चमड़ी जलने की दुर्गंध जब दुर्गा भाभी की नाक तक पहुँची तो झट से नीचे आईं और सुखदेव को हाथ की चमड़ी जलाते हुए देख लिया। दुर्गा भाभी को देखकर सुखदेव ने मोमबत्ती बुझा दी और कहा—

"बस अब काम हो गया।"

लाहौर में सुखदेव ने बम बनाने का कारखाना खोल दिया। एक मिस्त्री से वे खोल ढलवाने लगे। बम अच्छे बनने लगे।

इसी बीच केंद्रीय समिति ने निर्णय लिया कि 'जन सुरक्षा बिल' और 'औद्योगिक विवाद बिल' का विरोध करने के लिए दो साथी दिल्ली के असेंबली भवन में बम विस्फोट कर विरोध प्रकट करें। जब सुखदेव को मालूम हुआ कि असेंबली में विस्फोट करनेवालों में भगतसिंह नहीं होगा तो उसको यह अच्छा नहीं लगा। वह चाहता था कि बम फेंकनेवालों में भगतसिंह भी हो। वह यह भी जानता था कि भगतसिंह की गिरफ्तारी का मतलब होगा, उसको फाँसी; क्योंकि वह सांडर्स वध में सम्मिलित था। यह जानते हुए भी सुखदेव चाहता था कि यदि

भगतसिंह उस कार्य से पीछे रहा तो जमाना उसे माफ नहीं करेगा और यह कहेगा कि भगतसिंह कायर था, जो जोखिम के काम से पीछे हट गया। सुखदेव को ज्ञात था कि लाहौर हाई कोर्ट ने भाई परमानंद पर इसी प्रकार का लांछन लगाया था। अपना निर्णय लिखते हुए न्यायाधीश महोदय ने भाई परमानंद के विषय में लिखा था—

'भाई परमानंद इस क्रांतिकारी संगठन का मस्तिष्क और सूत्रधार है; परंतु व्यक्तिगत रूप से यह आदमी कायर है। यह संकट के समय दूसरों को आगे झोंककर स्वयं अपने प्राण बचाने की चेष्टा करता रहता है।'

सुखदेव का मन इसी बात से दुःखी था कि मेरे सबसे प्रिय साथी को कायर कहकर कोई नहीं पुकारे। जब भगतसिंह से उसकी भेंट हुई तो उसने यही प्रश्न किया कि बम फेंकनेवालों में तुम्हारा नाम क्यों नहीं है? भगतसिंह की यही सफाई थी कि पार्टी ने ही मुझे पीछे रखने का फैसला किया है। इसपर सुखदेव बिगड़ खड़ा हुआ। उसने भगतसिंह को आड़े हाथों लेते हुए कहा—

''तुममें अहंकार आ गया है। तुम समझने लगे हो कि दल का सारा दारोमदार अकेले तुम्हारे सिर पर ही है। तुम मौत से डरने लगे हो। जब तुम मानते हो कि तुम्हारे सिवा दूसरा कोई अदालत में दल के उद्‌देश्य को अच्छी तरह नहीं रख सकेगा, तो फिर तुमने केंद्रीय समिति को यह फैसला क्यों लेने दिया कि तुम्हारे स्थान पर और कोई बम फेंकने जाएगा? क्या तुम नहीं जानते कि लाहौर हाई कोर्ट ने जो फैसला भाई परमानंद के लिए लिखा था, वही तुम्हारे लिए भी लिखा जाएगा। आनेवाला युग तुम्हें कायर कहकर पुकारेगा।''

भगतसिंह ने सुखदेव के कथन का जितना प्रतिरोध किया, उतना ही वह कठोर होता गया। भगतसिंह ने कहा—

''तुम मेरा अपमान कर रहे हो।''

इसके उत्तर में सुखदेव का कथन था—

''मैं अपने मित्र के प्रति अपना कर्तव्य पूरा कर रहा हूँ।''

तनावपूर्ण वातावरण में दोनों एक-दूसरे से बिदा हो गए। भगतसिंह ने केंद्रीय समिति की बैठक बुलवाई और इस बात पर अड़ गया कि असेंबली में बम फेंकनेवालों में एक, मैं अवश्य होऊँगा। उसकी जिद के सामने केंद्रीय समिति को झुकना पड़ा। सुखदेव भी उस मीटिंग में सम्मिलित था। जब यह निर्णय हो गया कि भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त दिल्ली असेंबली में बम फेंकने जाएँगे तो सुखदेव दिल्ली से लाहौर चला गया। वह सारे रास्ते रोता हुआ गया। उसे दुःख था कि अपने सबसे प्रिय साथी के प्रति उसे इतना कठोर होना पड़ा। लाहौर पहुँचकर उसने दुर्गा

भाभी और सुशीला दीदी से कहा—

"यदि भगतसिंह से आखिरी बार मिलना चाहती हो तो दिल्ली चली जाओ।"

उन दोनों ने देखा कि रोने के कारण सुखदेव की आँखें सूजी हुई थीं। आज भगतसिंह का नाम जमाने पर जितना छाया हुआ है, उसके पीछे सुखदेव का ही हाथ था।

लाहौर में सुखदेव की देखरेख में बम बनाने की फैक्टरी बहुत अच्छी तरह चल रही थी; लेकिन पुलिस को उसका सुराग भी मिल गया। एक पुलिसवाले ने एक मिस्त्री के घर जब बम का खोल देखा तो उसकी समझ में नहीं आया कि यह क्या वस्तु है। मिस्त्री ने बताया कि एक बाबू आया करता हैं और ये चीजें बनवाता रहता है। नागरिक वेश में पुलिस निगरानी रखने लगी। एक दिन सुखदेव जब खोल लेकर जाने लगा तो उस मिस्त्री ने पुलिसवाले को बता दिया कि वह बाबू ही ये चीजें बनवाता रहता है। पुलिसवाला सुखदेव के पीछे-पीछे गया और वह स्थान देख आया, जहाँ सुखदेव गया था। दल-बल के साथ पुलिस वहाँ पहुँच गई और सुखदेव को बम फैक्टरी में ही गिरफ्तार कर लिया।

लाहौर पुलिस ने सुखदेव से क्रांतिकारियों के पते-ठिकाने और बम बनाने की अन्य फैक्टरियों के विषय में पूछताछ प्रारंभ कर दी। वह सुखदेव, जो अपनी सहन शक्ति की कई बार परीक्षाएँ ले चुका था, पुलिस द्वारा बिना यातना दिए ही बयान देने के लिए राजी हो गया। उसने कुछ क्रांतिकारियों के पते-ठिकाने बता भी दिए। जब साथियों ने सुना कि सुखदेव जैसा क्रांतिकारी कच्चा पड़ गया तो उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ और उन लोगों ने बुरा भी माना। बाद में उन लोगों को पता चला कि सुखदेव ने अपने उन्हीं अड्डों के पते दिए थे, जिन्हें क्रांतिकारी लोग खाली कर चुके थे। इस प्रकार वह पुलिस की यातनाओं से भी बच गया और दल के प्रति विश्वासघात भी नहीं हुआ।

दिल्ली असेंबली में बम विस्फोट करने के उपलक्ष्य में जो मुकदमा चला, उसमें भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त को आजन्म कारावास का दंड सुनाया गया। यह सुराग भी मिल गया कि लाहौर में सांडर्स-वध में भगतसिंह का हाथ था। अलग से मुकदमा चलाने के लिए उसे लाहौर जेल में भेज दिया गया। उन लोगों का एक साथी जयगोपाल पुलिस का मुखबिर बन गया। बिहार का फणींद्र घोष और दिल्ली का कैलाशपति भी गिरफ्तार होने पर मुखबिर बन गए। इन लोगों की सूचनाओं से कई क्रांतिकारी गिरफ्तार कर लिये गए और उन सबपर 'लाहौर षड्यंत्र केस' नाम से मुकदमा चलाया गया। लाहौर जेल में सुखदेव और भगतसिंह का फिर मिलन हो

गया। दोनों फिर पूर्ववत् मित्र थे।

लाहौर जेल में क्रांतिकारियों के साथ मामूली कैदियों जैसा व्यवहार किया जाता था। उसके विरोध में क्रांतिकारी कैदियों ने भूख हड़ताल करने का फैसला कर लिया।

क्रांतिकारियों का अनशन प्रारंभ हो गया। पहले दस दिन तक तो जेल अधिकारियों ने उनकी तरफ कोई ध्यान नहीं दिया। लेकिन जब उनकी हालत बिगड़ने लगी तो जेल के अधिकारियों ने सोचा कि कोई मर न जाए, अतः उन्होंने अनशनकारियों को बलात्पान कराने की योजना बना डाली।

बलात्पान कराने के लिए बारह-पंद्रह व्यक्तियों का दल निकलता था। इनमें एक डॉक्टर, एक जेल का दारोगा, कुछ कैदी वार्डर और कुछ अन्य तगड़े-तगड़े व्यक्ति रहते थे। अनशनकारी की कोठरी में पहुँचकर ये लोग अनशनकारी को जमीन पर पटक लेते थे और कुछ लोग उसके पैरों को और कुछ उसके हाथों को जकड़ लेते थे। एक तगड़ा व्यक्ति अनशनकारी के सिर को अपनी जाँघों के बीच में दबोच लेता था। यह हो जाने पर डॉक्टर अनशनकारी की छाती पर बैठ जाता था और रबड़ की एक नली उसकी नाक में घुसेड़कर गले के नीचे तक पहुँचा देता था। फिर वह नली के दूसरे सिर पर एक कीप लगाकर उसमें दूध उड़ेलना प्रारंभ कर देता था। इस प्रकार लगभग दो गिलास दूध अनशनकारी के पेट में उतार दिया जाता था। यही क्रम हर दिन चलता था।

बलात्पान करानेवालों का दल जब सुखदेव की कोठरी के सामने पहुँचा और उसकी कोठरी का ताला खोला गया तो सुखदेव तीर की भाँति दरवाजे से निकलकर भागा और किसीकी पकड़ में न आने के लिए अहाते के अंदर इधर-उधर भागता रहा तथा पकड़नेवालों को छकाता रहा। उसके पेट में दस दिन से अन्न का एक कण भी नहीं गया था, फिर भी उसकी फुरती और शक्ति देखने लायक थी। जब वह पकड़ लिया गया तो उसने मारपीट प्रारंभ कर दी। उसने किसीको घूँसा मारा, किसीको लतियाया और किसीको दाँतों से काट लिया। यह स्वाभाविक ही था कि मार उसको भी खानी पड़ी। अब लोग उसे कंधों पर लादकर ले जाने लगे। जेल का दारोगा उसे अपने बेंत से धमकाता हुआ उसके पैरों के निकट चल रहा था। सुखदेव ने झटका देकर अपनी एक टाँग मुक्त कर ली और कंधों पर लेटे-लेटे ही कसकर एक लात दारोगा की छाती में मार दी। दारोगा चारों खाने चित धरती पर गिर पड़ा। सुखदेव की विद्रूप-भरी मुसकराहट मानो उससे कह रही थी—'कहो बच्चू, और बेंत दिखाओगे!''

यह स्वाभाविक था कि जमीन से उठकर दारोगा अपने बेंत से सुखदेव की

विकट पिटाई करता; पर ऐसा नहीं हुआ। अपने कपड़े झाड़ता हुआ वह यह कहते हुए चला गया—"लिटाकर इसकी अच्छी खबर लेना।"

सुखदेव को कोठरी के अंदर ले जाकर लिटा दिया गया और तगड़े-तगड़े व्यक्तियों ने उसे दबोच लिया। उसकी छाती पर बैठकर डॉक्टर उसके पेट में दूध उड़ेलकर चला गया।

जब दूध सुखदेव के पेट में पहुँच गया तो उसे बहुत लज्जा आई। उसने अपने गले में उँगलियाँ डालकर उलटी करके दूध बाहर निकाल दिया। दो-तीन दिन तक ही वह इस क्रिया से दूध बाहर निकाल सका; क्योंकि गले पर उँगलियों का असर होना बंद हो गया। सुखदेव ने सुन रखा था कि यदि मक्खी पेट के अंदर पहुँच जाए तो उलटी हो जाती है। एक मक्खी पकड़कर वह उसे पानी के सहारे निगल गया। उसे फिर भी उलटी नहीं हुई। उसने सोचा कि उलटी नहीं हो रही है तो किसी जगह चमड़ी काटकर उतना खून शरीर से निकाल देना चाहिए, जितना खून एक दिन के दूध से बनता है। उसने हजामत बनाने का ब्लेड उठाया और उससे अपनी चमड़ी काटने को तैयार हो गया। इतने में उसे खयाल आया कि लोग यह दोषारोपण करेंगे कि सुखदेव आत्महत्या कर रहा था। उसने ब्लेड से खून निकालने का विचार छोड़ दिया। अगले दिन जब बलात्पान करानेवालों का दल आया तो उनके हाथ से दूध लेकर राजा बेटा की भाँति वह स्वयं पी गया। जब उसके अन्य साथियों को यह मालूम हुआ तो उन लोगों ने बहुत बुरा माना और उसपर अनशन तोड़ने का दोष लगाया। सेंट्रल जेल से भगतसिंह भी उसके पास पहुँचा और उसे समझाने का यत्न किया। सुखदेव का उत्तर था—

"अनशन की सफलता किसीके मरने में है। डॉक्टर लोग अनशन से मरने नहीं देंगे और गला काटकर मैं मरना नहीं चाहता।"

भगतसिंह ने विकल्प प्रस्तुत करते हुए कहा—

"तुम डॉक्टरों के काम में बाधा पहुँचाए बिना नली से दूध पी लिया करो।"

इसपर सुखदेव का उत्तर था—"मैं अपने आपको धोखा नहीं दे सकता।"

अनशन का वह दौर किसी प्रकार समाप्त हुआ। कुछ दिन बाद जेल अधिकारियों की वादाखिलाफी के कारण उन लोगों को फिर अनशन का सहारा लेना पड़ा। पंद्रह दिन डॉक्टरों ने शांति के साथ गुजर जाने दिए। उन्होंने देखा कि सुखदेव की हालत बहुत बिगड़ गई है। उसके मुँह में छाले पड़ गए थे और जबान ऐंठने लगी थी। उसमें बोलने की शक्ति भी नहीं रह गई थी। उसे अस्पताल भेज दिया गया। डॉक्टरों ने मालूम किया कि सुखदेव ने पंद्रह दिन से पानी भी नहीं पिया। डॉक्टरों ने उसे बलपूर्वक पानी पिलाना चाहा। प्रतिरोध करने के लिए वह

उठकर भागा; लेकिन गिरकर बेहोश हो गया। बेहोशी की हालत में ही थोड़ा पानी उसके पेट में पहुँचा दिया गया। कुछ देर बाद उसे होश आ गया। यदि डॉक्टर लोग पानी पिलाने में तनिक देर और करते तो अनशन के फलस्वरूप यतींद्रनाथ दास के बाद दूसरा शहीद सुखदेव होता।

क्रांतिकारियों पर 'लाहौर षड्यंत्र केस' नाम से जो मुकदमा चल रहा था, उसकी कार्रवाई के प्रति सुखदेव पूर्णरूप से उदासीन था। अपने बचाव के लिए कुछ भी करना वह उचित नहीं समझता था। अधिकांश समय वह किसी-न-किसी किताब में डूबा रहता था। कभी-कभी अदालत में उपस्थित अपने रिश्तेदारों को देखने के लिए वह नजर उठाता था और फिर पुस्तक के पन्नों में खो जाता था। अपनी सफाई के लिए नहीं, अदालत की कार्रवाई में वह उसी हद तक रुचि लेता था, जिस हद तक अदालत को अपने प्रचार का मंच बनाया जा सकता था। यदि कभी वह रुचि लेता था तो पुलिस या जेल अधिकारियों से उलझने में और साथियों के हिस्से की मार खाने में। एक बार तो भरी अदालत में ही पुलिस ने क्रांतिकारियों को इतना मारा था कि पिटते-पिटते कई लोग बेहोश हो गए थे। जब मारपीट होती थी तो उसमें सुखदेव, भगतसिंह, जयदेव कपूर और महावीरसिंह मार लगाने में एवं मार खाने में और लोगों की अपेक्षा अगुआ रहते थे। वे अपने नाजुक साथियों को बचा लेते थे।

आखिर वह दिन भी आ गया, जब ७ अक्तूबर, १९३० को मुकदमे का फैसला सुना दिया गया। उस फैसले के अनुसार सुखदेव, भगतसिंह और राजगुरु को फाँसी की सजा सुनाई गई। फैसले में सुखदेव पर सर्वाधिक आरोप लगाए गए थे। उसके विषय में लिखा गया था—

'सुखदेव षड्यंत्र का मस्तिष्क था और भगतसिंह उसका दाहिना हाथ।'

सुखदेव ने अपने फाँसी के दंड को खिलाड़ी की भावना के साथ स्वीकार किया। फाँसी की सजा बदलने के लिए जो बहुमुखी प्रयत्न हो रहे थे, उनके प्रति भी सुखदेव उदासीन था। फाँसी के पहले उसने गांधीजी को जो पत्र लिखा, उसका एक अंश द्रष्टव्य है—

'लाहौर षड्यंत्र केस के सजायाफ्ता तीन कैदी, जो सौभाग्य से मशहूर हो गए हैं और जिन्होंने जनता की बहुत अधिक सहानुभूति प्राप्त की है, वे क्रांतिकारी दल का बड़ा हिस्सा नहीं हैं। उनका भविष्य ही उस दल के सामने एकमात्र प्रश्न नहीं है। सच पूछा जाए तो उनकी सजा घटाने की अपेक्षा उनके फाँसी पर चढ़ जाने से ही अधिक लाभ होने की आशा है।'

आखिर २३ मार्च, १९३१ की वह संध्या भी उपस्थित हुई, जब सुखदेव,

भगतसिंह और राजगुरु को फाँसी के मंच पर ले जाया गया। सुखदेव ने जी भरकर 'इनकलाब जिंदाबाद' के नारे तो लगाए ही, उसने 'भगतसिंह जिंदाबाद' और 'राजगुरु जिंदाबाद' के नारे भी लगाए। बड़ी हसरत-भरी नजर से उसने फाँसी के फंदे को देखा। उसने फंदे को चूमा, गले में डाला और झूल गया।

□

★ सुखदेवराज



सुखदेवराज

क्रांतिकारी सुखदेवराज को जब तीन वर्ष की सपरिश्रम सजा सुना दी गई तो जेल की असुविधाओं को दूर करने के लिए उसने अनशन आदि का सहारा न लेकर क्रांतिकारी उपायों से काम लिया। एक सुबह कर्मशाला अधीक्षक ने एक हजार लिफाफे बनवाने के लिए कागज और गोंद देते हुए सुखदेवराज से कहा—

"लिफाफे शाम तक तैयार हो जाने चाहिए। मैं स्वयं उन्हें लेने आऊँगा।"

शाम हो गई। कर्मशाला अधीक्षक मेजर करी ने सुखदेवराज के पास पहुँचकर कहा—

"एक हजार लिफाफे आपने बना लिये होंगे। लाइए, वे लिफाफे मुझे दीजिए।"

सुखदेवराज ने भोलेपन का अभिनय करते हुए कहा—

"अरे! आप तो बड़े भुलक्कड़ हैं। कागज देकर जब आप गए थे, उसके कुछ समय पश्चात् ही तो एक आदमी को यह कहलाकर भेजा था कि आज रसोईघर में लकड़ियाँ नहीं हैं, ये कागज जलाकर ही खाना बनेगा। अगर वे कागज जलाए न गए हों तो रसोईघर से माँग लीजिए।"

कर्मशाला अधीक्षक झल्लाकर रह गया। उसने जाकर जेल अधीक्षक से शिकायत की। जेल अधीक्षक ने उसी पर दोषारोपण करते हुए कहा—

"भले आदमी! यह तो देख लिया होता कि काम किससे कराना है। क्या आज तक सुखदेवराज से कोई काम ले सका है!"

परिणाम यह हुआ कि आगामी छह महीने तक सुखदेवराज को कोई काम नहीं दिया गया। छह महीने बाद जब कर्मशाला अधीक्षक का मन फिर भुरभुराया तो वह कैदियों के कुछ फटे हुए कपड़े लेकर सुखदेवराज के पास फिर पहुँचा और बोला—

"देखिए, आपको बहुत ही हलका काम दे रहा हूँ। ये कपड़े कहीं-कहीं से फट गए हैं। शाम तक आप इनकी सिलाई करके वापस कर दीजिए। मुझे विश्वास है कि आप यह काम कर देंगे।"

"क्यों नहीं!" सुखदेवराज ने संक्षिप्त उत्तर दे दिया।

शाम को कर्मशाला अधीक्षक मेजर करी कपड़े लेने सुखदेवराज के पास पहुँचे तो उन्होंने देखा कि कपड़े पहले से ज्यादा फटे हुए थे। उन्होंने जवाब तलब किया तो उत्तर मिला—

"मैं क्या करूँ! कमबख्त ये कपड़े ही ऐसे गए-बीते हैं कि मैंने एक टाँका लगाने के लिए सुई चलाई तो चार टाँके उधड़ जाते थे। यदि सिलाई बहुत ज्यादा जरूरी हो तो इन्हें मेरे पास छोड़ जाइए। मैं इन्हें कल ठीक करने का प्रयत्न करूँगा।"

कर्मशाला अधीक्षक का उत्तर था—

"मैं मूर्ख नहीं हूँ, जो चिंदियाँ कराने ये कपड़े तुम्हारे पास छोड़ जाऊँ!"

इस बार उसने जेल अधीक्षक से भी सुखदेवराज की शिकायत नहीं की। इस घटना के पश्चात् किसीने भी सुखदेवराज से यह नहीं कहा कि तुम्हें सश्रम कारावास का दंड मिला है और तुम्हें यह काम करना है।

सुखदेवराज का क्रांतिकारी जीवन लगभग सन् १९२९ से प्रारंभ हुआ, जब एक सभा में उसकी भेंट क्रांतिकारी भगवतीचरण से हुई। प्रथम भेंट में ही वह भगवतीचरण का शिष्य बनकर रह गया। वह भगवतीचरण के क्रांतिकारी रूप और मानवीय रूप, दोनों से ही बहुत अधिक प्रभावित हुआ। भगवतीचरण की प्रेरणा और उनके आर्थिक सहयोग से सुखदेवराज ने अपनी छूटी हुई पढ़ाई फिर से प्रारंभ की, बी.ए. पास किया और एम.ए. की कक्षा में प्रवेश लिया। वह निर्णय नहीं कर पाता था कि भगवतीचरण अधिक महान् हैं या उनकी पत्नी श्रीमती दुर्गा देवी बोहरा, जिन्हें सभी क्रांतिकारी 'दुर्गा भाभी' कहकर पुकारते थे।

भगवतीचरण ने क्रांतिकारियों से संपर्क स्थापित करने सुखदेवराज को कलकत्ता भेजा और पुलिस से चौकन्ना रहने की चेतावनी भी दी। कुछ दिन

कलकत्ता में रहने के पश्चात् सुखदेवराज ने अनुभव किया कि वह काम पूरा नहीं हो रहा है, जिस काम के लिए मैं यहाँ आया हूँ। एक दिन बर्मा घूम आने का विचार उठ खड़ा हुआ। उन दिनों बर्मा भारत का ही अंग था। कलकत्ता से वह बर्मा पहुँचा। बर्मा में वह जासूसों के जाल में फँस गया। एक आर्यसमाज मंदिर में ठहरने का प्रबंध कर लिया। जब आर्यसमाजवालों ने देखा कि इसके पीछे तो खुफिया पुलिस लगी हुई है, तो उन्होंने अपने यहाँ से सुखदेवराज को निकाल दिया। अब वह एक गुरुद्वारा में जाकर टिक गया। एक दिन नहाते समय ग्रंथीजी ने देखा कि वह व्यक्ति धोती के नीचे कच्छा नहीं पहने है। इस अपराध के कारण उसे गुरुद्वारा से भी निकाल दिया गया।

सी.आई.डी. के लोगों को चकमा देकर सुखदेवराज वापस कलकत्ता पहुँच गया। जहाज से उतरने पर उसने देखा कि पुलिस उसके स्वागत के लिए खड़ी है। उस समय वह फरार नहीं था, उसपर निगरानी रहती थी। कलकत्ता में वह अपने एक परिचित मित्र के साथ शांति निकेतन में ठहरा और गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर के दर्शन किए। एक सी.आई.डी. वाले को पटाकर वह जेब से कुछ खर्च किए बिना लाहौर पहुँच गया। जब टिकट चैकर पूछता था तो सी.आई.डी. वाला अपना परिचय-पत्र दिखा देता था और कह देता था कि हम दोनों सरकारी काम से जा रहे हैं। लाहौर पहुँचकर उस सी.आई.डी. वाले का दायित्व समाप्त हो गया और वहाँ की पुलिस को सूचना देकर वह कलकत्ता वापस चला गया।

घटनाक्रम में जब साथी भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने दिल्ली असेंबली में बम विस्फोट करके अपनी गिरफ्तारियाँ दे दीं और जब उन लोगों को लाहौर जेल में रखा गया तो साथी लोगों की योजना बनी कि भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त को जेल से छुड़ाया जाए। पूरी योजना भगवतीचरण ने तैयार की और चंद्रशेखर आजाद ने उसे स्वीकार कर लिया। दिलेर साथियों को लाहौर बुला लिया गया तथा भगतसिंह और दत्त को जेल से छुड़ाने की तारीख १ जून, १९३० तय कर ली गई।

लाहौर में बहावलपुर रोड पर एक कोठी का आधा हिस्सा किराए पर ले लिया गया और उसमें रहकर क्रांतिकारी लोग अपनी योजना कार्यान्वित करने की तैयारी करने लगे। बम परीक्षण के लिए २८ मई, १९३० को भगवतीचरण, सुखदेवराज और विश्वनाथ वैशंपायन रावी के किनारे जा पहुँचे। सुखदेवराज विश्वविद्यालय के बोट क्लब का सेक्रेटरी था, अत: एक नाव द्वारा कुछ रास्ता पार करने के पश्चात् वे लोग एक स्थान पर किनारे लगे और जंगल में पहुँचकर परीक्षण के लिए उन्होंने बम निकाला। उसके परीक्षण का दायित्व भगवतीचरण ने अपने ऊपर लिया तथा सुखदेवराज और वैशंपायन को छिपने के लिए ओट लेने का निर्देश दिया। दुर्भाग्य

से वह बम भगवतीचरण के हाथों में ही फट गया। उनका एक हाथ कलाई के पास से उड़ गया और दूसरे हाथ की उँगलियाँ गायब थीं। पेट में भी एक बड़ा जख्म हो गया और आँतें निकलकर बाहर आ गईं। उनका चश्मा भी फूट गया और काँच के टुकड़े एक आँख के अंदर चले गए। सुखदेवराज के पैर की एड़ी में बम का टुकड़ा घुस गया और बहुत खून निकलने लगा।

वैशंपायन ने लाहौर के रास्ते देखे नहीं थे, इसलिए वे भगवतीचरण के पास रहे और लँगड़ाते-लँगड़ाते सुखदेवराज शहर की तरफ चल दिया। एक प्याऊ के पास उसे एक ताँगा मिला। उससे कह दिया कि वृक्ष से गिर पड़ने के कारण ज्यादा चोट लग गई है। प्याऊवाले और ताँगेवाले ने उसे सहारा देकर ताँगे पर चढ़ाया।

कोठी पर पहुँचने पर सुखदेवराज ने चंद्रशेखर आजाद को सारा हाल बता दिया। भगवतीचरण के पास सहायता पहुँचाई गई; पर वे बच नहीं सके। एक रात उस कोठी के अंदर अलमारी में रखे दो बम भी अपने आप ही फट गए और उन सभी को वह कोठी छोड़नी पड़ी। साथियों को जहाँ संभव हुआ, वहाँ रखा गया।

साथी धनवंतरी ने अपने एक परिचित डॉक्टर को सुखदेवराज का सही-सही हाल बता दिया। डॉ. आसाराम पंचरतन ने सुखदेवराज को अपने घर बुलवाकर उसके पैर का ऑपरेशन करके बम का टुकड़ा निकाल दिया। सुरक्षा की दृष्टि से जख्म भरने तक सुखदेवराज को पहले अमृतसर और फिर धर्मपुर में रख दिया गया। पैर बिलकुल ठीक हो जाने पर उसे दुर्गा भाभी के साथ बंबई भेज दिया गया।

अपने पति की मृत्यु से दुर्गा भाभी बहुत विचलित हो गई थीं और वे कोई तगड़ा एक्शन करने की जिद पर अड़ी हुई थीं। यह तय किया गया कि वे अपने सहायक के रूप में सुखदेवराज और पृथ्वीसिंह को ले जाकर बंबई के गवर्नर को गोली से उड़ाएँ, जो पहले पंजाब में भी रह चुका था और उसने क्रांतिकारियों का बहुत दमन किया था। यह पार्टी बंबई पहुँच गई; पर गवर्नर पर गोली चलाना संभव नहीं हो सका। इन लोगों ने बंबई के लेमिंग्टन रोड पुलिस स्टेशन पर हमला करके कई गोलियाँ छोड़ीं। सेना का एक अंग्रेज अफसर घायल हुआ। गोलियों की बौछार करके ये लोग अपनी कार से वापस चले आए।

बंबई पुलिस ने बहुत तत्परता दिखाई और रात को ही उस ड्राइवर को गिरफ्तार कर लिया, जो इनकी कार को चला रहा था। कार भी पकड़ी गई। हमला करनेवाले क्रांतिकारियों में से कोई भी हाथ नहीं आया। सुखदेवराज चंद्रशेखर आजाद के पास कानपुर पहुँच गया।

कई साथियों के गिरफ्तार हो जाने के कारण चंद्रशेखर आजाद का दल

बहुत छोटा रह गया। इन्हीं अवशिष्ट साथियों के साथ उन्हें पार्टी के कार्य से कभी कानपुर और कभी इलाहाबाद रहना पड़ता था। २७ फरवरी, १९३१ को वे इलाहाबाद में थे।

इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में २७ फरवरी की सुबह चंद्रशेखर आजाद और सुखदेवराज किसी गंभीर समस्या पर विचार-विमर्श कर रहे थे। उनके एक गद्दार साथी वीरभद्र तिवारी ने उनकी उपस्थिति की सूचना पुलिस को दे दी। देखते-ही-देखते पुलिस के एक बड़े दल ने अल्फ्रेड पार्क को घेर लिया। स्पेशल ब्रांच का सुपरिंटेंडेंट नाटबाबर अपने एक अंगरक्षक के साथ नागरिक वेश में आजाद के काफी निकट पहुँच गया और बिना चेतावनी दिए आजाद पर गोली चला दी। नाटबाबर की गोली आजाद की जाँघ में समा गई। आजाद ने घिसटकर एक वृक्ष की ओट ले ली और अपनी गोली से नाटबाबर की कलाई तोड़ दी। उन्होंने अपने साथी सुखदेवराज को आदेश दिया—

''अब मैं यहाँ से भाग नहीं सकता। युद्ध करने के अतिरिक्त मेरे पास दूसरा विकल्प नहीं है। तुम यहाँ से भाग निकलो। यदि तुम जीवित रहे तो यह बता तो सकोगे कि मैंने किन स्थितियों में युद्ध करके शहादत प्राप्त की।''

आजाद का आदेश पाकर सुखदेवराज गोलियाँ चलाता हुआ उस तरफ भागा, जिधर घेरा कमजोर था। भागते-भागते वह सड़क पर पहुँच गया और पिस्तौल दिखाकर एक युवक से साइकिल छीनकर वह 'भविष्य' समाचार-पत्र के कार्यालय पहुँच गया, जहाँ वह नौकरी करता था। उधर आजाद युद्ध करते हुए शहीद हो गए।

चाँद प्रेस के अंतर्गत ही 'भविष्य' पत्र निकलता था। 'चाँद' के संपादक रामरख सहगल क्रांतिकारियों के समर्थक थे। सुखदेवराज ने सारी घटना उन्हें बता दी। सहगल ने कहा—

''तुम हाजिरी रजिस्टर में अपने हस्ताक्षर कर दो और अपने स्थान पर बैठकर काम करने लगो।''

स्थिति का अवलोकन करने के लिए सहगल स्वयं अल्फ्रेड पार्क की ओर चले गए।

सुखदेवराज ने जिस लड़के की साइकिल छीनी थी, उसका नाम और पता अखबारों में छप चुका था। उसका नाम रामकिशन मेहरा था। एक रात को सुखदेवराज साइकिल लौटाने उसके घर जा पहुँचा। साइकिल लौटाते हुए उसने टाइप की हुई एक परची भी मेहरा को दी, जिसपर अंग्रेजी में लिखा था—

'भारतीय समाजवादी क्रांतिकारी सेना के एक सैनिक ने विषम परिस्थितियों

में आपसे साइकिल उधार ली। साइकिल इस पत्र के साथ आपको लौटाई जा रही है। धन्यवाद।

—बलराज'

अपनी सुरक्षा की दृष्टि से रामकिशन मेहरा ने उसी समय पुलिस को सूचना दी। पुलिस ने साइकिल के पहियों के निशान से सुखदेवराज को खोजने का बहुत प्रयत्न किया; पर वह असफल रही।

चंद्रशेखर आजाद की शहादत के लगभग एक महीने पश्चात् भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु को फाँसी के फंदों पर झुला दिया गया। अवशिष्ट साथी मन मसोसकर रह गए। वे सोचने लगे कि अब क्या किया जाए।

पार्टी के एक सक्रिय सदस्य धनवंतरी को भी दिल्ली में गिरफ्तार कर लिया गया। धनवंतरी ने तिकड़म के आधार पर क्रांतिकारिणी सुशीला दीदी से संपर्क बना लिया। एक परची पर उन्होंने सुशीला दीदी के पास यह लिखकर भेजा—

'अगला पड़ाव : लाहौर में क्रेक योजना।'

सुशीला दीदी को यह सांकेतिक भाषा समझने में कठिनाई नहीं हुई। उसका मतलब था कि पंजाब शासन के मुख्य सचिव सर हेनरी क्रेक को गोली से उड़ाया जाए, जिसने भगतसिंह और साथियों को फाँसी पर झुलाने में प्रमुख भूमिका अदा की है।

सुशीला दीदी सुखदेवराज से मिलने लखनऊ जा पहुँचीं। उस समय सुखदेवराज लखनऊ कॉलेज के एक विद्यार्थी जगदीशचंद्र राय के साथ मेस्टन होटल में रह रहा था। जगदीशचंद्र राय भी चंद्रशेखर आजाद की शहादत के पश्चात् कुछ कर गुजरना चाहता था। सुखदेवराज को उत्तेजित करने की दृष्टि से दीदी ने उससे कहा—

''तुम पुरुष लोग कुछ नहीं कर सकते। अब हम नारियों को ही कुछ करना पड़ेगा।''

दीदी के विचार सुनकर सुखदेवराज और जगदीशचंद्र राय—दोनों दिल्ली पहुँच गए और आवश्यक योजना बनाकर वे दोनों लाहौर जा पहुँचे, जहाँ सर हेनरी क्रेक को गोली से उड़ाना था। लाहौर में सुखदेवराज और जगदीशचंद्र राय को जूतों के एक व्यापारी दुर्गादास कालिया के परिवार में ठहराया गया।

वह २ मई, १९३१ का दिन था। लीला नाम की एक लेडी डॉक्टर एक बैग लेकर दुर्गादास कालिया के घर पहुँचीं और उनकी उपस्थिति में ही वह बैग सुखदेवराज को देकर बोलीं—

''यह उपहार आपके लिए सीमा पार से आया है।''

उत्सुकतावश दुर्गादास कालिया ने वह बैग खुलवाया। उसमें कुछ नोट थे और एक बम। शाम को दुर्गादास कालिया ने सुखदेवराज से कहा—

''पुलिस को तुम्हारे यहाँ होने की सूचना मिल गई है। अपनी सुरक्षा की दृष्टि से तुम यह स्थान छोड़ दो।''

सुखदेवराज ने कहा—

''ठीक है, हम लोग फिलहाल यहाँ से चले जाते हैं और कहीं रात टिकने का प्रबंध कर लेंगे; पर आप कल दोपहर का भोजन शालीमार बाग में पहुँचा दीजिए।''

दोनों साथियों ने रात कहीं खेतों में काटी और सुबह होते ही वे ३ मई, १९३१ को शालीमार बाग पहुँच गए। दुर्गादास कालिया उन्हें भोजन दे आए। रात-भर उन लोगों को नींद नहीं आई थी। भोजन करने के बाद उन्हें नींद आ गई। काफी फासले पर दो अलग-अलग झाड़ियों की छाया में सुखदेवराज और जगदीशचंद्र राय सो गए।

इधर पुलिस के चार सौ जवानों ने शालीमार बाग को घेर लिया। जगदीश की नींद खुल गई। उसने भागने का प्रयत्न किया। पुलिस ने कोई चेतावनी दिए बिना ही उस निहत्थे नौजवान पर गोलियों की वर्षा करके उसे भून डाला। गोलियों की आवाज से सुखदेवराज की नींद खुली तो उसने देखा कि उसे कई सिपाहियों ने दबोच रखा था। गिरफ्तार करके वह जेल भेज दिया गया।

एक विशेष ट्रिब्यूनल के सामने सुखदेवराज का मुकदमा चला और बिना लाइसेंस हथियार रखने के अपराध में उसे तीन वर्ष के कारावास का दंड सुना दिया गया। लाहौर षड्यंत्र केस के अंतर्गत भी उसे तीन वर्ष की सजा हुई और दोनों सजाएँ एक साथ चलने लगीं। कुल मिलाकर उसे केवल तीन वर्ष ही जेल में रहना था। बाद में उसे पंजाब की मियाँवली जेल में भेज दिया गया। सुखदेवराज को लगा कि उसे अधिक सजा नहीं दी गई है।

□

★ सुरेंद्रनाथ पांडेय

कानपुर के जनरलगंज मोहल्ले में पुलिस ने एक मकान पर घेरा डाल रखा था। कुछ देर पहले उस मकान में गोलियाँ चल चुकी थीं। उस मकान में शिवशरन बाजपेयी नाम के एक क्रांतिकारी को पुलिस ने घेर लिया था। पुलिस और क्रांतिकारियों



सुरेंद्रनाथ पांडेय

के बीच ही गोलियाँ चली थीं। मकान के बाहर काफी संख्या में पुलिस भी थी। मकान के आसपास की गलियों में तमाशबीनों की भी भारी भीड़ थी। इसी समय एक नौजवान भी वहाँ पहुँच गया और वह यह जानने का प्रयत्न करने लगा कि मामला क्या है। उस युवक का नाम सुरेंद्रनाथ पांडेय था। लोगों ने उसे बताया कि मकान के अंदर शिवशरन नाम के क्रांतिकारी को पुलिस ने गोली मारकर गिरफ्तार कर लिया है और वह शीघ्र ही बाहर लाया जा रहा है।

कुछ देर पश्चात् पुलिस शिवशरन बाजपेयी को मकान के बाहर ले आई। क्रांतिकारी के पैर में गोली लगी थी और जख्म से काफी खून बह रहा था।

सुरेंद्रनाथ पांडेय को मालूम था कि शिवशरन बाजपेयी का घर 'धौरसलार' गाँव में है। अपना कर्तव्य समझकर वह उसके परिवारवालों को इस घटना की सूचना देने के लिए 'धौरसलार' गाँव दौड़ गया।

सुरेंद्रनाथ पांडेय स्वयं भी क्रांतिकारी विचारों का युवक था। वह भी कानपुर जिले में ही 'सचेंडी' गाँव में ८ अप्रैल सन् १९०४ में पैदा हुआ था। अपनी माता श्रीमती शारदा देवी से उसने उदारता और अपने पिता श्री हीरालाल पांडेय से उसने समाज एवं देशभक्ति के संस्कार पाए थे। श्री शिवशरन बाजपेयी की गिरफ्तारी से सुरेंद्रनाथ को बहुत सदमा पहुँचा और उसने संकल्प कर लिया कि देश के नौजवानों में जागृति लाने के लिए वह कोई संगठन खड़ा करेगा तथा वह उन्हें देशमुक्ति के मार्ग पर अग्रसर करेगा।

अपने विचारों को मूर्त्त रूप देने के लिए सुरेंद्रनाथ पांडेय ने 'क्रांति' नाम से एक मासिक पत्र का प्रकाशन प्रारंभ कर दिया। पृथ्वीनाथ हाई स्कूल में पढ़ते हुए उसका परिचय बटुकेश्वर दत्त नाम के तेजवंत युवक से हुआ। बटुकेश्वर दत्त ने सुरेंद्रनाथ पांडेय का परिचय सुरेशचंद्र भट्टाचार्य से करा दिया। उन दिनों सुरेश भट्टाचार्य हिंदुस्तान प्रजातंत्र संघ की ओर से कानपुर में क्रांति संगठन खड़ा कर रहे थे। सुरेशचंद्र भट्टाचार्य के संपर्क में आकर सुरेंद्रनाथ पांडेय स्वयं भी पक्का क्रांतिकारी बन गया और सुरेश भट्टाचार्य के माध्यम से उसका परिचय सरदार भगतसिंह एवं चंद्रशेखर आजाद से हो गया। उन दिनों भगतसिंह कानपुर में रहकर

श्री गणेशशंकर विद्यार्थी द्वारा संपादित पत्र 'प्रताप' के संपादकीय विभाग में काम कर रहे थे।

चंद्रशेखर आजाद ने सुरेंद्रनाथ पांडेय को यह दायित्व दिया कि वह काकोरी केस के अभियुक्त योगेशचंद्र चटर्जी को जेल से छुड़ाने की संभावनाओं का पता लगाए। सुरेंद्रनाथ पांडेय एवं उसके साथियों ने यह काम बड़ी सूझबूझ के साथ किया और उन्होंने अपनी तिकड़म से फतहगढ़ जेल के वार्डर को अपने पक्ष में कर लिया। किसी प्रकार यह भेद जेल के बड़े अधिकारियों को मालूम हो गया और जेल के वार्डर को सेवा से निलंबित कर दिया गया। योगेशचंद्र चटर्जी को जेल से छुड़ाने की योजना कार्यान्वित नहीं हो सकी। पुलिस का खुफिया विभाग इन नौजवान क्रांतिकारियों के पीछे पड़ गया और परिणाम यह हुआ कि उन सभी को भूमिगत हो जाना पड़ा। सुरेंद्रनाथ पांडेय बड़ौदा पहुँच गया और वहाँ उसने क्रांति संगठन का कार्य प्रारंभ कर दिया।

गुजरात में संगठन के कार्य को गति प्रदान कर सुरेंद्रनाथ पांडेय को फिर कानपुर लौटना पड़ा और कानपुर से उसे झाँसी जाना पड़ा; क्योंकि उन दिनों चंद्रशेखर आजाद झाँसी में रह रहे थे और कुछ मामलों में उनसे परामर्श लेना आवश्यक था। झाँसी से कानपुर लौटने के पश्चात् सुरेंद्रनाथ पांडेय पुलिस द्वारा गिरफ्तार कर लिया गया और लाहौर षड्यंत्र केस में सम्मिलित करने उसे लाहौर भेज दिया गया। उसे लाहौर की बोर्स्टल जेल में रखा गया।

भगतसिंह एवं उनके साथी क्रांतिकारियों ने जेल के दुर्व्यवहार के विरोध में अपना ऐतिहासिक अनशन प्रारंभ किया और इस अनशन ने उनके एक महत्त्वपूर्ण साथी यतींद्रनाथ दास की बलि ले ली। शासन को सुधारों के लिए झुकना पड़ा।

ब्रिटिश शासन का सिद्धांत था कि बहुत अधिक उत्तेजना और विरोध के समय वह थोड़ा झुककर सुधार कर दिया करता था; लेकिन वह संकट गुजर जाने पर वह सुधार वापस भी ले लेता था। जब उसने जेलों में किए गए सुधार वापस लिये तो सुरेंद्रनाथ पांडेय को यह सहन नहीं हुआ और दूसरी बार किए गए अनशन में उसने पानी का भी त्याग कर दिया। पानी का त्याग करने का परिणाम यह हुआ कि सात दिन पश्चात् वह बेहोश हो गया। जेल के बाहर यह समाचार पहुँचने पर जोरदार आंदोलन हुआ और शासन को झुककर फिर सुधारों की घोषणा करनी पड़ी। सुरेंद्रनाथ पांडेय के अनशनकाल में उनकी पत्नी ने भी अपने घर पर भोजन का त्याग कर दिया और उनकी मृत्यु हो गई।

लाहौर षड्यंत्र केस के अंतर्गत सुरेंद्रनाथ पांडेय के विरुद्ध कोई गंभीर आरोप सिद्ध नहीं हो सका और उन्हें मुक्त कर दिया गया।

सुरेंद्रनाथ पांडेय की जेल-मुक्ति पर लाहौर में उनकी विशाल शोभायात्रा निकाली गई। शोभायात्रा इतनी लंबी थी कि उसका छोर दिखाई नहीं देता था। जब वे कानपुर पहुँचे तो वहाँ भी उनका भव्य स्वागत हुआ। शोभायात्रा में बग्घी में उनके एक ओर उनके पिता और दूसरी ओर उनके पुत्र को बिठाया गया। उनके प्रति लोग इतने श्रद्धा-विह्वल हो उठे कि बग्घी के घोड़ों को छुट्टी देकर नौजवानों ने स्वयं ही बग्घी खींची। चंद्रशेखर आजाद ने स्वयं अपने क्रांतिकारी साथी का स्वागत समारोह देखा और उन्हें इस बात का हर्ष हुआ कि जनता क्रांतिकारियों की कद्र करने लगी है। सुरेंद्रनाथ पांडेय गोपनीय रूप से चंद्रशेखर आजाद से मिले और उन्हें आश्वासन दिया कि आवश्यकता पड़ने पर वे क्रांति के अखाड़े में कूद पड़ेंगे।

सुरेंद्रनाथ पांडेय को क्रांति के अखाड़े में फिर से कूद पड़ने की आवश्यकता शीघ्र ही पड़ गई। अवसरवादी क्रांतिकारियों की छँटनी करने के लिए चंद्रशेखर आजाद ने एक युक्ति से काम लिया। उन्होंने एक बहुत बड़े कार्य की योजना बनाई, जिसमें पकड़े जानेवाले क्रांतिकारियों को या तो फाँसी या आजन्म कारावास की सजा अवश्य मिलती। उस कार्य में सम्मिलित होने के लिए उन्होंने कानपुर के सद्‌गुरुदयाल अवस्थी और वीरभद्र तिवारी को भी आमंत्रित किया। वीरभद्र तिवारी ने उस कार्य में सम्मिलित होना तो स्वीकार कर लिया, लेकिन उसके कार्यान्वित होने के पहले ही उसने गांधीजी द्वारा संचालित सत्याग्रह आंदोलन में हिस्सा लेकर स्वयं को जेल के अंदर कर लिया। आजाद द्वारा जब वह कार्य संपन्न किया गया तो उसमें सद्‌गुरुदयाल अवस्थी सम्मिलित नहीं हुआ। इस प्रकार पार्टी के इन दो व्यक्तियों की स्थिति स्पष्ट हो गई कि उनपर भरोसा नहीं किया जा सकता। ऐसे ही समय में चंद्रशेखर आजाद ने सुरेंद्रनाथ पांडेय को फिर से पार्टी का साथ देने के लिए संदेश भेजा।

चंद्रशेखर आजाद कानपुर में ही थे। सुरेंद्रनाथ पांडेय इस अवसर की तलाश में थे कि खुफिया विभाग के आदमियों से छुटकारा मिले तो वे आजाद से भेंट करें। वे नहीं चाहते थे कि खुफिया विभाग के लोगों को कानपुर में आजाद की उपस्थिति का पता लगे। पांडेय ने खुफिया विभाग के लोगों से निवेदन भी किया कि जरूरी काम संपन्न करने के लिए वे कुछ समय के लिए उन्हें अवकाश दे दें; पर वे सहमत नहीं हुए। इसी समय पांडेय की भेंट अपने एक क्रांतिकारी साथी शालिग्राम शुक्ल से हुई। पांडेय ने शुक्ल के कान में कह दिया कि वह पुलिसवालों पर लाठियाँ चलाना प्रारंभ कर दें। शालिग्राम शुक्ल बहुत तगड़ा नौजवान था। वह लाठी लेकर खुफिया पुलिसवालों पर पिल पड़ा और उन लोगों को भागते ही बना। इस अवसर का लाभ उठाकर सुरेंद्रनाथ पांडेय चंद्रशेखर आजाद से जा मिले। वे एक बार फिर

फरारी का जीवन बिताने लगे। शालिग्राम शुक्ल को भी फरार होना पड़ा।

चंद्रशेखर आजाद चाहते थे कि वे अपने साथियों को अच्छी निशानेबाजी का अभ्यास करा दें। उन्होंने प्रस्तावित किया कि सुबह साढ़े पाँच बजे के लगभग सभी साथी ग्रीन पार्क में एकत्र हों। वहाँ से जाजमऊ जाने की योजना थी।

अगली सुबह अर्थात् १ दिसंबर, १९३० को लगभग साढ़े पाँच बजे सुरेंद्रनाथ पांडेय और शालिग्राम शुक्ल साइकिलों से ग्रीन पार्क की ओर चल दिए। अँधेरे में शालिग्राम शुक्ल की साइकिल एक गड्ढे में गिर जाने के कारण खराब हो गई। शालिग्राम ने सुरेंद्रनाथ पांडेय से कहा—

''मैं डी.ए.वी. कॉलेज के होस्टल से किसी लड़के की साइकिल लेकर आता हूँ, तुम यहीं प्रतीक्षा करना।''

डी.ए.वी. कॉलेज के होस्टल से लौटते हुए एक पुलिस दल से शालिग्राम शुक्ल की मुठभेड़ हो गई और अत्यंत वीरता के साथ युद्ध करते हुए शालिग्राम शुक्ल शहीद हो गया। उसने भी पुलिस के एक जवान की जान ले ली और कई लोगों को घायल कर दिया। चंद्रशेखर आजाद और सुरेंद्रनाथ पांडेय को अपने इस वीर साथी की शहादत का बहुत अफसोस हुआ।

कुछ दिन पश्चात् सुरेंद्रनाथ पांडेय को सबसे बड़ा आघात उस समय लगा, जब उन्होंने सुना कि उनका प्रिय साथी और हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र सेना का कमांडर इन चीफ चंद्रशेखर आजाद स्वयं इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में पुलिस के साथ युद्ध करते-करते शहीद हो गया। घटना के विस्तृत ब्योरे के साथ पांडेय को यह मालूम हुआ कि वीरभद्र तिवारी ने पुलिस की मुखबिरी करके यह सूचना दी थी कि आजाद अल्फ्रेड पार्क में हैं।

सुरेंद्रनाथ पांडेय और साथियों ने यह तय किया कि इस गद्दारी के उपलक्ष्य में वीरभद्र तिवारी को मृत्युदंड दिया जाए। योजना बना ली गई। सुरेंद्रनाथ पांडेय मेरठ जाकर अपने साथी रनवीरसिंह और भवानीसहाय को कानपुर ले आए। अश्विनी कुमार मिश्रा के घर वीरभद्र तिवारी को बुलाने की बात तय हुई। अश्विनी कुमार मिश्रा ने अपने छोटे भाई विजयकुमार मिश्रा को भी योजना में सम्मिलित किया और वीरभद्र तिवारी को बुला लाने का काम उसे दिया। मिश्रा के मकान को जानेवाली गली के प्रवेश छोर पर रनवीरसिंह और भवानीसहाय गोली चलाने के लिए तैनात किए गए। गली के निर्गम छोर पर रमेश गुप्ता को इस दृष्टिं से तैनात किया गया कि यदि वीरभद्र तिवारी बचकर निकले तो वह उसपर गोली चलाए। सुरेंद्रनाथ पांडेय ने अपने छोटे भाई वीरेंद्रनाथ पांडेय को इस कार्य के लिए नियुक्त किया कि वह घटना के पश्चात् गोली चलानेवालों को सुरक्षापूर्वक

निकाल ले जाए।

ज्यों ही वीरभद्र तिवारी ने अश्विनी कुमार मिश्रा की गली में प्रवेश किया, रनवीरसिंह और भवानीसहाय ने उसे गोली चलाने का अच्छा अवसर समझा। वीरभद्र तिवारी के भाग्य से उसी समय एक गाय बीच में आ गई और उसपर गोली नहीं चलाई जा सकी। जब वह कुछ और आगे पहुँचा तो रनवीरसिंह व भवानीसहाय ने उसपर गोलियाँ चला दीं। फासला बढ़ गया था, इसलिए निशाना ठीक नहीं लगा। गोलियों की आवाज सुनते ही वीरभद्र जमीन पर लेट गया और 'मार डाला, मार डाला' चिल्लाने लगा। वह इस प्रकार निश्चेष्ट होकर पड़ गया जैसे वह सचमुच ही मर गया हो। उसकी चाल काम दे गई और उसे मरा हुआ समझकर रनवीरसिंह, भवानीसहाय और रमेश गुप्ता वीरेंद्रनाथ पांडेय की योजनानुसार भाग खड़े हुए। उन लोगों के जाते ही वीरभद्र तिवारी उठकर भाग गया। अपनी चालाकी से उसने अपनी जान बचा ली।

रमेश गुप्ता ने वीरभद्र तिवारी को मारने का एक और प्रयत्न भी किया; पर वह कामयाब नहीं हो सका और पकड़ा गया। उसे दस वर्ष की सजा हुई।

चंद्रशेखर आजाद के जीवनकाल में ही यह निश्चय हो चुका था कि कुछ साथी रूस जाकर क्रांति संबंधी प्रशिक्षण प्राप्त करें। इस योजना के प्रबंध के लिए सुरेंद्रनाथ पांडेय और महावीरसिंह बंबई गए; पर वे वहाँ गिरफ्तार कर लिये गए और उन्हें 'दिल्ली षड्यंत्र केस' में सम्मिलित कर लिया गया। कुछ सोच-समझकर शासन ने वह केस वापस ले लिया और वे दोनों मुक्त हो गए। कुछ दिन पश्चात् सुरेंद्रनाथ पांडेय को फिर गिरफ्तार कर लिया गया और पूरे छह वर्ष उन्हें जेल में रहना पड़ा।

□

★ दीदी सुशीला मोहन

जालंधर के कन्या महाविद्यालय में पंजाब विश्वविद्यालय की परीक्षाएँ चल रही थीं। उस दिन सन् १९२७ की ८ अप्रैल थी। परीक्षार्थी छात्राएँ अपने-अपने स्थान पर बैठ चुकी थीं। उन्हें उत्तर पुस्तिकाएँ मिल चुकी थीं और वे उनपर अपने-अपने परीक्षा क्रमांक अंकित कर चुकी थीं। वे प्रश्न-पत्र मिलने की प्रतीक्षा कर रही थीं। एक निरीक्षक महोदय प्रश्न-पत्र लेने गए थे और दूसरे उसी कक्षा में उपस्थित थे। परीक्षा प्रारंभ होने की घंटी बजने में लगभग पाँच मिनट शेष थे। जो निरीक्षक

महोदय परीक्षा भवन में उपस्थित थे, उनके पास उस दिन का ताजा अखबार था। उन्होंने सोचा कि अभी समाचार-पत्र के शीर्षक देख लें, परीक्षा समाप्त होने पर उसे पढ़ लेंगे। उन्होंने समाचार-पत्र खोला तो मुख पृष्ठ पर ही बड़े-बड़े टाइप में छपा था—'लखनऊ के रिंग थिएटर का नाटक समाप्त। रामप्रसाद बिस्मिल, रोशनसिंह और राजेंद्र लाहिड़ी को फाँसी'।



दीदी सुशीला मोहन

पास बैठी एक छात्रा परीक्षार्थी ने भी यह शीर्षक पढ़ा और समाचार का उसे इतना सदमा पहुँचा कि वह बेहोश होकर वहीं लुढ़क गई। निरीक्षक महोदय तथा अन्य छात्राओं ने उसे दूसरे कमरे में पहुँचाया और उसकी देखभाल की गई। लगभग दो घंटे बाद उसे होश आया। वह उस दिन का पेपर नहीं दे सकी।

जो छात्रा काकोरी के वीरों की फाँसी का समाचार पढ़कर बेहोश हो गई थी, उसका नाम सुशीला था। वह कन्या महाविद्यालय जालंधर की छात्रा थी और बी.ए. की अंतिम वर्ष की परीक्षा दे रही थी। सुशीला उत्कट राष्ट्रीय विचारों की छात्रा थी। वह राष्ट्रीय कविताएँ भी लिखती थी और महाविद्यालय के विभिन्न समारोहों में उसकी कविताएँ अनुरोधपूर्वक सुनी जातीं और प्रशंसित होती थीं।

सुशीला फौज के अवकाशप्राप्त डॉक्टर करमचंद की पुत्री थी। उसका जन्म ५ मार्च, १९०५ में पंजाब के गुजरात जिले के 'दंतो चूहड़' गाँव में हुआ था। सुशीला दीदी के चाचा गुरदित्तामल भी डॉक्टर थे। पूरा परिवार कट्टर आर्यसमाजी और राष्ट्रभक्त था।

जिन दिनों सुशीला कॉलेज की छात्रा थी, देहरादून में सन् १९२६ में हिंदी साहित्य सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन हुआ और सुशीला को उसमें भाग लेने का अवसर मिला। उस सम्मेलन में सुशीला की राष्ट्रीय कविताएँ बहुत सराही गईं। लाहौर के राष्ट्रीय महाविद्यालय के एक छात्र भगवतीचरण के भाषण ने भी बहुत प्रशंसा प्राप्त की। लोगों का कहना था—

''इस सम्मेलन की दो उपलब्धियाँ हैं—कुमारी सुशीला और भगवतीचरण बोहरा।''

कु. सुशीला और भगवतीचरण एक-दूसरे से भी परिचित हुए। भगवतीचरण

अपने कॉलेज का एक मेधावी छात्र था। उसे अध्ययन करने का व्यसन था। उसने संसार में हुई क्रांतियों के इतिहास पढ़ रखे थे। वह एक कुशल वक्ता था। अपने कॉलेज के प्राध्यापक वर्ग में भी उसका सम्मान था। वह विवाहित युवक था तथा उसके परिवार में उसकी पत्नी के अतिरिक्त और कोई नहीं था। कु. सुशीला से परिचय हो जाने पर उसे एक अच्छी बहन मिल गई और सुशीला को एक विद्वान् भाई मिल गया। भविष्य में मिलते-जुलते रहने के वायदों का आदान-प्रदान करके वे देहरादून से बिदा हो गए।

भगवतीचरण क्रांतिकारियों की संस्था 'हिंदुस्तान प्रजातंत्र संघ' का सदस्य था। यह संघ प्रसिद्ध क्रांतिकारी शचींद्रनाथ सान्याल द्वारा स्थापित किया गया था और उसकी शाखाएँ कई स्थानों पर थीं। इस संघ की लाहौर शाखा के संचालक थे जयचंद्र विद्यालंकार। जयचंद्र विद्यालंकार लाहौर के राष्ट्रीय महाविद्यालय में प्राध्यापक थे। उनके जो छात्र क्रांतिकारी दल के सदस्य बन चुके थे, उनमें प्रमुख थे— भगवतीचरण, भगतसिंह, सुखदेव और यशपाल।

हिंदुस्तान प्रजातंत्र संघ की ओर से गोपनीय परचों के वितरण की योजना बनाई गई। जालंधर में उस परचे का वितरण हो, इस कार्य के लिए भगवतीचरण अपनी पत्नी श्रीमती दुर्गा देवी के साथ कु. सुशीला के पास पहुँच गए। सुशीला के लिए यह पहला ही क्रांतिकारी कार्य था; पर उसने यह दायित्व स्वीकार कर लिया। जालंधर में उस परचे के वितरण की इतनी सुंदर योजना सुशीला ने बनाई कि नगर के लगभग सभी प्रमुख लोगों के पास एक ही दिन में वह परचा पहुँच गया। शासन के बड़े-बड़े अफसरों के पास वह परचा डाक से भेजा गया। उस परचे के वितरण से जालंधर में तहलका मच गया। अपराधी की खोज के लिए पुलिस सक्रिय हो उठी; पर वह कुछ भी पता नहीं लगा सकी।

पंजाब विश्वविद्यालय से स्नातक की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् सुशीला ने एक वर्ष के लिए अपनी सेवाएँ अपने महाविद्यालय के लिए अर्पित कीं। इस बीच वह गोपनीय रूप से क्रांतिकारी पार्टी का काम भी करती रही। बहुधा ही वह लाहौर आती-जाती रहती थी और भगवतीचरण के परिवार में ठहरती थी। ग्वालमंडी स्थित भगवतीचरण का मकान क्रांतिकारियों का केंद्र बन गया था।

कुछ समय के लिए कु. सुशीला को जालंधर छोड़कर कलकत्ता रहना पड़ा। कलकत्ता में सर सेठ छाजूराम नाम के एक बहुत बड़े सेठ थे। अपनी पुत्री के अभिभावक और अध्यापक के रूप में उन्हें किसी ऐसी विदुषी की आवश्यकता थी, जो उनकी पुत्री को संस्कारित भी करती। जालंधर कन्या महाविद्यालय के संचालक लाला देवराज ने इस कार्य का दायित्व कु. सुशीला को दिया और सुशीला

ने इस दायित्व का निर्वाह बहुत ही योग्यता के साथ किया। सुशीला की योग्यता से प्रभावित होकर कलकत्ता के अन्य सेठ भी अपनी पुत्रियों के लिए उस जैसी अभिभावक अध्यापिकाओं की माँग करने लगे।

यह बड़े संयोग की बात थी कि क्रांतिकारिणी सुशीला का परिचय बंगाल के युवकहृदय-सम्राट् सुभाषचंद्र बोस से हो गया।

भारत में साइमन कमीशन के आगमन के विरोध में जो जुलूस कलकत्ता के बाजारों में से निकल रहा था, उसका नेतृत्व कर रहे थे कलकत्ता प्रदेश कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष श्री सुभाषचंद्र बोस। जैसे ही वह जुलूस चित्तरंजन एवेन्यू के राजपथ पर पहुँचा, सामने से तीन पंजाबी बहनें उस जुलूस में सम्मिलित हो गईं। इन तीनों बहनों में से कु. सुशीला के हाथ में तिरंगा झंडा था और कौशल्या व सुभद्रा ने एक बैनर थाम रखा था, जिसपर लिखा था—

'साइमन वापस जाओ'।

सामने से इन तीनों पंजाबी बहनों को आता हुआ देखकर सुभाषचंद्र बोस ने आगे बढ़कर उनकी अगवानी की। उन्होंने हाथों में ऊँचा तिरंगा झंडा थामे हुए कु. सुशीला को सबसे आगे कर दिया और उनके पीछे किया हाथों में 'साइमन वापस जाओ' का बैनर थामे हुए बहन कौशल्या तथा सुभद्रा को। शेष जुलूस इनके पीछे ही चला। जुलूस में अभी तक महिलाएँ नहीं थीं। इन तीनों बहनों के आ जाने से जुलूस में नवजीवन का संचार हो गया। सबसे आगे चल रही सुशीला नारा उठाती—"साइमन!" और जुलूस के सभी लोग अपने कंठों की पूरी शक्ति के साथ उसकी पूर्ति करते—"वापस जाओ!"

सुभाषचंद्र बोस गद्गद हो गए। जुलूस का नेतृत्व इन बहनों को देकर वे जुलूस में सम्मिलित होकर पीछे-पीछे चलने लगे। सुभाषचंद्र बोस के रूप में सुशीला को एक बहुत बड़े क्रांतिकारी का वरदहस्त प्राप्त हो गया।

क्रांतिचक्र का प्रवर्तन और तेजी से होने लगा। सरदार भगतसिंह और चंद्रशेखर आजाद का जब मिलन हुआ तो क्रांतिकारी आंदोलन को नई बहार मिल गई। वे दो दीवाने थे, अब सौ दीवाने हो गए। समस्त भारत के क्रांतिकारियों को एक मंच पर एकत्रित किया गया। दल का नया नामकरण हुआ और उसका नया विधान तैयार किया। दल का अब नया नाम था—'हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र संघ'। इस संघ की सेना का कमांडर इन चीफ चंद्रशेखर आजाद को बनाया गया।

क्रांतिकारी गतिविधियों का संचालन करने के लिए मेरठ में एक सम्मेलन का आयोजन हुआ। इस सम्मेलन में लाहौर से भगवतीचरण भी सम्मिलित हुए। पुलिस ने उनके विरुद्ध गिरफ्तारी का वारंट निकाल दिया। भगवतीचरण का घर छूट

गया और फरारी जीवन प्रारंभ हो गया। उनके सामने समस्या थी कि अब कहाँ जाएँ। उन्हें अपनी बहन सुशीला का स्मरण हो आया। वे उसके पास कलकत्ता पहुँच गए। उन्होंने सुशीला से खुलकर बात की—

"मैं मेरठ षड्यंत्र केस के एक फरारी क्रांतिकारी के रूप में यहाँ आया हूँ। किसी होटल में मैं अपने ठहरने का प्रबंध कर लूँगा और समय-समय पर तुमसे मिलता रहूँगा। अनुकूल अवसर के उपस्थित होते ही मैं कलकत्ता छोड़ दूँगा।"

सुशीला ने रूठने का अभिनय करते हुए भगवतीचरण से कहा—

"भैया! यदि आपको होटल में ही ठहरना था तो आप मेरे पास क्यों आए? मैं तो यहाँ तक कहती हूँ कि आपने मुझे बहन ही क्यों बनाया? क्या एक बहन बरदाश्त कर सकती है कि उसके होते हुए उसका भाई होटल में ठहरे?"

भगवतीचरण ने उसे शांत करने के उद्‌देश्य से कहा—

"देखो सुशीला! मुझे गलत समझने का प्रयास मत करो। सगे भाई-बहन न होते हुए भी हम लोगों के स्नेह-संबंध सगे भाई-बहनों से अधिक हैं। हम लोग क्रांतिपथ के पथिक हैं और क्रांति के पथ पर हर कदम फूँक-फूँककर रखना पड़ता है। इस समय तुम एक अन्य परिवार के साथ रह रही हो, जिनके विषय में हम नहीं कह सकते कि हमारे उद्‌देश्यों से वे कहाँ तक सहमत होंगे। मैं यदि तुम्हारे साथ रहा तो तुम्हारे ऊपर और सेठ छाजूराम के ऊपर भी संकट आ सकता है। इस संकट को तुम क्यों आमंत्रण दे रही हो?"

इस तर्क से सुशीला प्रभावित नहीं हुई। उसका उत्तर था—

"ओखली में सिर दिया तो मूसल से क्या डरना! संकटों से डरने के लिए तो मैंने क्रांति के रास्ते पर कदम नहीं रखा। वह क्रांतिकारी ही क्या, जो संकटों की बात सोचे। अब तो भाई-बहन साथ ही रहेंगे और जो कुछ आ पड़ेगी, वह साथ-साथ ही झेलेंगे।"

भगवतीचरण की एक नहीं चली। वे बहन सुशीला के साथ रहने लगे। उन्हें एक सुरक्षित प्रश्रय मिल गया। सर सेठ छाजूराम के मकान के एक भाग में वे स्वयं और दूसरे भाग में सुशीला रहती थीं। अन्य लोगों के वहाँ न रहने से मकान क्रांतिकारियों के प्रश्रय के रूप में काफी सुरक्षित था।

एक दिन भगवतीचरण और सुशीला बैठे हुए कुछ चर्चा कर रहे थे कि सुशीला को अपने नाम का एक तार मिला। तार में लिखा था—'भाई के साथ पहुँच रही हूँ'। तार देनेवाले का नाम 'दुर्गावती' लिखा हुआ था। सुशीला चक्कर में पड़ गई कि 'दुर्गावती' कौन है और किस भाई के साथ आ रही है। तार लखनऊ से दिया गया था। यदि तार लाहौर से दुर्गा देवी के नाम से दिया गया होता तो वे समझ लेतीं

कि तार भगवतीचरण की पत्नी दुर्गा भाभी ने दिया है। तार पढ़कर भगवतीचरण तुरंत समझ गए कि तार उनकी पत्नी दुर्गा देवी ने ही दिया है और वह भगतसिंह के साथ कलकत्ता पहुँच रही हैं। वे दोनों स्टेशन जा पहुँचे।

लाहौर से आनेवाली मेल ट्रेन जब कलकत्ता स्टेशन के प्लेटफॉर्म पर आकर रुकी तो भगवतीचरण ने अपनी पत्नी और बच्चे शचींद्र के साथ यूरोपियन वेशधारी भगतसिंह को पहचान लिया। उन लोगों को यह मालूम था कि लाहौर के क्रांतिकारियों ने लाला लाजपतराय के हत्यारे पुलिस अफसर सांडर्स को गोलियों से उड़ा दिया है। उनका अनुमान था कि यह काम उनके साथियों द्वारा ही किया गया होगा। भगतसिंह और दुर्गा देवी को वहाँ आया देख उन्हें विश्वास हो गया कि सांडर्स को भगतसिंह ने ही मारा है।

क्रांतिकारी दूरदर्शिता के कारण सुशीला ने भगतसिंह, दुर्गा भाभी और भगवतीचरण को दो-एक दिन के लिए होटल में ठहरा दिया; पर बहुत शीघ्र ही उन सबको वे अपने घर में ले आईं। उन्होंने सर सेठ छाजूराम की पत्नी को विश्वास में लेकर उन्हें सबकुछ बता दिया और क्रांतिकारियों को अपने घर टिकाने की उनसे अनुमति ले ली। लक्ष्मी देवी ने अपने विश्वास की सदैव ही रक्षा की।

कुछ दिन ठहरने के पश्चात् भगवतीचरण तथा दुर्गा देवी लाहौर चले गए और भगतसिंह कलकत्ता ही रह गया। उसने सुभाषचंद्र बोस से भेंट की और बंगाल के क्रांतिकारियों से संपर्क बना लिया।

एक दिन विकट स्थिति पैदा हो गई। सर छाजूराम के मकान को पुलिस ने घेर लिया। भगतसिंह ने सुशीला दीदी से कहा—

''मैं तो समझा था कि कुछ दिन जीवित रहकर मैं और कुछ काम कर सकूँगा; लेकिन मुझे लगता है कि चार-छह लोगों को मारने के बाद, आज मुझे भी जाना पड़ेगा।''

वह पिस्तौल लेकर क़िवाड़ की ओट में खड़ा हो गया और सुशीला दीदी को दूसरे कमरे में जाने के लिए कह दिया। वह काफी देर पुलिस की प्रतीक्षा करता रहा; पर पुलिस वहाँ नहीं पहुँची। हुआ यह था कि सेठ छाजूराम के यहाँ ठहरे हुए स्वामी भवानीदयाल को गिरफ्तार करने पुलिस वहाँ पहुँची थी और उनको गिरफ्तार करके वह चली गई। कुछ दिन कलकत्ता ठहरकर भगतसिंह भी चला गया।

सुशीला के जीवन में एक नया मोड़ उपस्थित हो गया। लाहौर के क्रांतिकारी साथियों की ओर से उन्हें कलकत्ता की नौकरी छोड़कर लाहौर पहुँचने का निर्देश मिला। उन्होंने तत्परता से निर्देश का पालन किया और लाहौर पहुँचकर दुर्गा भाभी के साथ ठहर गईं।

'हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र संघ' की केंद्रीय समिति ने यह निर्णय लिया था कि शासन द्वारा निर्मित किए गए 'श्रम विवाद कानून' और 'जन सुरक्षा कानून' का विरोध करने भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त दिल्ली की केंद्रीय असेंबली में बम विस्फोट करके अपनी गिरफ्तारियाँ दें। सुशीला को इसलिए बुलाया गया था कि हो सकता है कि उन्हें और दुर्गा भाभी को फरारी का जीवन बिताना पड़े।

भगतसिंह एवं बटुकेश्वर दत्त को अंतिम बिदाई देने के लिए सुशीला दीदी और दुर्गा भाभी दिल्ली पहुँच गईं। सुखदेव भी उनके साथ थे। सुशीला दीदी को भगतसिंह के खाने-पीने की रुचियों का पता था। उन्हें मालूम था कि भगतसिंह को रसगुल्ले और संतरे बहुत पसंद हैं। काफी मात्रा में ये वस्तुएँ वे अपने साथ ले गईं। सुशीला दीदी ने अपने हाथ से उन दोनों को खूब रसगुल्ले खिलाए। दुर्गा भाभी ने संतरे की कलियाँ छील-छीलकर उन लोगों को खिलाईं। दुर्गा भाभी का तीन वर्षीय पुत्र शचींद्र भी अपने बालसुलभ आग्रह से कह रहा था—

''लंबे चाचा! और खाओ।''

बालक शचींद्र भगतसिंह को 'लंबे चाचा' कहकर पुकारता था। वे बड़े ही मार्मिक क्षण थे। सुशीला दीदी और दुर्गा भाभी से यही कहा गया था कि वह भगतसिंह से उनकी आखिरी भेंट होगी। दल के अनुशासन के कारण वे उनसे कुछ पूछ भी नहीं सकती थीं और भगतसिंह भी कुछ बता नहीं सकता था। भगतसिंह ने नेकर के ऊपर वह कमीज पहन रखी थी, जो कलकत्ता में सुशीला दीदी ने नई सिलवाकर उसे दी थी। उसकी पुरानी कमीज दीदी ने उसकी स्मृतिस्वरूप अपने पास रख ली थी।

खाने-पीने के बाद जब भगतसिंह चलने को तैयार हुआ तो सुशीला दीदी और दुर्गा भाभी दोनों ने ही अपने बटुए में से चाकू निकालकर, अपने शरीर पर थोड़ा बाहुएँ काटकर भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त को रक्त-तिलक लगाकर बिदा किया। वे उन्हें जाते हुए भी बहुत दूर तक देखती रहीं।

दिल्ली असेंबली में बम विस्फोट करके भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने अपनी गिरफ्तारियाँ दीं। पुलिस उनको खुले ट्रक में बिठाकर ले गई। जिस समय वह ट्रक पुल के ऊपर से जा रहा था, सुशीला दीदी और दुर्गा भाभी भी ताँगे में बैठकर पुल पार कर रही थीं। सुखदेव साइकिल पर ताँगे के साथ था। इन लोगों की दृष्टि फिर एक बार भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त से मिली। भावों का आदान-प्रदान दृष्टि के माध्यम से हुआ। वे सभी लोग क्रांतिकारी अनुशासन में बँधे हुए थे। बालक शचींद्र भगतसिंह को देखकर चिल्ला उठा—''लंबे चाचा!'' दुर्गा भाभी ने झट से हाथ रखकर शचींद्र का मुँह बंद कर दिया कि वह दुबारा न पुकार बैठे।

दिल्ली की अदालत में भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त पर मुकदमा चलाया गया और दोनों को आजीवन कारावास का दंड दिया गया। बाद में शासन को यह पता चल गया कि सांडर्स वध में भगतसिंह का हाथ था। उसे लाहौर भेजकर 'लाहौर षड्यंत्र केस' में सम्मिलित कर दिया गया। अन्य क्रांतिकारी भी गिरफ्तार करके लाहौर पहुँचा दिए गए। लाहौर पहुँचकर सुशीला दीदी भी दुर्गा भाभी के साथ रहने लगीं। अब उनका काम था—गिरफ्तार साथियों को जेल में खाने-पीने की सामग्री भिजवाना, लाहौर आनेवाले उनके परिवारवालों की सुख-सुविधा का ध्यान रखना और मुकदमे के खर्च का प्रबंध करना। सुशीला दीदी कलकत्ता गईं और वहाँ उन्होंने 'मेवाड़-पतन' नाटक खेलकर काफी धन का संचय किया तथा धन 'भगतसिंह डिफेंस कमेटी' को दे दिया। दस तोले की अपनी सोने की चूड़ियाँ वे क्रांतिकारी योगेशचंद्र चटर्जी को जेल से छुड़ाने की योजना के अंतर्गत पहले ही दे चुकी थीं।

भगतसिंह को जेल से छुड़ाने के लिए हथियारों और बमों की आवश्यकता भी थी। लाहौर में भगवतीचरण के छद्म नाम से कश्मीर बिल्डिंग किराए से ली गई और सुखदेव ने उसमें बम फैक्टरी खोल दी। सुशीला दीदी की हार्दिक इच्छा थी कि वे भी बम बनाना सीखें। उन्होंने अपनी इच्छा भगवतीचरण से व्यक्त की। भगवतीचरण का कथन था—

''कश्मीर बिल्डिंग में जो बम फैक्टरी खोली गई है, उसमें केवल पुरुष ही काम करते हैं। यदि वहाँ किसी लड़की का आना-जाना हुआ तो अकारण ही लोगों का ध्यान आकर्षित होगा और हमारे गोपनीय काम के लिए यह स्थिति अच्छी नहीं होगी।''

सुशीला दीदी ने इस स्थिति का हल निकालने की दृष्टि से कहा—

''लड़की होने के नाते मैं सिख लड़के का वेश आसानी से धारण कर सकती हूँ। मेरा कद भी छोटा है। कोई मुझे चौदह-पंद्रह साल का सिख लड़का समझेगा। अब आपका क्या कहना है?''

भगवतीचरण ने बात मान ली और सुशीला सिख लड़के के वेश में रहकर बम बनाना सीखने लगीं। यह स्थिति अधिक दिन तक नहीं चली; क्योंकि उनको अपना जूड़ा खोलकर फिर चोटी लटकाकर साड़ी पहननी पड़ी। इसका कारण यह था कि बहावलपुर रोड पर कोठी नं. ९ का आधा भाग भगवतीचरण के छद्म नाम से किराए पर लेकर उसे एक गृहस्थी का रूप प्रदान करना था।

भगवतीचरण ने स्वयं को एक इंजीनियरिंग फर्म का प्रतिनिधि बताकर अपने साथियों में से कुछ को अपना हिस्सेदार और कुछ को नौकर-चाकर बताया। इस संभ्रांत परिवार में सुशीला और दुर्गा भाभी के रूप में दो महिलाएँ भी थीं।

भगतसिंह को जेल से छुड़ाने के लिए पूरी योजना बना ली गई; लेकिन दुर्भाग्य से २८ मई, १९३० को रावी के किनारे बम परीक्षण करते हुए भगवतीचरण की मृत्यु हो गई। भगवतीचरण की अंतिम इच्छा थी कि भगतसिंह और दत्त को छुड़ाने की योजना स्थगित न की जाए।

१ जून, १९३० को जो दल भगतसिंह और दत्त को जेल से छुड़ाने गया, उन सबको सुशीला दीदी और दुर्गा भाभी ने रक्त-तिलक लगाकर बिदा किया। दुर्भाग्य यह रहा कि भगतसिंह का विचार बदल जाने के कारण वह योजना क्रियान्वित नहीं हो सकी और निराश होकर उस दल को लौट आना पड़ा। एक-दो दिन बाद कोठी के अंदर कमरे में रखे हुए बम रात को अपने आप फट गए और क्रांतिकारियों को उसी समय कोठी छोड़कर भागना पड़ा।

आश्रय पाने के लिए सुशीला दीदी दुर्गा भाभी को लेकर अपनी एक सहेली सत्यवती के पास पहुँचीं और उन्हें सारी स्थिति बता दी। सत्यवती ने अपने पति श्री अचिंत्यराम से अनुमति माँगी।

अचिंत्यराम का उत्तर था—

''तुम हमेशा सुशीला के साथ अपनी दोस्ती की बात किया करती हो और आज जब वह तुम्हारी शरण में आई है, तब तुम मुझसे अनुमति लेने आई हो। इसकी जरूरत ही क्या है। तुम मुझसे बिना पूछे भी उन्हें शरण दे सकती हो। मुसीबत में ही तो मित्र की परीक्षा होती है।''

सत्यवती और उनके पति की उदारता से कुछ दिन सुशीला और दुर्गा भाभी उनके यहाँ रहीं। बाद में आजाद ने उन्हें दिल्ली भेज दिया।

दिल्ली पहुँचकर सुशीला को परिचय का संदर्भ याद आया। एक बार जब वे कलकत्ता से जालंधर पहुँची थीं तो दिल्ली के एक प्रसिद्ध वकील श्याममोहन से उनका परिचय कराया गया था। उनके विषय में बता दिया गया था कि वे क्रांतिकारी पार्टी में काम करती हैं। उनसे प्रभावित होकर श्री श्याममोहन ने कहा था—

''कभी आपको दिल्ली में यदि मेरी सेवाओं की आवश्यकता पड़े तो संकोच मत कीजिए। मेरा घर क्रांतिकारियों के लिए एक सुरक्षित स्थान होगा।''

सुशीला को श्री श्याममोहन की बात याद आ गई और दिए हुए पते पर उसने दिल्ली में वकील साहब का मकान खोज भी लिया। सचमुच ही वह मकान क्रांतिकारियों की दृष्टि से बहुत उपयोगी था। वकील साहब ने अपने वायदे के अनुसार गर्मजोशी के साथ उनका स्वागत किया। फिर तो वकील साहब का वह घर क्रांतिकारियों के लिए एक सुरक्षित प्रश्रयस्थल बन गया। स्वयं चंद्रशेखर आजाद वहाँ अपने हथियार रखने लगे। वकील साहब स्वयं हथियारों को इधर-उधर ले

जाने में सहायता देने लगे। एक बार ऐसा भी हुआ कि कुछ हथियार वकील साहब के साथ लाहौर भेजे गए। किसी प्रकार पुलिस को इस तथ्य की सूचना मिल गई और दिल्ली की पुलिस उन्हें गिरफ्तार करने लाहौर पहुँच गई। वकील साहब को भी यह बात मालूम हो गई। उन्होंने अपना सामान एक परिचित मित्र द्वारा बाहर निकाल दिया और उनका सामान स्वयं लेकर बाहर निकलने लगे। जब पुलिस ने उनके सामान की तलाशी लेनी चाही तो वे इस काम के लिए खुशी के साथ सहमत हो गए। उनके सामान में कोई आपत्तिजनक वस्तु नहीं निकली। इस प्रकार अपनी सूझबूझ से उन्होंने क्रांतिकारियों का सामान लाहौर पहुँचा दिया।

चंद्रशेखर आजाद ने दिल्ली में भी एक बम कारखाना खोल दिया था। दिल्ली के इस कारखाने में काम कर रहे थे विमल प्रसाद जैन, गिरवरसिंह, कैलाशपति, काशीराम, यशपाल और सुखदेवराज। समय-समय पर अन्य साथी भी आते-जाते रहते थे। सुशीला मोहन भी बम कारखाने में पहुँचकर वहाँ के काम में हाथ बँटाने लगीं।

उन दिनों क्रांतिकारियों का मुख्यालय कानपुर में था। आजाद ने सोचा कि जब लड़कियों को दल का नियमित सदस्य बना ही लिया गया है, तो उन्हें क्रांतिकारियों के सभी स्थानों से परिचित करा दिया जाए, जिससे आवश्यकता पड़ने पर वे स्वतंत्र रूप से भी घूम-फिरकर काम कर सकें। इसी उद्देश्य से सुशीला दीदी और दुर्गा भाभी को कुछ दिन कानपुर रखा गया। वहाँ की गतिविधियों और साथियों से परिचित हो जाने के पश्चात् उन लोगों को इलाहाबाद केंद्र पर ले जाया गया।

इलाहाबाद में सुशीला दीदी और दुर्गा भाभी बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन से मिलने गईं और उन्हें अपनी समस्या बताई। टंडनजी ने जोखिम उठाकर भी उन दोनों को अपने परिवार में पुत्रियों की भाँति रखा और पितृवत् स्नेह दिया। उनके यहाँ रहकर वे पार्टी का काम भी करती रहीं।

इलाहाबाद में 'चाँद कार्यालय' के संचालक श्री रामरख सहगल ने महिलाओं के लिए मातृ-मंदिर की स्थापना की और सुशीला दीदी एवं दुर्गा भाभी को व्यवस्थापक के रूप में वहाँ रखा। सहगल की पत्नी श्रीमती विद्यावती कन्या महाविद्यालय जालंधर की छात्रा रह चुकी थीं। इस नाते सुशीला दीदी के साथ उनका बहनापा था। मातृ-मंदिर की अधिष्ठाता थीं लीलावती। वे भी सुशीला दीदी की सहेली थीं।

इलाहाबाद में चंद्रशेखर आजाद ने दो और मकान किराए पर लिये। एक मकान में वे स्वयं रहते थे और दूसरे में पार्टी के कुछ लोग ठहरते थे। उन्होंने अपने मकान का पता किसीको नहीं बताया था।

एक दिन आजाद ने सुशीला से पूछा—

"क्यों सुशीला, क्या तुम लाहौर जाकर जेल में भगतसिंह से भेंट करके आ सकती हो?"

सुशीला ने प्रश्न पर प्रश्न किया—

"भैया, यह आप ही बताइए कि क्या मैं यह काम कर सकती हूँ?"

आजाद कुछ सोच में पड़ गए। लेकिन कुछ सँभलकर बोले—

"मेरा विश्वास है कि तुममें इतनी क्रांतिकारी सूझबूझ है कि तुम यह मुश्किल काम कर सकती हो। यदि सच कहूँ तो मैं यह कठिन दायित्व तुमको देना चाहता हूँ। जेल में भगतसिंह से मिलकर तुमको यह पता लगाना होगा कि उसके बचाव के लिए हम लोगों को क्या करना है। पार्टी के संचालन के विषय में वह जो कुछ बताए, वह भी तुम्हें आकर मुझे बताना है।"

सुशीला दीदी ने यह दायित्व अपने ऊपर ले लिया। अपनी गिरफ्तारी का वारंट होने पर भी वह लाहौर गईं और भगतसिंह की रिश्तेदार बनकर जेल में उससे कई बार भेंट की। एक बार तो पुलिस को असलियत का पता भी चल गया और वह उन्हें गिरफ्तार करने जेल भी पहुँची; पर कुछ मिनट पहले ही सुशीला दीदी वहाँ से जा चुकी थीं। उन्हें भी पुलिस की गतिविधियों का पता चल गया और वे उसे चकमा देकर आजाद के पास इलाहाबाद जा पहुँचीं। उन्होंने आजाद को बताया कि भगतसिंह की इच्छा है कि वे उसे बचाने का प्रयत्न नहीं करें।

भगतसिंह की यह इच्छा जानकर भी आजाद को लगा कि उसे अवश्य बचाना चाहिए। उन्होंने सुशीला दीदी और दुर्गा भाभी दोनों से ही कहा—

"सुना है कि दिल्ली में वाइसराय लॉर्ड इरविन के साथ गांधीजी की कोई संधिवार्त्ता होने वाली है। क्या तुम लोग गांधीजी से मिलकर यह प्रेरणा दे सकती हो कि वे वाइसराय से की जानेवाली संधि में यह शर्त भी रखें कि संधि के फलस्वरूप सभी क्रांतिकारियों को दी गई सजाएँ माफ कर दी जाएँ या कम-से-कम फाँसी के स्थान पर अन्य सजाएँ दे दी जाएँ?"

आजाद का यह प्रस्ताव सुशीला दीदी और दुर्गा भाभी को बहुत पसंद आया और वे खुशी-खुशी दिल्ली चली गईं। एक कांग्रेसी कार्यकर्ता श्री रघुनंदन शरण ने डॉ. अंसारी की कोठी पर उन दोनों की भेंट गांधीजी से करा दी। दोनों ओर से काफी शक्तिशाली तर्कों के पश्चात् गांधीजी कुछ नरम पड़े और उन्होंने कहा कि "मैं व्यक्तिगत रूप से लॉर्ड इरविन को समझाने का प्रयत्न अवश्य करूँगा; लेकिन भगतसिंह की रिहाई की शर्त मैं शर्तनामे में सम्मिलित नहीं कर सकता।"

घटनाओं ने कुछ इस प्रकार का मोड़ लिया कि चंद्रशेखर आजाद २७ फरवरी, १९३१ को इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में पुलिस के साथ वीरतापूर्वक

युद्ध करते हुए शहीद हो गए और भगतसिंह, सुखदेव एवं राजगुरु को २३ मार्च, १९३१ को फाँसी दे दी गई। अब सुशीला दीदी और दुर्गा भाभी को स्वतंत्र रूप से कार्य करना पड़ा।

सुशीला दीदी ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में सम्मिलित होकर देश की आजादी के लिए काम करना प्रारंभ कर दिया। सन् १९३२ में कांग्रेस का अधिवेशन दिल्ली में होने वाला था। शासन ने कांग्रेस को गैरकानूनी घोषित कर दिया। यह सुशीला दीदी की सूझबूझ थी कि किसी-न-किसी रूप में उन्होंने वह अधिवेशन पूर्ण करने में अपना योगदान दिया।

सुशीला दीदी ने प्रातः चार बजे से महिला स्वयंसेविकाओं का एक जत्था बनाया और गलियों के रास्ते से सभास्थल की ओर बढ़ना प्रारंभ किया। उन्हें घंटाघर पहुँचना था। पुरुष स्वयंसेवक तो गिरफ्तार कर लिये गए, लेकिन महिला स्वयंसेविकाओं की यह टोली बचती-बचाती हुई घंटाघर के बिलकुल निकट जा पहुँची। घुड़सवार गोरों ने इस टोली को ललकारा। सुशीला दीदी और उनकी सहेलियाँ घोड़ों की टाँगों के नीचे से निकल-निकलकर आगे बढ़ने लगीं और अंततोगत्वा वे घंटाघर पहुँचने में सफल हो गईं। सुशीला दीदी ने एक पानी के हौज पर खड़े होकर प्रस्ताव पढ़ना प्रारंभ कर दिया। एक फौजी अफसर ने लपककर उनके हाथ से वह कागज छीन लिया। सुशीला दीदी ने प्रस्ताव कंठस्थ कर रखे थे। उन्होंने मौखिक रूप से वे प्रस्ताव बोले और उपस्थित स्वयंसेविकाओं ने उनका समर्थन कर दिया। इसके पश्चात् वह गिरफ्तार कर ली गईं।

जब अदालत में मुकदमा चला तो सुशीला ने अपना नाम इंदुमती बताया। उन्होंने अपने विषय में और कुछ बताने से साफ इनकार कर दिया। उन्हें दो सौ रुपए जुर्माना और तीन महीने के कठोर कारावास की सजा दी गई। उन्हें जेल के 'सी' क्लास में रखा गया। जब वे जेल में पहुँचीं तो अन्य महिला कैदियों ने उनको पहचान लिया। सुशीला दीदी ने उन्हें समझा दिया कि यहाँ मुझे 'इंदुमती' के नाम से ही पुकारना और किसीको पता मत लगने देना कि मैं एक क्रांतिकारिणी हूँ।

सुशीला दीदी ने अपनी कारावासावधि लगभग पूरी कर ली। कुछ दिन के लिए उनका स्थानांतरण लाहौर जेल में कर दिया गया। वहाँ भी उन्हें अपनी सहेलियाँ मिल गईं। उनके निर्देशानुसार वे उन्हें 'इंदुमती' कहकर ही पुकारती थीं। सुशीला दीदी की कारावास की अवधि तो पूरी हो गई, पर जुर्माना जमा न करने के कारण उन्हें डेढ़ महीने की सजा और काटनी थी। जेल में उनकी सहेलियों ने उनकी ओर से जुर्माना जमा करा दिया और वे मुक्त हो गईं।

जेल से मुक्त होकर सुशीला दीदी फिर दिल्ली पहुँच गईं और क्रांतिकारी

गतिविधियों में संलग्न हो गईं। वे दिल्ली में श्री श्याममोहन वकील के साथ ही रहती थीं। शीघ्र ही दिल्ली की पुलिस को उनकी उपस्थिति का पता चल गया और उनकी गिरफ्तारी की योजना बना ली गई।

वह सन् १९३२ के अक्तूबर मास की दोपहरी थी। दिल्ली की खुफिया पुलिस ने नई बस्ती में वकील साहब श्याममोहन का मकान घेर लिया। सुशीला उस मकान में है, इसकी सूचना उन्हींकी सहेली ने पुलिस को दी थी। पुलिस के सीनियर सुपरिंटेंडेंट मि. एवरेट ने बार-बार उनकी सहेली को पुलिस स्टेशन पर बुलाकर बहुत तंग करके उनकी गिरफ्तारी का साधन भी उसीको बनाया।

वकील साहब के मकान की स्थिति इस प्रकार की थी कि बिना हानि उठाए हुए पुलिस यकायक अंदर प्रवेश नहीं कर सकती थी। पुलिस ने सुशीला की सहेली को मकान के अंदर भेजा। उसने जाकर कह दिया कि पुलिस ने मकान को चारों तरफ से घेर लिया है और भला इसीमें है कि तुम पुलिस के सामने समर्पण कर दो। सुशीला दीदी ने अपनी सहेली से बहुत बुरा-भला कहा। उन्होंने पुलिस से मुकाबला करने का विचार भी किया; लेकिन उसे इसलिए स्थगित करना पड़ा, क्योंकि वह चाहती थीं कि वकील साहब को कोई चोट न पहुँचे। आखिर वह वकील साहब के साथ निकलीं और वे दोनों ताँगा करके फव्वारा होते हुए लालकिले की तरफ चल दिए। रास्ते में ही मि. एवरेट की कार उनके ताँगे के सामने खड़ी हो गई। सुशीलाजी से कहा गया कि आपको गिरफ्तार कर लिया गया है।

सुशीला को लगभग एक महीने तक पुलिस थाने में रखा गया। मि. एवरेट ने उन्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं होने दिया। कानूनी अड़चनों के कारण उनपर मुकदमा नहीं चलाया जा सका। उनको यह आदेश देकर छोड़ दिया गया कि वे चौबीस घंटे के अंदर दिल्ली छोड़कर चली जाएँ।

दिल्ली से सुशीला अपने पिता के पास गुजरात (पंजाब) चली गईं। उनके पिता ने १ जनवरी, १९३३ को श्री श्याममोहन वकील को अपने घर बुलाकर बड़े हर्षपूर्वक उन दोनों का विवाह कर दिया। वह दो क्रांतिकारियों का सुखद मिलन था। उनके कारण श्री श्याममोहन भी एक वर्ष तक जेल की नजरबंदी में रह आए थे। सुशीला ने शादी तो की, लेकिन अपने पति से यह तय कर लिया कि वे देश की आजादी के लिए होनेवाले हर आंदोलन में भाग लेंगी।





★ हरिकिशन



हरिकिशन

लाहौर जेल में फाँसी का फंदा चूमने के लिए आतुर अपने ज्येष्ठ पुत्र हरिकिशन से भेंट करने जब उसके पिता गुरदासमल पहुँचे तो उन्होंने अपने पुत्र से उसके स्वास्थ्य के विषय में कुछ नहीं पूछा। उन्होंने अपने पुत्र से यह भी नहीं पूछा कि जेल में तुमको क्या कष्ट है। उन्होंने पश्तो भाषा में सबसे पहला प्रश्न यह किया—

''बेटे हरिकिशन! मैंने तुम्हें अच्छा निशानेबाज बना दिया था और तुम्हारा निशाना कभी चूकता नहीं था; फिर क्या कारण है कि तुमने गवर्नर पर दो गोलियाँ चलाईं और तुम्हारी गोलियों से गवर्नर बच गया?''

हरिकिशन ने अपनी सफाई दी—

''पिताजी! मैंने जिस कुरसी पर खड़े होकर गवर्नर पर गोलियाँ चलाई थीं, वह कुरसी हिल रही थी। इसी कारण मेरी गोलियों से गवर्नर जख्मी होकर रह गया और वह मरा नहीं। जो गोली मैंने जमीन पर खड़े होकर थानेदार पर चलाई थी, वह ठीक बैठी और थानेदार मर गया।''

''तुमने गवर्नर पर भी गोली जमीन पर खड़े होकर क्यों नहीं चलाई?''

हरिकिशन का उत्तर था—

''यदि मैं जमीन पर खड़े होकर गवर्नर पर गोली चलाता तो वह और किसीको भी लग सकती थी; क्योंकि कई लोग गवर्नर के आसपास थे। दीक्षांत भाषण देनेवाले सर्वपल्ली डॉ. राधाकृष्णन् तो गवर्नर के बिलकुल पास ही थे। मैं

तीसरी गोली भी गवर्नर पर छोड़ना चाहता था; पर डॉ. राधाकृष्णन् गवर्नर को बचाने के लिए उनके सामने खड़े हो गए और इसलिए मैं अपनी तीसरी गोली नहीं छोड़ सका।''

पिता ने कहा—

''यदि तुम्हारी गोली ठीक लगती और गवर्नर की मृत्यु हो जाती तो मुझे तुमपर बहुत गर्व होता।''

यह वार्त्ता करके गुरदासमल अपने पुत्र हरिकिशन से जेल में मुलाकात करके चले गए। बाईस वर्षीय क्रांतिकारी युवक हरिकिशन पंजाब के गवर्नर को इसलिए खत्म करना चाहता था, क्योंकि गवर्नर महोदय क्रांतिकारियों से शत्रुता रखते थे। देशभक्ति की प्रेरणा हरिकिशन को अपने पिता गुरदासमल से ही मिली थी। उसके पिता ने उसे निशानेबाजी का भी अच्छा प्रशिक्षण दिया था।

हरिकिशन का जन्म सीमांत प्रांत के मर्दान जिले के 'गल्लाढर' स्थान पर सन् १९१२ में हुआ था।

बचपन से ही हरिकिशन क्रांतिकारियों का प्रशंसक था। जब काकोरी कांड का मुकदमा प्रारंभ हुआ तो वह अखबारों में छपनेवाले बयानों को बड़े ध्यान से पढ़ा करता था। रामप्रसाद बिस्मिल और अशफाक उल्ला खाँ का वह बड़ा भक्त था। इसी प्रकार जब सरदार भगतसिंह पर मुकदमा चला तो हरिकिशन अदालत में दिए गए उनके बयानों से बहुत प्रभावित हुआ। मन-ही-मन उसने भगतसिंह को अपना राजनीतिक गुरु मान लिया।

हरिकिशन इस परिणाम पर पहुँचा कि अहिंसात्मक आंदोलन से देश को स्वतंत्रता मिलने वाली नहीं है। वह चाहता था किसी क्रांतिकारी दल से उसका गठबंधन हो जाए और वह देश की आजादी के लिए कुछ कर गुजरे। लेकिन उस समय सारे देश में क्रांतिकारियों का दमन चल रहा था। उसने पंजाब के गवर्नर से ही बदला लेने का निश्चय कर डाला।

पंजाब विश्वविद्यालय का दीक्षांत समारोह २३ दिसंबर, १९३० को संपन्न हुआ। समारोह की अध्यक्षता की पंजाब के गवर्नर ज्योफ्रे डी मौंटमोरेंसी ने। दीक्षांत भाषण दिया डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने। हरिकिशन सूट-बूट पहने बहुत पहले ही दीक्षांत भवन में पहुँच चुका था। वह अपने साथ एक डिक्शनरी ले गया था। इस डिक्शनरी का बीच का भाग काटकर उसने एक रिवॉल्वर उसमें छिपा लिया था। ज्यों ही दीक्षांत समारोह समाप्त हुआ और विद्वानों का जुलूस सभाभवन से बाहर जाने लगा, हरिकिशन एक कुरसी पर खड़ा हो गया और उसने गवर्नर पर एक गोली दागी, जो उसकी बाँह को छीलती हुई निकल गई।

उसने दूसरी गोली छोड़ी और वह भी गवर्नर की पीठ पर फिसलती हुई निकल गई। उसने तीसरी गोली दागनी चाही, पर गवर्नर को बचाने के लिए डॉ. राधाकृष्णन् उसके सामने पहुँच गए। हरिकिशन ने गोली नहीं चलाई। वह सभाभवन से भागकर पोर्च में पहुँच गया। पुलिस के लोगों ने उसका पीछा किया। पुलिस का दारोगा चाननसिंह हरिकिशन पर लपका। हरिकिशन ने उसे रुक जाने की चेतावनी दी, पर दारोगा रुका नहीं। विवश होकर हरिकिशन ने उसपर गोली छोड़ दी और वह वहीं ढेर हो गया। एक अन्य पुलिसवाला हरिकिशन की तरफ बढ़ा तो हरिकिशन ने उसपर भी गोली छोड़ी। वह लेटकर बच गया। हरिकिशन की सभी गोलियाँ समाप्त हो गईं। उसने अपने रिवॉल्वर को फिर भर लेना चाहा; पर इसी बीच उसपर काबू पा लिया गया।

गिरफ्तार करके हरिकिशन को बहुत बुरी तरह से पीटा गया। ले जाकर उसे जेल में बंद कर दिया गया। जेल में उसे बहुत यातनाएँ दी गईं। सर्दी के दिनों में उसके कपड़े उतारकर बर्फ की सिल्ली पर लिटाया गया और एक सिल्ली ऊपर भी रख दी गई। बहुत देर तक उसे बर्फ की सिल्लियों में दबोचकर रखा गया। प्रतिदिन ही उसे नारकीय यातनाएँ दी जाती रहीं।

२ जनवरी, १९३१ को प्रारंभिक जाँच हुई और ५ जनवरी को हरिकिशन को सेशन सुपुर्द कर दिया गया। उसने अपने बयान में कहा—

''राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए प्रयत्न करनेवाले सहस्रों देशवासियो! स्त्रियों और बच्चों को जेलों में बंद करके उन्हें पीटा और अपमानित किया गया है। इसी कारण मेरा विश्वास अहिंसा से उठकर सशस्त्र क्रांति पर जम गया। चर्चिल के भाषण से मेरा विश्वास और भी दृढ़ हो गया कि अंग्रेज भारत को कभी मुक्त नहीं करेंगे। अत: मैं कुछ कार्य करने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ हो गया। मैं गवर्नर को कठोर दमन के लिए उत्तरदायी मानता हूँ। मैंने पंचानबे रुपयों में रिवॉल्वर खरीदा और निश्चय किया कि दीक्षांत समारोह के दिन ही गवर्नर को दंड दिया जाए; क्योंकि उस दिन उसे दंडित होता देखने के लिए विशिष्ट व्यक्तियों का समूह उपस्थित रहेगा।''

२६ जनवरी, १९३१ को लाहौर के सेशन जज द्वारा हरिकिशन को मृत्युदंड सुना दिया गया। हाई कोर्ट ने दंड को यथावत् रखा। जब जेल में उसकी दादी उससे भेंट करने गईं तो उन्होंने कहा—

''बेटे! बहुत हौसले के साथ फाँसी के तख्ते पर चढ़ना।''

हरिकिशन ने उत्तर दिया—

''फिक्र मत करो, दादी! शेरनी का पोता मौत को लज्जित करके दिखाएगा!''

जिस जेल में हरिकिशन था, उसी जेल में पास की कोठरी में सरदार भगतसिंह भी फाँसी का इंतजार कर रहा था। हरिकिशन ने भगतसिंह से मिलने की अभिलाषा प्रकट की। जेल के अधिकारियों ने जब उसकी इच्छा की पूर्ति नहीं की तो उसने अनशन प्रारंभ कर दिया। नौ दिन के अनशन के बाद उसकी इच्छा की पूर्ति की गई और भगतसिंह को उसकी कोठरी में पहुँचाया गया। भगतसिंह के हाथ से दूध पीकर ही हरिकिशन ने अपना अनशन तोड़ा।

फाँसी के पहले हरिकिशन ने अपनी अंतिम इच्छा इन शब्दों में व्यक्त की—

''मैं भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि मैं इस पवित्र धरती पर उस समय तक जन्म लेता रहूँ जब तक इसे स्वतंत्र न करा दूँ। यदि मेरा मृत शरीर परिवारवालों को दिया जाए तो मेरा अंतिम संस्कार उसी स्थान पर किया जाए, जहाँ शहीद भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु का अंतिम संस्कार हुआ था। मेरी अस्थियाँ भी सतलज में उसी स्थान पर प्रवाहित की जाएँ, जहाँ उन लोगों की अस्थियाँ प्रवाहित की गई थीं।''

९ जून सन् १९३१ को लाहौर की मियाँवाली जेल में सुबह छह बजे हरिकिशन को फाँसी पर झुला दिया गया। फाँसी के तख्ते पर खड़े होकर उसने अपनी पूरी शक्ति के साथ 'इनकलाब जिंदाबाद' के नारे लगाए।

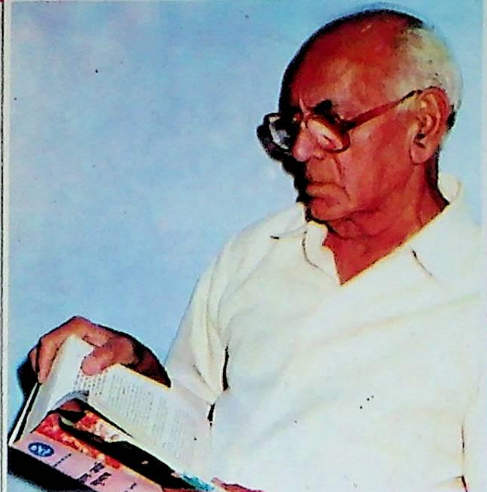
हरिकिशन का पार्थिव शरीर उसके परिवारवालों को नहीं दिया गया। जेलवालों ने ही उसका संस्कार कर दिया।

हरिकिशन के पिता श्री गुरदासमल को भी गिरफ्तार कर लिया गया और जेल की यातनाओं के कारण उन्होंने भी दम तोड़ दिया।

हरिकिशन का छोटा भाई भगतराम भी देशभक्त निकला। यह वही भगतराम था, जिसने नेताजी सुभाषचंद्र बोस को 'रहमतअली' के नाम से साथ देकर पहले अफगानिस्तान फिर जर्मनी पहुँचाया था।

□□□





श्रीकृष्ण 'सरल'

जन्म : १ जनवरी, १९१९ को अशोक नगर, गुना (म.प्र.) में।

श्रीकृष्ण सरल उस समर्पित और संघर्षशील साहित्यकार का नाम है, जिसने लेखन में कई विश्व कीर्तिमान स्थापित किए हैं। सर्वाधिक क्रांति-लेखन और सर्वाधिक महाकाव्य (बारह) लिखने का श्रेय सरलजी को ही जाता है।

श्री सरल ने एक सौ सत्रह ग्रंथों का प्रणयन किया। नेताजी सुभाष पर तथ्यों के संकलन के लिए वे स्वयं खर्च वहन कर उन बारह देशों का भ्रमण करने गए, जहाँ-जहाँ नेताजी और उनकी फौज ने आजादी की लड़ाइयाँ लड़ी थीं।

श्रीकृष्ण सरल स्वयं स्वतंत्रता संग्राम सेनानी रहे तथा प्राध्यापक के पद से निवृत्त होकर आजीवन साहित्य-साधना में रत रहे। उन्हें विभिन्न संस्थाओं द्वारा 'भारत-गौरव', 'राष्ट्र-कवि', 'क्रांति-कवि', 'क्रांति-रत्न', 'अभिनव-भूषण', 'मानव-रत्न', 'श्रेष्ठ कला-आचार्य' आदि अलंकरणों से विभूषित किया गया।

निधन : १ सितंबर, २००० को।



प्रभात प्रकाशन, दिल्ली